अल्पमोली संस्करण

सर्वोदय-संदेश

सर्वोदय के बुनियादी तत्वों पर प्रकाश डालनेवाले प्रवचन

प्रवचनकार

विनोबा

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

१९६०

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली-१

पहली बार १९६०
अल्पमोली-संस्करण
मूल्य . डेढ़ रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

पाठको को सभवत ज्ञात होगा कि गाधीजी के निधन के वाद 'गाधीजी के भाईचारे मे विश्वास रखनेवाले' व्यक्तियो की एक सस्था स्थापित हुई थी—'सर्वोदय-समाज'। उसका प्रति वर्ष एक सम्मेलन होता है, जिसमे सारे देश के रचनात्मक कार्यकर्ता तथा कुछ विदेशी व्यक्ति भी सम्मिलित होते है। अवतक इसके वारह सम्मेलन हो चुके है। उन सम्मेलनो मे विनोवाजी ने जो उद्घाटन तथा उपसहारात्मक प्रवचन दिये थे, उन्हीको इस पुस्तक मे सग्रहीत किया गया है। पहले खण्ड मे उद्घाटन-प्रवचन दिये गए है, दूसरे मे उपसहारात्मक। अनगुल तथा सेवाग्राम के अधिवेशनो मे विनोबाजी नही जा सके थे, अत॰ वे छोड दिये गए है।

इन प्रवचनो मे विनोवाजी ने बडे ही बुनियादी विचार दिये है। सर्वोदय के आदर्शो पर प्रकाश डालते हुए उन्होने उद्घाटन-प्रवचनो मे वर्ष-भर के कार्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है और उपसहारात्मक प्रवचनो मे अन्य वातो के साथ प्रत्येक सम्मेलन की कार्रवाई का सार दिया है। सर्वोदय तथा भूदान का विचार किस प्रकार उदित और पल्लवित हुआ, इसकी विस्तृत जानकारी इस पुस्तक के प्रवचनो को पढकर हो जाती है।

हम आशा करते है कि इस पुस्तक को रचनात्मक कार्यकर्ता ही नही, समाज और देश के अभ्युदय मे रुचि रखनेवाले सभी पाठक पढेंगे। पुस्तक अधिक-से-अधिक हाथो मे पहुचे, इससे इसका मूल्य इतना कम रखा गया है।

—मंत्री

विषय-सूची

सर्वोदय-संदेश

खण्ड १

१ : : सर्वोदय का अर्थ

यह सर्वोदय-समाज के सेवको का सम्मेलन है। यह एक नया समाज बनने जा रहा है। आज तो उसमे चन्द लोग इकट्ठे हुए है, लेकिन वे चन्द ही रहनेवाले नही है। अगर परमेश्वर ने चाहा तो सारी दुनिया सर्वोदय-समाज बनेगी, इसमे कोई सन्देह नही है। और दुनिया को तो तभी शान्ति मिलेगी जब वह सर्वोदय-समाज बन जायगी। गाधीजी की मृत्यु के बाद इसका एक छोटा आरम्भ हमने किया है। अभी वह चीज बन रही है। वैसे तो इसे सर्वोदय-समाज का पहला ही सम्मेलन कहना चाहिए। इसलिए इस तरफ आप लोगो का ध्यान स्वभावत विशेष आकृष्ट हुआ है और एकाग्र होगया है, यह मै जानता हू। यो पिछले साल एक सम्मेलन हुआ था, लेकिन वह एक सकल्पमात्र था। इस एक साल मे जो कुछ अनुभव आया है उसके आधार पर इस साल यह सम्मेलन हो रहा है। इसलिए इसमे आगे के प्रचार-कार्य की योजना तैयार होगी। लेकिन जब आप लोगो ने इस सम्मेलन को यहा निमन्त्रण दिया है तो हम आशा करते है कि यहा के अर्थात् मध्यभारत के लोग इस कल्पना को ठीक तरह समझ लेगे। अपने जीवन मे उसका अधिक-से-अधिक अमल करने की कोशिश करेगे और गाव-गाव तथा घर-घर मे इसका प्रचार करेगे।

सर्वोदय एक ऐसा अर्थघन शब्द है कि उसका जितना अधिक चिन्तन और प्रयोग हम करते जायगे उतना ही अधिक अर्थ उसमे से पाते जायगे। सारा अर्थ एकदम सूझनेवाला नही है। आहिस्ता-आहिस्ता वह सूझेगा। लेकिन उसका एक अर्थ स्पष्ट है कि जब भगवान् ने इस दुनिया मे मानव-समाज का निर्माण किया है तो मानव का आपस-आपस मे विरोध हो या एक का हित दूसरे के हित के विरोध मे हो यह उसकी मशा कदापि नही हो सकती। कोई बाप यह नही चाहता कि

एक लडके का हित दूसरे लडके के विरोध मे हो। लडको मे विचार-भेद हो सकता है, लेकिन हित-विरोध नही हो सकता। भिन्न-भिन्न विचार हो, तो ऐसे अनेक विचार मिलकर एक पूर्ण विचार बन सकता है, क्योकि किसी एक ही आदमी को पूर्ण विचार सूझे, यह नही हो सकता है। एक को एक अग सूझेगा, दूसरे को दूसरा अग सूझेगा, तो तीसरे को तीसरा अग सूझेगा। इस तरह सबके अगो का मिलकर एक पूर्ण विचार होगा। इसलिए विचार-भेदो का होना जरूरी है। उसमे दोप नही है, बल्कि गुण ही है। पर हित-विरोध नही होना चाहिए।

लेकिन हमने अपना जीवन ऐसा बनाया है कि एक के हित मे दूसरे के हित का विरोध पैदा होता है। धन आदि जिन चीजो को हम लाभदायी मानते है, उनका सामनेवाले की परवा किये वगैर और कभी-कभी उससे छीनकर भी हम सग्रह करते है। प्रेम से भी अधिक कीमत धन को यानी सुवर्ण को हमने दे रखी है। ऐसी सुवर्ण माया दुनिया मे फैल गई है। उसीका नतीजा है कि जो परस्पर मेल या समन्वय आसान होना चाहिए था वह मुश्किल होगया है। उस मेल की शोध मे कई राजकीय, सामाजिक और आर्थिक शास्त्र बन गये है। फिर भी सबका हित नही सध रहा है। लेकिन एक सादी बात समझ लेगे तो वह सधेगा। हरएक दूसरे की फिक्र रखे और अपनी फिक्र भी ऐसी न रखे कि जिससे दूसरे को तकलीफ हो। यही वह सादी बात है। यही कुटुम्ब मे होता भी है। कुटुम्ब का वह न्याय समाज को लागू करना कठिन नही होना चाहिए, बल्कि आसान होना चाहिए। इसीको सर्वोदय कहते है।

सर्वोदय का यह एक बहुत ही सरल और स्पष्ट अर्थ है। हम जैसे-जैसे प्रयोग करते जायगे वैसे-वैसे उसके और भी अर्थ निकलेगे। लेकिन उसका कम-से-कम और स्पष्ट अर्थ यह है और इससे यह प्रेरणा मिलती है कि हमे दूसरे की कमाई का नही खाना चाहिए। दूसरे का धन किसी तरह हम ले ले इसे अपनी कमाई नही कही जा सकती। कमाई का अर्थ है प्रत्यक्ष पैदाइश करे। ये दो नियम हम ले ले तो सर्वोदय-समाज का प्रचार दुनिया मे हो सकेगा।

वैसा प्रचार जब होगा तब होगा, लेकिन आज सर्वोदय-समाज के सम्मेलन का यहा से आरम्भ हो रहा है, इसलिए इस मध्यभारत मे उसका आरम्भ होजाय तो सारे भारत मे फैल सकता है। यह एक पुण्यभूमि है। नर्मदा नदी का यह क्षेत्र है। हिन्दुस्तान मे नर्मदा को पुण्य-सलिला कहते है। 'कलौ नर्मदा'—कलियुग मे नर्मदा का महत्व क्यो है? इसीलिए कि यह उत्तर हिन्दुस्तान और दक्षिण हिन्दुस्तान की सधि-सरिता है। ऐसे मध्यभारत मे आप खड़े है। इसीलिए मैं उम्मीद करूगा कि सर्वोदय-समाज के सम्मेलन के निमित्त से इस कल्पना का हर गाव और हर घर मे प्रचार करेगे। एक छोटा बच्चा भी सर्वोदय-समाज का सेवक बन

सकता है, अगर वह दूसरे की सेवा करता है और कुछ-न-कुछ पैदाइश करता है। इस तरह लाखो-करोडो सेवक इस समाज के बन जायगे। ये लोग उन सेवको का रजिस्टर रखते है, लेकिन तब ऐसी नौबत आयेगी कि किन-किन के नाम रजिस्टर मे लिख जाय ? क्योकि, सारी दुनिया अपना नाम इसमे देगी। मै प्रभु से प्रार्थना करता हू कि ऐसा दिन आये।

पहला सर्वोदय सम्मेलन
राऊ, ८ मार्च १९४९

२ : : नये युग का पंचविध कार्यक्रम

राऊ मे कुछ बातो का जिक्र मैने किया था, जो उन दिनो मेरे चित्त मे निरतर चल रही थी और मुझे जिन्होने व्याकुल-सा बना दिया था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद और विशेष करके गाधीजी के निर्वाण के बाद हमे किस तरह से प्रगति करनी चाहिए, क्या रास्ता लेना चाहिए, इसका बहुत मथन मेरे दिल मे चल रहा था और उन दिनो ट्रेन मे प्रवास करना हुआ था। ऊचे दर्जे मे, जो जीवन मे किसी भी कारण से क्यो न हो, पहली ही बार मुझे सफर करना पडा था। हिंदुस्तान के आधे से अधिक हिस्से मे घूमना हुआ। उस समय चिंतन निरतर चलता रहा था। इस तरह कुछ भाइयो से मै मिला, जिनके स्थानो और कामो के बारे मे मैने सिर्फ कानो से सुना था। उनके कामो का दर्शन मुझे हुआ यह लाभ तो जरूर हुआ, लेकिन क्या इस तरह मै घूमता रहू तो हम अहिंसा को गति दे सकते है ? और जो परिवर्तन हम समाज मे लाना चाहते है, वह ला सकते है ? आखिर वह जो प्रवास था वह कोई अहिंसा के आधार से होता था, ऐसी बात नही है। रेलवे बनी किस तरह, जिन पैसो के आधार पर हमने प्रवास किया, वे पैसे आये कहा से इत्यादि ये सब बाते मन मे आया करती थी और यह भी लगता था कि ऐसे गतिमान साधन, जो विचार की गभीरता नही, बल्कि खलबली ही पैदा करते है, अहिंसा के प्रचार के लिए लाभदायक होगे क्या ? इन साधनो से आम जनता तक क्या हम कभी पहुच सकेंगे ?

यह सब मन मे चल रहा था और उधर उन दिनो गाधीनिधि काम कर रही थी। जब गाधीजी की मृत्यु के बाद हमारे बडे लोगो ने तय किया कि उनकी स्मृति मे उनके कामो को चलाने के लिए एक निधि अर्थात् पैसा इकट्ठा किया जाय तब वह बात मुझे हृदयंगम नही हुई थी। फिर भी बडे लोगो ने जो काम किया उसके विरुद्ध सोचना भी मुझे अच्छा नही लगता था, बोलना तो दूसरी बात है। उसके विरोध मे मै बोला भी नही। लेकिन प्रवास मे एक मौका आया जब लोगो ने पूछा

कि आप बहुत सारे विषयो पर बोलते है तो निधि के बारे मे भी कुछ कहिये। मैने बहुत नम्र भाव से कहा कि मै इस तरह पैसा इकट्ठा करना पसद नही करता। गाधीजी के कामो के लिए ही क्यो न हो, लेकिन पैसा इकट्ठा करने से लाभ के बजाय हानि अधिक होगी, यह मेरे दिल मे हमेशा लगता था।

और यह तो सोचने के लिए एक निमित्त हुआ। लेकिन अपने आश्रम हमने किस तरह चलाये उसका भी मैने चितन किया। हमारा निज का जीवन किस तरह चला, वह भी सोचा। सब सोचकर इस नतीजे पर आया कि अब जमाना बदल गया है, युग-परिवर्तन हुआ है। अब जो काम करना है वह बहुत गहरा है और अत्यत कठिन है। स्वराज्य-प्राप्ति, याने परकीय सत्ता को यहा से हटाना, वह काम उतना कठिन नही था जितना आगे का हमारा काम कठिन है। वह एक काम तो हमने पचास-साठ साल के परिश्रम से कर लिया। अब जबकि हमे नया सामाजिक और आर्थिक क्राति का काम हाथ मे लेना है तो उसके लिए पुराने तरीके नही चल सकते, ऐसा मुझे लगा।

आज पाटिलसाहब ने पूछा था कि क्या वही रचनात्मक कार्यक्रम, जो स्वराय के पहले हमने सोचा था, स्वराज्य के बाद भी चलेगा या उसमे कुछ परिवर्तन की गुजाइश और जरूरत रहेगी ? यह विचार मेरे मन मे चलता था। तो मुख्य परिवर्तन हमारे सामने यह होना चाहिए कि हम पैसे का आधार तोडे और श्रम-निष्ठा पर ही निर्भर रहे। शरीर-परिश्रम से जितना हो सकता है करे। दान लेना है तो भी परिश्रम का ही ले। इस तरह अगर आगे का काम हम चलाये तो हमारा सारा जीवन तेजस्वी होगा, नही तो अभी तक जो हमने अध्ययन किया, याने कमाया वह उत्तरोत्तर निस्तेज होता जायगा और सामाजिक तथा आर्थिक क्राति की कल्पना हवा मे रह जायगी। और दूसरे लोगो के दूसरे तरीको के लिए हमें अवकाश देना होगा, कर्मयोग के मैदान मे से एक तरह से हट जाना होगा, ऐसा निर्णय मेरे मन ने लिया। तो पाटिलसाहब के प्रश्न का उत्तर यह है कि अब आधार साक्षात परिश्रम के जीवन पर रखना चाहिए।

श्रीमानो से अभी तक हमने दान लिया और उन्होने दिया। उसके लिए उनका उपकार जरूर मानना चाहिए। लेकिन वे दिन अब गये जबकि ऐसे दानो पर हमारा काम चलता था। दान तो खैर जैसे पहले मिला वैसे अब भी मिल सकता है, अगर हम लेना चाहे, लेकिन यह दान हमारे काम को बढायेगा नही, बल्कि तोडेगा। याने नतीजा यह होगा कि हम कोई बुनियादी काम करनेवाले साबित नही होगे। कुछ तो सेवा हमसे जरूर होगी, लेकिन सेवा करना एक बात है और समाज की बुनियाद मे ही परिवर्तन करना दूसरी बात है। दोनो मे बहुत अतर है। सेवा तो हर हालत मे हमको करनी है। सेवा-भावना हममे है तो सेवा हम करेगे, लेकिन हमारी सेवा किसी और विचार की भी दासी बन सकती है और हमारे आत्म-

विचार की भी वह सेविका हो सकती है। तो जो सेवा हमारे आत्म-विचार की सेविका नही होगी,बल्कि दूसरे विचारो की सेवा करनेवाली होगी वह सेवा हमे कुछ काम देनेवाली नही है। उससे हमारी उन्नति नही होगी, आत्मसमाधान हमको नही मिलेगा और जिस काम की अपेक्षा लोग हमसे करते है वह काम हमसे नही बनेगा।

यो सोचकर कुछ विचार मैने राऊ के सम्मेलन मे बताये थे। उनपर लोगो ने आक्षेप भी उठाये थे। मावलकरजी ने मुझे एक पत्र लिखा था। उस व्याख्यान मे मैने कस्तूरबा निधि का उल्लेख किया था। उस निधि के पैसे बैंक मे रखने पडते है और उसका ब्याज भी लेना पडता है। इन पैसो पर अगर ब्याज मिल रहा है तो वह पैसे दूसरे किसी काम मे लगे हुए है, यह बात साफ है। ये काम ग्रामोद्योगो के होते है, ऐसी भी बात नही है। इस तरह का कुछ मैने उल्लेख किया था। मैने तो चरखा-सघ का और गाधी-निधि का भी उल्लेख किया था। लेकिन यह उल्लेख मैने आत्म-परीक्षण के उद्देश्य से किया था। अगर टीका का ही उद्देश्य मन मे होता तो ऐसा उल्लेख मै नही करता। वह मै मन मे ही रख लेता। शब्दो मे तो कम-से-कम प्रकट नही करता। लेकिन उल्लेख करने मे मेरी दृष्टि आत्म-परीक्षण की थी। फिर भी मावलकरजी को लगा कि शायद इससे लोगो मे कुछ गलतफहमी होने की सभावना है। सो उन्होने मुझे एक पत्र लिखा और सफाई दी कि क्यो यह पैसा बैंक मे रखना पडता है। एकदम से तो वह खर्च नही होता है। आहिस्ते-आहिस्ते ही खर्च होता है। उसे दूसरे किसी काम मे लगाना, ट्रस्टी-मडल के जो नियम है, उसके अनुकूल नही होगा। और कस्तूरबा ट्रस्ट का जो विधान आदि बना है वह गाधीजी के सामने बना है, अर्थात गाधीजी की सम्मति उसमे ली गई थी। ऐसा उन्होने लिखा। हमने उनको थोडे मे उत्तर दिया कि आपने जो सफाई दी है वह हम पहले से जानते थे, और कस्तूरबा-निधि के काम के विषय मे हमे कोई गलतफहमी नही है। इतना ही नही, बल्कि वह निधि जिस तरह काम कर रही है, उसके लिए हमारे मन मे बहुत आदर है। लेकिन हमने जो सवाल उठाया है वह बुनियादी है और उसका उत्तर आपकी सफाई मे नही मिलता है।

लेकिन आप लोगो के सामने मै इतना प्रकट कर देना चाहता हू कि हम लोगो के सामने हमेशा यह एक चीज रहती है कि फलाने विषय मे गाधीजी क्या करते थे या उनका क्या कहना है। मै यह तो नही कहूगा कि इस तरह विचार करना कोई पाप है, लेकिन इतना जरूर कहूगा कि गाधीजी के वचनो का और उनकी कृति का उपयोग अगर हमे आगे बढाने मे होता है, तो जरूर करना चाहिए। लेकिन हमारी प्रगति मे अगर वह बाधक होता है तो उसको छोड देने की हमारी हिम्मत होनी चाहिए। अपने पूर्वजो के अनुसरण का नतीजा यह नही होना चाहिए कि अपनी प्रगति मे रुकावट आ जाय। उनका भी यह उद्देश्य नही हो सकता। हम

लोगो मे एक बहुत अच्छा वचन प्रचलित है 'अनता वै वेदा ।' याने वेद अनत है। हम जानते हैं कि वेद चार ही हैं और उनके मत्र इने-गिने हैं । लेकिन यह वाक्य हमको कहता है कि वेद अनत हैं । कहने का भावार्थ यह है कि जो कुछ वेद बोलते हैं उतना ही वेद नही है, वल्कि जो भी सद्विचार मनुष्य को पहले कभी सूझा और इसके आगे कभी सूझेगा, सारा परमेश्वर-प्रेरित होता है । इसलिए वेदो के विचारो का अत नही है । इसलिए गाधीजी ने जो एक वात कही उसके आगे कोई कदम नही उठाना चाहिए, जमाना बदलने पर भी पुरानेजमाने की चीज ही हमको चलानी चाहिए, इस तरह का विचार हम छोड दे । ऐसा विचार हम अगर करते हो तो अपने पुण्य पुरुषो के लिए हम अनादर नही प्रकट करते, वल्कि उनके अनुकूल ही हम होते है ।

लेकिन यह तो बीच मे मैने थोडी-सी बात बता दी है । मुझे तो यह कहना था कि वह जो विचार, अपरिग्रह और पैसे से मुक्ति का मेरा चल रहा था उसके अमल के लिए भगवान ने बीच मे अवकाश दे दिया । प्रवास तो मेरा चल रहा था और कई स्थानो से बुलावा आता था । और जो मनुष्य घूमने लगता है वह उसी ढग से सोचता भी है । जाने की उपयुक्तता होती है । जितनी सेवा होती है उतनी कर भी लेता है । लेकिन भगवान ने मेरे शरीर मे रोग-बीज निर्माण कर दिया और अपनी अजीब भाषा मे आज्ञा दी कि अब तू ठहर जा और जो दूसरे काम करने है वे करने लग । भगवान की आज्ञा का अर्थ मैं यह समझा कि रोग तो किसी भी सम-बुद्धिवाले और ठीक विचार करनेवाले को होता नही । तो कुछ-न-कुछ जीवन मे और विचार मे दोष है, उसे पहचान ले और कम-से-कम इतना तो कर कि औषधियो का उपयोग छोड दे । मनुष्य की श्रद्धा की कसौटी मौके पर ही होती है । कम-से-कम इस वक्त जब भगवान से सूचना मिली है, विना औषधि के ही मैं काम करू । वह भी अहिंसा का एक प्रयोग होगा । यो सोचकर मैं ठहर गया । एक जगह बैठ गया और जितना हो सकता था उतना जीवन का सशोधन किया । रोग-निर्मूलन यद्यपि नही हुआ तथापि आहिस्ता-आहिस्ता रोग-नियमन काफी हुआ । कह सकते है कि अब शरीर, जितना काम मैं चाहता हू, उतना दे देगा ।

उस समय मैने यह विचार किया कि हमारी सस्थाओ को, जिनके मार्ग दर्शन की जिम्मेदारी मुझपर है, अगर मैं पैसे से मुक्त कर लू और उसमे कामयाव हो जाऊ, तो बैठे-बैठे एक बडी सेवा हो जायगी । उस काम मे मैने मन को और तन को भी लगाया । और जब आहिस्ता-आहिस्ता शरीर काम देने लगा तो पाच-छ घटे परिश्रम होने लगा । जो काम मैने चुना वह खेती का था ।

अब यहा मैने एक फरक आपको बता दिया कि स्वराज्य-प्राप्ति के पहले का रचनात्मक काम और बाद का रचनात्मक काम इन दोनो मे क्या फरक होना चाहिए । मुझे यह लगा कि पहले हमने खेती की तरफ कोई खास ध्यान नही दिया

था, लेकिन अव वह नही चलेगा। किसानो के जीवन मे हमे दाखिल होना पडेगा और किसान ही वनना होगा। कई कारणो से यह पहले हम नही कर सकते थे। वे कारण अव मौजूद नही रहे । रचनात्मक काम मे यह फर्क होना चाहिए, ऐसा मुझे लगा और खेती का आरभ मैने कर दिया।

उसका नतीजा काफी अच्छा आया । सेवाग्राम-आश्रमवालो ने यह निश्चय किया कि इस साल की समाप्ति के वाद पैसे का दान नही लेंगे और जो कुछ काम वहा हो सकता है वह शरीर-परिश्रम से ही किया जायगा। यह चीज मुझे वहुत महत्व की लगी, क्योकि जहा गाधीजी का निवास-स्थान था वहा अगर आश्रम जैसी कोई साकार वस्तु नही रहती है तो वह अच्छा है। इसमे निराकार और निर्गुण मे जो पवित्रता होती है उसका अनुभव लोगो को आयेगा। लेकिन अगर कुछ साकार वस्तु वहा रहती है, याने कोई सस्था वहा रहती है, तो वह प्रकट होनी चाहिए और आज की जो आवश्यकता है उस आवश्यकता की पूर्ति का दर्शन उस सस्था मे होना चाहिए। और जो शुद्धतम आदर्श हमारा है उसके पालन का प्रयत्न वहा होना चाहिए। इस साल आश्रमवालो के साथ काफी वाते हुई। उन लोगो ने इस विचार को मान लिया।

मुझे जो करना था वह सिर्फ इतना नही था कि सस्था को मै पैसे से मुक्त करू, लेकिन काम यह था, और यह है, कि सस्थाओ के जरिये आस पास के गावो मे प्रवेश करना और ग्रामीण जीवन को जहातक हो सकता है, वाजार से मुक्त रखना अर्थात् मुख्यत अन्न, वस्त्र और मकान और कुछ सीधे-सादे उपयोग के औजार, इतनी वस्तुओ मे अगर वे स्वावलवी वने, तो वाकी चीजो के लिए वाजार रहेगा। वाजार छोड देने की न आवश्यकता है, न शक्यता है। लेकिन इन वुनियादी चीजो को वाजार से लाने की हालत न रही तो आज की कठिन परिस्थिति का वहुत-कुछ इलाज होगा। मुझसे कोई पूछता है कि आजकल जो सव चल रहा है उसके विरोध मे आप क्या योजना सुझाते है ? उसके उत्तर मे मेरे पास यह असली योजना है। इससे भी वेहतर योजना हो सकती है। लेकिन वह योजना इस योजना को तोडनेवाली नही होगी, वल्कि इसकी पूर्ति करनेवाली होगी। लेकिन मेरे दिमाग मे कोई दूसरी योजना नही सूझती है। मै चाहता हू कि सारे हिन्दुस्तान मे हमारे जो कार्यकर्ता है वे जरा मन मे सोचे और एक नया उत्साह और एक नई दृष्टि सपादन करे।

मै जानता हू कि कुछ कार्यकर्ता वहुत पुराने है। शरीर से कुछ थके हुए भी है। लेकिन उनसे भी मै आशा करता हू कि वे विचारो मे फिर से युवा वन जाय। शरीर चाहे साथ कम दे या अधिक दे उसकी विशेष परवा न करे, वल्कि जव कुछ अनुभव हो चुका है तो शरीर से हम भिन्न है, इस चीज पर जोर दे। जो युवा है, उनका शरीर तो इस काम के लिए तैयार हो ही सकता है। तो ये युवा और वे

पुराने अनुभवी, दोनो मिलकर जहा-जहा हमारे छोटे-मोटे केन्द्र है या छोटी-मोटी सस्थाए है उन सवको शरीर-परिश्रम पर और विशेष करके खेती के परिश्रम पर और अपरिग्रह पर खडी करे। यह सर्वोदय-सेवको के लिए एक वात मैने कही।

एक भाई ने मुझे पत्र लिखा है, जिसमे वह कहते है कि सर्वत्र व्यापक जो भगवान है उसकी हस्ती से इन्कार करना और सर्वत्र विराजमान पैसे के विषय मे विरोध पैदा करना कहातक सम्भव है ? वह जो उपमा उन्होने दी वह काफी समाधानकारक है, ऐसा मुझे लगा, क्योकि भगवान को तो हमने देखा ही नही, लेकिन पैसे को तो चारो ओर देखते है, और जैसा अर्जुन ने कहा था कि तुझे पूर्व मे नमस्कार और पश्चिम मे नमस्कार, वैसे हम उन पैसो को सब दिशाओ मे नमस्कार करते है। हमारा सिर दश दिशाओ मे इसके सामने झुकता है। इस हालत मे इसके पजे से मुक्त होना कठिन है, यह मै कबूल करता हू। इसमे काफी विवेक रखने की आवश्यकता है और सव लोगो को मिलकर काम करने की आवश्यकता है। यह अकेले मनुष्य का काम है, ऐसा मै नही मानता। लेकिन इस काम के लिए हमारे कई भाई तैयार हो जाय, तभी सर्वोदय-विचार फैलेगा, अहिंसा फैलेगी। अगर हम इतनी हिम्मत न करे तो हमको कबूल करना होगा कि हम वे लोग नही होगे जिनके जरिये यहा अहिंसक क्रान्ति पैदा होगी, याने अहिंसा के जरिये क्रान्ति नही होगी। फिर क्रान्ति के लिए दूसरे साधन ढूढने होगे या फिर हिंसा का साधन लेना होगा। लेकिन भगवान ने अगर हमको अहिंसा की प्रेरणा दी है और एक ऐसे महान पुरुष का आश्रय दिया, जिसका वरदहस्त हमपर रहा और जिसके साथ हमने काम किया है, तो उस विरासत मे मिली हुई चीज को आगे वढाने मे हमारे शरीर मिट जाय, यह अच्छी वात होगी। इससे बेहतर हमारे शरीर का अन्त और कोई नही हो सकता। हमको यह भी नही सोचना चाहिए कि इतना करने के बावजूद क्या दुनिया की हालत वैसी-की-वैसी रहेगी या इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप कुछ परिवर्तन होगा। मै कहता हू कि इस तरह सोचना बेकार है। यह फलासक्ति हमे रखनी ही नही चाहिए, बल्कि निश्चयपूर्वक इस काम मे जुट जाना चाहिए, ऐसी मेरी राय है।

इसके प्रयोग का कुछ आरम्भ वर्धा मे शुरू होगया है और दूसरी जगहो मे भी भगवान प्रेरणा दे रहा है। कई जगहो से मुझे मालूम हुआ कि लोग इस चीज को पसन्द करते है और हो सकता है तो इसे हाथ मे लेने की इच्छा रखते है। मै चाहता हू कि जिसकी जितनी श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा है वह सारी इस विचार को दृढ करने मे लगाये और पूर्ण प्रयत्न करते हुए अपना जीवन इस कार्य के लिए दे दे। इस विचार को सुनकर जवानो मे अत्यन्त स्फूर्ति पैदा होती है, इसका अनुभव मैने किया है। पवनार मे मेरे पास काम करने के लिए पुराने साथी कम है। नये ही साथी ज्यादा आये है। वहुत-से कालेज आदि के लडके है। इस प्रयोग के नाम

से कालेज छोडकर आये हैं। उनको वहापर कुआ खोदने और धूप मे खेतो मे काम करने मे एक अजीब-सा आनन्द मिलता है, यह मै देख रहा हू। इसका अर्थ यह है कि यह परमेश्वर की इच्छा है और वह इस चीज को चाहता है, नही तो जो युवा कालेज मे पढते हे उनको अपनी विद्या मे तो इसकी तालीम नही मिलती है, कालेज की विद्या तो विल्कुल इसके विपरीत चलती है। वावजूद इसके जव वहा के चन्द विद्यार्थियो को ही क्यो न हो, ऐसी प्रेरणा भगवान देता है तो उसका मतलव यही है कि भगवान की यह इच्छा है। ऐसा समझकर हिम्मत के साथ इस काम मे हम लोग लग जाय, यह एक मेरी प्रार्थना है।

दूसरी वात जो मै कहना चाहता हू, और जिसको करने का आप लोगो ने सोचा भी है, वह है शान्ति-सेना की। शान्ति-सेना लोगो मे जहा अशान्ति पैदा होती है वहा एक दूसरे स्वरूप मे प्रकट होती है। लेकिन सर्वसामान्य प्रसगो पर भी शान्ति-सेना की आवश्यकता होती है और तव वह रचनात्मक काम भी करती है। मै चाहता हू कि हमारे मुल्क मे जितने भी रचनात्मक कार्य के केन्द्र हे, उनमे से दो-चार शान्ति-सेना के ऐसे केन्द्र होने चाहिए जो गाव-गाव मे घूमते रहेगे। हफ्ते मे एक दिन भी क्यो न हो, लेकिन गावो मे घूमने का काम जारी रहना चाहिए और लोगो के साथ सपर्क मे हमेशा आना चाहिए। उन लोगो का परिचय होना चाहिए, जो दु खी है, दरिद्र है, पीडित है या कई कारणो से जिनके दिमाग का शात रहना कठिन होगया है। समाज मे ऐसे कई अश होते हे। उन अशो से परिचित रहना और उनके हृदय के साथ अपना सपर्क वनाना जरूरी हे। इसके लिए जगह-जगह शाति-सेना खडी होनी चाहिए। शाति-सेना का यह मतलव नही है कि केवल अशाति के समय काम करे। यह तो अहिसा की सेना है। इसलिए महीने भर मे एक वार इकट्ठे हो जाय और जो थोडा-सा समझ लेना है, वह सुन लिया करें और वाकी घूमने का काम करे। लोगो मे जाकर प्रत्यक्ष काम करे। शाति-सेना की इस तरह की रचना होनी चाहिए।

जहा हम ऐसी रचना की वात करते हे वहा काम कौन करेगा और इसकी सघटना कैसी हो, यह सवाल पैदा होता है। मेरा अपना तो शब्द पर ही विश्वास है। और जो तुलसीदास ने कहा हे उसका अनुभव भी करता हू कि जो काम राम नही कर सकता है वह उसका नाम कर सकता है। इसलिए मै तो कहूगा कि यह शब्द आप लीजिये और स्वतत्रतापूर्वक अपने-अपने स्थान पर इसकी योजना वनाइये। सिर्फ इतना ही कीजिये कि जो काम आप करेगे उसका कुछ विवरण 'सर्वोदय' की कचहरी मे भेजे और वहां से अगर कोई सूचना मिली तो उसपर विचार करे। विचार मे अगर वह चीज जचे तो उसपर अमल करे। मै सघटना नही चाहता हूं, इस तरह की कुछ गलतफहमी लोगो मे है। दरअसल वात ऐसी है कि सघटना अहिसा की भी होनी है। लेकिन उसका अपना एक ढग है और वह

ढग इतना न्यारा है कि उसको सघटना नाम देना भी उचित नही होगा। अहिंसा की जो सघटना होती है उसमे यह खूबी होती है कि सलाहकार सलाह देते है। जिनको यह सलाह जचती है वे उसपर अमल करते है और क्योकि वह सलाह उनको जचती है, इसलिए बहुत निष्ठापूर्वक वे उसपर चलते है। इस तरह यह उत्तम और मजबूत सघटना होती है। दूसरी सघटनाओ मे यह होता है कि ऊपर से सलाह नही, बल्कि आज्ञा आती है। उस आज्ञा का पालन अगर कोई करता है तो यह नही कह सकते कि पूर्ण श्रद्धा से वह करता है। आज्ञा-पालन के खयाल से उसको यह पालन करना पडता है, इसलिए वह उत्तम नही होता और अगर कोई उसका पालन नही करता है तो उसके विरुद्ध कुछ अनुशासन की कार्रवाही की जाती है। सघटना का यह एक तरीका है। लेकिन इससे बिल्कुल विपरीत हमारी कल्पना है। कम-से-कम मेरी तो है। सलाह दी जाय, और अगर वह जचती है तो उसको माना जाय। अगर नही जचती है तो न माना जाय, बस यह बात है। जिसको सलाह जचती नही है वे अगर उसपर अमल न करे तो उनके विरुद्ध किसी तरह की कार्रवाही करने का कोई सवाल ही नही है। यह हमारी योजना है। इसमे भी बहुत भारी सघटना की शक्ति भरी है, बशर्ते कि सलाह देनेवाले अक्लमद है, बशर्ते कि वे खुद अपनी सलाह पर चलते है, बशर्ते कि दूसरो को वे अपनी सलाह जचा सकते है। यह अगर हो सकता है तो इससे कम सघटना या कम रचना होती है, ऐसा नही है। उल्टे इससे बलवान और बेहतर सघटना होती है, ऐसा मै मानता हू।

तो अपनी जगहो पर शाति-सेना चलाइये। सामान्य समय मे कुछ रचनात्मक काम करके लोगो मे थोडा घूमना चाहिए। इस तरह जगह-जगह, जहा अपने कार्यकर्ता बैठे है, वहा ही जाय तो यह काम आगे बढेगा। इस काम को छोडना नही है, बल्कि बल देना है।

तीसरी बात, जिसकी यहा चर्चा भी होगी, यह है कि ये जो गुडिया हम लेते है उसको अगर हो सकता है तो हम अत्यत व्यापक स्वरूप दे। हमारी मेम्बरशिप तो हमने नही रखी है। जो भी कहता है कि मै मेम्बर हू, उसको हम मेम्बर कबूल करते है। लेकिन सर्वोदय-विचार हमे प्रिय है, सत्य और अहिंसा को हम मानते है, उससे हमे बल मिलता है, इस तरह की भावना जिनकी है वे अपनी भावना के निदर्शन के तौर पर सालाना एक गुडी दिया करे। इस तरह अगर हिंदुस्तान भर मे हम प्रचार करे और घर-घर यह चीज पहुचाये तो इसमे बहुत शक्ति भरी है, ऐसा मै देखता हू। अगर अपनी शक्तिभर उसका प्रचार हम कर सके, तो नतीजा यह आयेगा कि लाखो लोगो के पते हमारे पास रहेगे और हमारे विचार के वोटर्स कितने है, इसका हमे थोडा-सा अदाजा लग जायगा। फिर उन्ही लोगो के लिए यह एक बडा भारी कार्यक्रम रहेगा कि जिन्होने गुडिया दी है, उनके

आज हमारे चारो ओर कई तरह की अशुद्धिया व्यवहार मे चल रही है। मै अपने व्यवहार मे किसी तरह की अशुद्धि नही करूगा, ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाले लोग तैयार करने की इसमे कल्पना है। व्यवहार की अशुद्धि जहा इतने व्यापक प्रमाण पर चल रही है वहा एक व्यक्ति को अपना व्यवहार शुद्ध रखना कहातक सम्भव है, ऐसा सवाल उठाया जा सकता है। मनुष्य की भी अपनी एक मर्यादा होती है। फिर भी उस मर्यादा को सम्हालते हुए शुद्ध व्यवहार की प्रतिज्ञा जरूर ली जा सकती है, और ऐसे भाई प्रतिज्ञा लेने के लिए तैयार हो जाय और जगह-जगह ऐसी मडलिया बने, तो उसका भी परिणाम हवा को बदलने मे होता है, क्योकि समझना चाहिए कि लोक-समाज कभी दुर्जन नही हो सकता। यह एक बुनियादी श्रद्धा है। वह अगर हम खो बैठते है या उसे नही मानते है या उसके विषय मे शका रखते है तो समझना चाहिए कि अहिंसा के विषय मे ही हमे शका है। फिर तो हमारा कार्यक्रम दूसरा हो जायगा। लेकिन इस बुनियादी श्रद्धा को अगर हम मानते है तो हमे सहज ही मालूम हो जायगा कि लोग इतनी बडी तादाद मे नही बिगड सकते, नही बिगडे है। किन्तु दूसरी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है—उसको व्यवस्था नाम भी क्या दे, वास्तव मे वह अव्यवस्था है, लेकिन दुनिया भर मे वह चली है और उसके राज्यछत्र मे सारी दुनिया है—उस व्यवस्था के कारण लोगो को, इच्छा हो न हो, केवल अनिच्छा, बुराई के लिए उतारू होना पडता है। इस तरह लोग बुरी हवा के झोके मे आ गये है। ऐसी जहा हालत है वहा चन्द लोग भी अगर सभल जाय और बता दें कि अगर थोडी कोशिश करें—ऐसी हवा मे हम टिक सकते है, अगर ऐसा दर्शन होजाय—तो वह चीज हवा मे परिवर्तन लाने मे भी मदद दे सकती है। ऊपर से ही आसमान से चीज बने, या सारा राज्यतत्र बदल जाय तब यह बदल जायगा, ऐसा माने तो एक तरह से आत्म-प्रयत्न कुठित होता है और निराशावाद-सा हो जाता है। ऐसा नही होना चाहिए। यह जो शुद्ध व्यवहार की योजना है उसका भी आयोजन करना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है।

तो ये पाच सूचनाए मैने आपके सामने रखी है। आखिर मे इतना ही कहता हू कि आप एक बडी जमात है। चाहे आप कम सख्या मे दीखते है, चार हजार लोग है, ऐसा कहते है, लेकिन मै मानता हू कि इन चार हजार के अलावा अलिखित सदस्य और भी बहुत-से है। फिर भी यह खुशी की बात है कि लोग इसमे सोच-सोचकर दाखिल होते है, नही तो सर्वोदय-समाज मे तो कोई भी दाखिल हो सकता है। मुझसे पूछा गया कि क्या शराबी भी सर्वोदय-समाज मे दाखिल हो सकता है? मैने कहा था कि हा, शराबी भी आ सकता है, क्योकि शराबी भी कोई खराब आदमी नही होता। यह एक तरह का भक्ति-मार्ग है। और भगवान ने ही कहा है, 'अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्, साधुरेव स मन्तव्य' सम्यग् व्यवसितो हि स.।' जिसने सम्यक् व्यवसाय कर लिया है, याने मन

मे निश्चय कर लिया है कि शराब छोडूगा और सर्वोदय का नाम लूगा, उसने एक ऐसा बडा भारी कदम उठाया और उतने शब्द से ही उसने ऐसा काम कर लिया कि जिससे उसका जीवन बदलने की आशा बन गई और वह सही रास्ते पर आ गया। इसलिए इसमे अत्यन्त दुराचारी को भी अवसर है, ऐसा मै कहता हू। ऐसी हालत मे, याने जब हरकोई इसमे दाखिल हो सकता है, लोग सोच-सोचकर इसमे दाखिल होते है, यह खुशी की बात है और यह एक आशादायक चिह्न है। मै मानता हू कि यह छोटी जमात है, लेकिन चुनी हुई जमात है और इसकी तरफ लोगो की आशा लगी हुई है। निराशा मे आशा का स्थान हो जाता है। जिनकी ओर लोगो की भी आशा लगी है उनको केवल अपनी नही, बल्कि लोगो की भी इच्छा-शक्ति प्राप्त है। हमारी खुद की शक्ति कितनी अल्प है, यह तो हम महसूस करते ही है। लेकिन जहा उसमे दूसरी शक्ति मिल जाती है वहा वह एक बडी चीज बन जाती है। इस तरह सोचेगे, तो मालूम होगा कि हमारी शक्ति कम नही है। हम शक्तिशाली है और हम अपना काम जरूर आगे बढा सकते है। इसके अलावा जो काम हम करने जा रहे है उसके लिए भगवान का भी आशीर्वाद है तो वह काम होने ही वाला है, ऐसी श्रद्धा हम रखे।

हमारे जैसे टूटे-फूटे लोगो से भी बापू ने काम लिया और अपना आशीर्वाद हम लोगो को दिया। हमारे दिलो मे एक-दूसरे के लिए एक प्रेम का प्रवाह गुप्त रूप से बहता है। वैसे प्रेम तो बाहर भी प्रकट हो सकता है, लेकिन वह अन्दर का जो गुप्त प्रवाह होता है—गुप्त गगा, सरस्वती के जैसा—वह सच्चा होता है। मेरा तो अनुभव से यह विश्वास होगया है कि हम चर्चा करते है, बोलते है, तब कुछ कटुता भी कभी-कभी दिखाई देती है, लेकिन फिर भी हमारे दिलो मे एक ही नाम है और एक ही प्रेम है। हम सारे एक प्रेमसूत्र मे बधे हुए है।

तीसरा सर्वोदय-सम्मेलन,
शिवरामपल्ली, ८ अप्रेल १९५१

३ : : सर्वोदय की दिशा में

मैने शिवरामपल्ली से तेलगाना जाने का सकल्प किया था, यह सुनकर आज सुबह एक भाई ने बताया कि उन्हे बहुत खुशी हुई और वह समझे कि आसमान मे रहनेवाला विनोबा अब जमीन पर चलने लगा। बात असल यह है कि विनोबा अगर पहले आसमान मे रहता था तो आज भी आसमान मे ही रहता है। मेरे मन की स्थिति वही है जो पहले थी और अगर आज मै जमीन पर हू, तो उस वक्त भी जमीन पर ही था। फर्क इतना ही हुआ है कि उस वक्त अगर मै जमीन पर था तो

एक सीमित दायरे मे था और आज उस दायरे का विस्तार हुआ। उस वक्त मेरे शिरच्छत्र रूप गाधीजी मौजूद थे। मेरा सबध जनता से आता था और मै चुपचाप देहात की सेवा मे लगा हुआ था। अगर गाधीजी आज होते तो आज भी मुझे आप लोग यहा नही पाते। या तो मै लगा रहता परम शाति पाता हुआ अपने भगी-काम मे या बुनाई-काम मे और तब भी यही रूप आप मेरा देखते।

जब बापूजी गये तो मेरे सामने यह सवाल पेश हुआ कि अब मुझे क्या करना चाहिए। मैने यह नही सोचा कि बापू मुझसे क्या चाहते थे। मेरा सोचने का तरीका वह नही है। मुझे अदर से प्रेरणा हुए बिना दूसरो की बात कम जचती है।

इतने मे सेवाग्राम मे एक सम्मेलन हुआ, जहा तय हुआ कि हमे एक सर्वोदय-समाज बनाना है। उस वक्त शरणार्थियो का काम देश मे चल रहा था। उनकी सेवा का आदेश मुझे मिला और मै निकल पडा। उसीके अनुसधान मे शरणार्थियो मे कुछ काम किया। उधर मेवो मे मुझे कुछ काम करने का मौका मिला। तबसे मै यह सोचने लगा कि समाज की आज की विषम परिस्थिति मे कुछ-न-कुछ रास्ता निकलना चाहिए। दस-पन्द्रह माह मै घूमता रहा। मेरे निरीक्षण का नतीजा यह निकला कि अगर हमे जीवन मे अहिंसा का दर्शन करना है, अहिसक पद्धति से जीवन-परिवर्तन तथा समाज-परिवर्तन करना है, तो देहात के लोगो से, जनता के हृदय के साथ हमारा अनुसधान होना चाहिए और देश के स्वरूप-दर्शन के लिए पैदल-यात्रा करनी चाहिए। मेरा यह विचार पहले से तय था। किन्तु लोगो को मालूम नही था। इसी बीच शिवरामपल्ली-सम्मेलन मे आने के लिए मुझसे आग्रह किया गया और मै पैदल निकल पडा। इस यात्रा के बीच मुझे स्वदेश का जो दर्शन हुआ, वह एक स्थान मे निबद्ध होने से नही हो पाता।

फिर शिवरामपल्ली से मुझे वर्धा लौटना था और यह स्वाभाविक है कि आदमी जिस रास्ते से आता है उसी रास्ते से नही लौटता। इसलिए मैने तेलगाना से होकर लौटने का सोचा। कम्यूनिस्टो के कारण उधर बहुत परेशानी थी, फौज और पुलिस पर पाच करोड का खर्चा होता था और फिर भी परिस्थिति काबू मे नही आ पाई थी। इसलिए मैने सोचा कि एक बार जाकर देखना चाहिए। मुझे इतना ही मालूम था कि वहा बिना किसी साधन के, निशस्त्र प्रवेश करना है। पहले से कोई साधन सोचे बिना हम जो काम करते है उसीको मै निशस्त्र कहता हू। उसका परिणाम भी निकला। वर्धा लौटने पर मुझे पडित नेहरू का निमत्रण मिला।

आगे मै कुछ कहू, इसके पहले यह जरूरी है कि मै आप लोगो के सामने पडित नेहरू और प्लानिंग कमीशन के साथ की अपनी बातचीत का सार रख दू। मेरी कोशिश यह रही कि प्लानिंग कमीशन के और हमारे बीच यदि कोई समाधान-कारक बातचीत हो सके तो करनी चाहिए। मैने बातचीत तो बहुत की और उन्होने भी प्रेम से, इतमीनान से सुना। चर्चा अच्छी हुई। मुझे उन्होने बातचीत के लिए

बुलाया, उसका भी एक कारण हुआ। प्लानिग कमीशन की ओर से श्री पाटिल वर्धा आये थे। तब उन्होने प्लानिग कमीशन की रिपोर्ट के बारे में मुझसे बात की थी। उस समय मैंने उस रिपोर्ट पर टीका की थी। मुझे कहना चाहिए कि मुझे इस रिपोर्ट से बहुत सदमा पहुचा था। इसलिए मैंने प्रखर टीका की और तीव्रता से विचार-प्रदर्शन किया, जैसा कि मैं अक्सर नही करता हू।

जब मैं दिल्ली पहुचा और कमीशन के सदस्यो के साथ बातचीत हुई तो उसमे पडितजी भी हाजिर थे और मैंने फिर से प्लानिंग कमीशन की रिपोर्ट की तीव्र आलोचना की। मुझे दु ख इसी बात का था कि पडित नेहरू ने कई बार एलान किया कि हम सन् १९५२ के बाद बाहर से अनाज नही मगायेंगे और वह अपनी प्रतिज्ञा पर कायम नही रह सके। उन दिनो मैं यात्रा मे घूमता था। लोग मुझसे पूछा करते थे कि क्या सचमुच हमारी सरकार १९५२ के बाद बाहर से अनाज नही मगायगी। लेकिन जब प्लानिंग कमीशन की रिपोर्ट निकली, जिसमे अन्न-स्वावलबन का जिक्र नही था, बल्कि तीस लाख टन अनाज सालाना बाहर से मगाने की बात कही गई थी और वह भी बेमुद्दत, और इस वर्ष तो पचास लाख टन मगाने की बात थी, तो मुझे लगा कि यह प्रतिज्ञा भग हो रही है। मुझे इसका बहुत दु ख हुआ, मैंने वहा कमीशन के सदस्यो के सामने वह दु ख प्रकट किया और तीव्रता से प्रकट किया, क्योकि मैं आशा रखता था, और आशा रखने का मुझे अधिकार भी था। जब आप कमीशन मुकर्रर करते हैं, तो उसमे कहना चाहिए कि हमने जो निश्चय किया है, उसके पालन के लिए योजना बनाने का आदेश हम आपको देते हैं।

मैंने जो विचार वहा प्रकट किये उनपर तीन दिन तक काफी चर्चा हुई। बीच मे वे चुनाव के काम मे लगे रहे। उसके बाद उन्होने अपना निर्णय मेरे पास भेजा। उन्होने जो कुछ अपना निवेदन मुझे लिख कर दिया था, मैं उसे ठीक समझ नही पाया था। यह नही कि उनके लिखने मे कुछ दोष था, लेकिन स्पष्टता नही थी। जो हो, उसका सार जो नदाजी ने मुझे बताया यह है कि पाच साल के बाद मामूली हालत मे सरकार बाहर से अनाज न मगाने की प्रतिज्ञा करती है।

उनका निर्णय सुनकर मेरा खुशी होना स्वाभाविक है और मैं आशा करता हू कि आप सबको भी खुशी होगी। मुझे कहना चाहिए कि मैंने दिल्ली मे उस चर्चा के बीच कमीशन के मेम्बरो का जो दृष्टिकोण देखा, उसमे मेरी कोशिश यही रही कि उनके साथ जितना भी मिल सकू, मिलने का प्रयत्न किया जाय, क्योकि आखिर वे लोग हमारे ही हैं। वे गाधीजी का नाम लेते हैं। उनके नेता हैं हम सबके प्रिय पडित जवाहरलालजी और मुझे कहना चाहिए कि उनके लिए मेरे दिल मे पक्षपात है और उन्होने भी मेरे विचारो को अधिक-से-अधिक समझने की कोशिश की।

दूसरी बात यह है कि कोई भी नेशनल प्लानिंग नेशनल कहलाने के लायक नही हो सकता, अगर वह अपने देश के सब लोगो को पूरा काम न दे सके। परिवार मे ऐसा नही होता कि बारह मे आठ या दस लोगो की फिक्र की जाय। ऐसा कोई घरवाला नही जो अपने घर के तमाम लोगो के लिए रोटी और काम का प्रबध न करता हो। नेशनल प्लानिंग का यह बुनियादी उसूल होना चाहिए कि सबको काम देने की जिम्मेदारी हमारी है और अगर हम जिम्मेदारी उठा सकते है तो ही नेशनल प्लानिंग करना चाहिए। लेकिन अगर हम ऐसी जिम्मेदारी नही उठा सकते, तो केवल सिफारिश करने से यह काम नही बननेवाला है। सबको काम और सबको रोटी, हमारा मूलभूत सिद्धात होना चाहिए, क्योकि वह बुनियादी बात है। इसके लिए हमे हरेक को औजार देने होगे और जो उत्पादन होगा वह सबमे बाटना होगा।

लेकिन उसके खिलाफ एफिशियन्सी यानी क्षमता की दलील दी जाती है। क्षमता मुझे भी चाहिए। लेकिन इसके पहले कि मै क्षमता की बात कहू, मै हरेक को काम और खाना देना चाहता हू, वरना कुछ लोगो को हम काम और खाना दे सके और कुछ लोगो को न दे सके, तो वह नेशनल प्लानिंग नही हो सकता। कमीशन के सदस्यो मे से एक ने कहा कि यह नेशनल प्लानिंग (राष्ट्रीय सयोजन) नही है, पार्शियल प्लानिंग (आशिक सयोजन) है। इसमे किसी-न-किसीका बलिदान तो होगा ही। तब मैने यह कहा कि अगर आपका यह पार्शियल प्लानिंग है, तो वह पार्शियलिटी (पक्षपात) आपको गरीबो के पक्ष मे करनी चाहिए और कहना चाहिए कि हम सबके लिए प्लानिंग नही कर रहे है। अगर बलिदान ही करना है तो हम अपना खुद का करे, दूसरो का नही। साराश यह है कि आपको सारे देश की जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए और इस जिम्मेदारी को निबाहने का उत्तम-से-उत्तम तरीका आज की हालत मे यही हो सकता है कि गाव मे बननेवाले कच्चे माल से ही गाव की आवश्यकता का पक्का माल गाव मे ही बनाया जाय। इसीको सेल्फ-सफिशियन्सी—क्षेत्र-स्वावलबन—कहते है। लेकिन मै यहा शब्द के लिए नही झगडना चाहूगा। उनको स्वावलबन शब्द स्वीकार नही। स्वावलबन को वे कल्पना की वस्तु समझते है और उनका कहना है कि वे काल्पनिक वस्तु के पीछे नही जाना चाहते। अगर सबको काम देने के लिए वे ग्रामोद्योगो को मान लेते है, लेकिन शब्द को नही मानना चाहते, तो मुझे शब्द का आग्रह नही। मैने तो यहातक कह दिया कि अगर आप किसी यान्त्रिक साधन से भी सबको काम दे सकते है तो मुझे विरोध नही है। लेकिन अगर आप ऐसा नही कर सकते है तो आपको चरखे का साधन स्वीकार करना चाहिए। यह बेचारा इतना गरीब है कि आप जब चाहेगे वह आपका दूध तपाने के लिए तैयार रहेगा और कभी शिकायत नही करेगा। लेकिन जबतक आप और कोई औजार देश के सामने नही

रखतें, तवतक ग्रामोद्योगो को फौरन मानने मे क्या हर्ज है ? असल मे इसमे दृष्टि-कोण का ही फर्क है। वे यह नही कहते कि हम पूरे लोगो को काम देगे। काफी लोगो को काम देने की वात करते है। उस कोशिश मे अगर ग्रामोद्योगो की जरूरत हुई तो गामोद्योगो को स्वीकार कर लेगे। मुझे भी वहुत सब्र है। इस तरह इस विपय मे उनके और मेरे वीच मे मतभेद है।

अव जो कुछ भी काम किया गया है उसके वारे मे

गाधीजी के वाद मै सोच रहा था कि कोई ऐसा तरीका अख्तियार करे, जिसमे आम जनता के सम्पर्क मे आ सके। यह सोचते हुए तीन वाते मेरे ध्यान मे आईं, जिन्हे मै सिलसिलेवार आपके सामने रखता हू।

एक यह कि गाधीजी के स्मृति मे हर साल हमने मेला लगाने का जो आयोजन किया है, उस मौके पर गुडिया तो काफी आती है। मुझे इसपर से विचार सूझा कि हरेक आदमी गुडिया तो देता है, पर उसका कोई परिमाण तय नही। कोई कम देता है, कोई ज्यादा देता है। लेकिन अगर हम एक ही गुडी अर्पण करने का नियम रखे तो जैसे हरेक का एक वोट होता है, वैसे ही हरेक से मिलनेवाली यह एक गुडी सर्वोदय-विचार के लिए वोट समझी जायगी। मुझे इसके भीतर छिपी हुई शक्ति का अदाजा हुआ और मैने देखा कि अगर हम लोगो के पास जाकर उन्हे अपना विचार समझाते है, तो गाधीजी की स्मृति के निमित्त श्रम-निष्ठा वढाने के लिए हजारो लोग गुडिया देंगे। यह एक व्यापक कार्यक्रम है। अपने दफ्तर में उन तमाम गुडी देनेवालो के नाम रहेगे, उनके साथ हमारा नित सबध रहेगा। मैने यहातक सुझाया कि जहा एक गुडी ही मिली हो वहा उसे अकेला ही नन्दा दीप समझकर हमे अधिक चिंता करनी है और उससे नित्य सम्पर्क साधना है। इस तरह सारे समाज के साथ हमारा सम्वन्ध वनेगा, जिसका परिणाम वहुत भारी हो सकता है। गाधीजी ने काग्रेस के लिए सुझाया था कि लोग चार आने के वजाय सूत की एक गुडी दे, लेकिन वह चीज चल नही पाई। फिर वीच मे तो चार आने का एक रुपया होगया और अव फिर से चार आने हो गये है। इस तरह ये उतार-चढाव चलते रहे, लेकिन उन्हें यह नही सूझता कि पैसे को महत्व न दें। पैसे को महत्व देने से हम क्या साधनेवाले है, मुझे पता नही। कहते है कि हमे काग्रेस मे शक्ति लानी है, उसमे शुद्धि करनी है। लेकिन सोचते नही कि पैसे से न शक्ति आनेवाली है, न शुद्धि ही। अगर सर्व-सेवा-सघवाले गाधीजी की स्मृति मे लाखो गुडिया जमा करते है, तो लोगो को शरीर-श्रम की दीक्षा तो मिलती ही है, उनकी मनोवृत्ति मे भी क्रातिकारी परिवर्तन आनेवाला है, इसमे मुझे सदेह नही है। गत वर्ष इस दिशा मे कुछ काम हुआ, परतु जैसा होना चाहिए वैसा नही हुआ। लोग इसके लिए चुनाव को निमित्त वताते है। चुनाव की माया ऐसी है कि हमारे कुछ सर्वोदय-कार्यकर्ता भी चुनाव मे गिरफ्तार

हुए। मुझे भी सुझाया गया था कि चुनाव के कारण मै कही रुक जाऊ। लेकिन मैने सोचा कि गगा रुकती नही, सूरज डूबता नही, तो मुझे क्यो रुकना चाहिए ? अगर परमेश्वर ही मुझे रोकना चाहे और मेरा पाव टूट जाय, मुझे बैठ जाना पडे, तब की अलग बात है। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि काग्रेसवाले चुनाव मे लगे रहे, आम जनता ने हमारे इस भूदान-यज्ञ के काम मे बहुत दिलचस्पी ली। हमारे विचार एकाग्रता से सुने और काफी सहयोग भी दिया।

दूसरी बात जो मेरे ध्यान मे बापू के जाने के बाद आई वह यह कि आज-तक हमारी सस्थाए पैसे के आधार पर चलती रही, लेकिन वह जमाना गया कि सस्थाए पैसे के आधार पर चलाई जाय। अब नया जमाना आया है। अब तो जहा तक हो काचन-मुक्ति से ही सस्थाए चलनी चाहिए। गाधी-निधि के बारे मे मैं हमेशा खामोश रहा, पर जब एक जगह लोगो ने जाहिरा तौर पर पूछ लिया तो मुझे कहना पडा कि अगर हम गाधीजी की स्मृति आगे चलना चाहते है तो उसमे पैसा साधक नही हो सकता, बाधक ही होगा। मेरी उस राय मे आज भी कुछ परिवर्तन नही हुआ है। मै यह नही कहता कि हमारे किसी काम मे पैसे का सम्पर्क जरा भी न हो। कुछ काम ऐसे है जो पैसे से किये जाते है, जैसे कुष्ठ-सेवा इत्यादि, लेकिन जैसा कि शास्त्रकारो ने कहा है, आमतौर पर यह होना चाहिए कि **श्राद्धन्नं न भक्षयेत**। गाधीजी के श्राद्ध के निमित्त पैसा जमा हो और उससे सस्थाए चलाई जाय तो हमारी उन सस्थाओ मे, जिनके आधार पर हम ग्रामराज्य की कल्पना का निदर्शन करना चाहते है, तेज नही आ सकता। इसलिए हो सके वहा-तक हमे अपनी इन सस्थाओ को पैसे से मुक्त रखना चाहिए। तभी नया चैतन्य आ सकेगा। तभी सारे गावो का उद्धार हो सकेगा। उसका परिणाम सरकार पर भी होगा, क्योकि सिद्ध प्रमेयो का तिरस्कार सरकार नही कर सकती। जो प्रमेय इस तरह सिद्ध होगा उसकी ओर अगर ध्यान नही दिया जायगा तब आगे क्या कदम उठाना है यह हम सोच सकते है, जानते भी है। उसके बारे मे आज कुछ कहना मै उचित नही समझता। मै चाहता हू कि हमारी सस्थाए इस प्रयोग मे लग जाय और आदर्श ग्राम-निर्माण करने के काम मे अपनी सारी शक्ति लगा दे।

इस सबध मे श्री धीरेंद्रभाई ने जो प्रस्ताव आप लोगो के सामने रखा है वह बहुत शक्तिशाली है। जब अपने जीवन मे हम उसे अमल मे ला सकेंगे, तभी हम कुछ कर सकेंगे, नही तो 'परोपदेशे पाडित्यम्' की तरह हमारे कहने का कोई असर नही होगा। हिंदुस्तान की जनता बहुत अनुभवी है। जो सेवक उनकी कसौटी पर नही उतरता उसके कहने का परिणाम उसपर नही होता। उसमे एक तरह की पुराणवादिता है। लेकिन मै उसीमे उसका रक्षण देखता हू, वरना अगर ऐसा हो कि कोई भी सुधारक आये और लोग उसकी बाते मानते चले जाय तो वे डूबने-वाले ही है। सुधारक चाहे कितनी भी श्रेष्ठ पंक्ति का क्यो न हो, जबतक जनता

उसे परख नही लेगी, उसकी बात नही सुनेगी। जनता तो धरती माता की तरह है, जिसपर कुदाली से घाव होता है, लेकिन गेद का स्पर्श योही ऊपर-का-ऊपर उड जाता है। मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि हम लोगो के सामने एक-एक चीज रखते जाते हैं और लोग सहसा एकाएक उसे नही मानते। हम खादी की बात कहते जाते हैं। लोग अभी पूरी तरह उसे नही मान रहे हैं। हम ग्रामोद्योगो की बात कहते जाते हैं। साराश, हमारे विचारो को कसौटी पर कसे वगैर हमारे लोग हमारी बात को नही मानते। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम अपने जीवन मे यन्त्रो का उपयोग न करें। मैंने जो काचन-मुक्ति का तरीका सुझाया है उससे यह हो सकता है।

इस कार्यक्रम को यन्त्र-बहिष्कार कहा गया है। इस सबध मे मै एक बात सुझाना चाहता हू। 'यन्त्र-बहिष्कार' शब्द से बहुत गलतफहमी हो सकती है। फिर स्पष्टीकरण करते रहने से बिगडी बात बन नही पाती। नाम ऐसा ही रखिये जो व्यापक हो जिसमे फैलाव की गुजाइश हो। काकासाहब और दूसरे भी मनीषी यहा हैं, वे कोई उपयुक्त नाम लें। एक गाव मे जहा बरसो से रचनात्मक काम हो रहा है, किसी शख्स ने आटे की मिल खोल दी। कार्यकर्त्ता हाथ के आटे की बात करते ही रह गये। किसी ने सुना नही। आटे की मिल मजे मे चलती रही। मैंने पूछा कि आपके देखते यहा मिल दाखिल हुई तो आपको यह कैसे नही सूझा कि खानगी मिल चलने देने के बदले गाव की मालकियत की मिल आप चलाते। कई जगह पानी खीचने के लिए इजिन लगाना पडता है। उससे सिंचाई होती है। अगर हम यह आग्रह करें कि उस खेती का अनाज स्वीकार नही करेंगे तो हम सकुचित बनेंगे। व्यापकता खोयेंगे। इसलिए शब्द ऐसा चाहिए कि जिसके अर्थ का विस्तार हो हो सके। मुझे आशा है कि शब्द के चुनाव मे आप सावधानी रखेंगे। मैंने काचन-मुक्ति का शब्द इसलिए रखा कि उसमे गलतफहमी की गुजायश कम है। साराश, खाने-पीने और पहनने-ओढने की तमाम वस्तुओ के लिए ग्रामोद्योगो का ही आग्रह रखने के श्री धीरेन्द्रभाई के प्रस्ताव का मै स्वागत करता हू, क्योकि मै मानता हू कि यह प्राथमिक वस्तु है, उससे गाव बलवान बन सकते हैं, और उसके जरिये हम काचन-मुक्ति की ओर भी बढ सकते हैं।

अब तीसरी बात भूदान-यज्ञ की। मैं मानता हू कि यह बहुत ही बुनियादी काम है। लेकिन जैसे कि एक भाई ने कहा, इस काम की एक मर्यादा है। फिर भी मैं क्या करने जा रहा हू इस बारे मे मै अपने विचार आपको समझा दू। जाहिर है कि मनुष्य के हृदय मे क्या छिपा हुआ है, उसकी शक्ति का हमे पता नही चल सकता। अगर उस शक्ति की मैं हद बाध दू तो मुझे कहना होगा कि मुझे आत्म-दर्शन कभी नही हो सकता। हमने देखा कि जनता बिना किसी कानून की मदद के अपनी जमीन का हिस्सा दे सकती है—अगर हम जनता को समझाये कि

'बेजमीनो' का-उसपर हक है और जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी भगवान की देन है वैसे जमीन भी भगवान की देन है, इसलिए जो बेजमीन है उन्हे जमीन देनी चाहिए, तो जमीनवाले बेजमीनो को खुशी से जमीन देते है। इस तरह हमने देखा कि लोगो ने इस क्रातिकारी कार्यक्रम को अपनाया और उसकी आत्मा मे छिपी हुई अपार शक्ति का दर्शन हमे मिला।

अगर हम मानते है कि स्टेट (राज्य) को एक रोज 'विदर अवे'—झड जाना—समाप्त हो जाना है—तो वह १९५२ मे क्यो नही हो सकता ? हमारी श्रद्धा ऐसी होनी चाहिए कि अगर मै इस विचार को पसद करता हू, इस तरीके मे श्रद्धा रखता हू और इस यज्ञ मे अपनी सारी-की-सारी जमीन दे देता हू तो वह विचार दूसरो को भी ऐसी प्रेरणा क्यो नही देगा ? एक भाई ने अपनी उन्नीससौ एकड जमीन मे से पाचसौ एकड़ जमीन मुझे दे दी—यह कहकर कि हम तीन है, आप चौथे हुए। दूसरे एक भाई ने अपने छ एकड मे से दो एकड दे दिये—यह कहकर कि हम दो भाई है, आप तीसरे हुए। प्राय रोज ऐसी घटनाए घटती है। मै आपसे पूछता हू कि अगर भगवान मुझको मागने की प्रेरणा देता है और अगर एक शख्स मानता है कि मै इतना कर सकता हू तो जो एक व्यक्ति कर सकता है वह सारे मनुष्य क्यो नही कर सकते ? क्या आत्मा का स्वभाव अलग-अलग व्यक्तियो मे जुदा-जुदा होता है ? क्या आत्म-शक्ति की कुछ सीमा होती है ? इसलिए मै तो इसी विचार के सहारे आगे बढूगा कि हर व्यक्ति मे आत्मा की शक्ति मौजूद है, उसकी कोई सीमा नही है, और जो त्याग एक व्यक्ति कर सकता है वह सब कर सकते है।

कानून की बात हमेशा उठाई जाती है, लेकिन मेरा कहना है कि कानून की बात कानूनवालो पर छोड दीजिये। हमे तो अपना काम इसी तरीके से किये जाना है। हो सकता है कि इस तरीके से सारी जमीन बेजमीनो मे बट जाय और कानून की आवश्यकता ही न रहे। लेकिन अगर मनुष्य की सकल्प-शक्ति उतनी कारगर नही हुई, जितनी इस समस्या को हल करने के लिए जरूरी है, और राज्य की मदद लेनी ही पडी तो उस हालत मे भी हमे समझना चाहिए कि हमारा यह काम कानून बनाने मे पूरा मददगार होगा। याने या तो कानून की आवश्यकता ही रहेगी, या जो कोई कानून बनाता है वह बिना विरोध के आसानी के साथ बन सकेगा। फिर मेरे मागने का भी एक तरीका होता है। मै अत्यत नम्र होकर मागता हू। डरा-धमकाकर नही मागना चाहता। अगर मै लोगो को समझाता हू कि आप मुझे भूमि नही देगे तो मै दो-चार साल मे कानून से जबर्दस्ती भी ले लूगा, तो मै मागना ही नही जानता। मुझे अपनी श्रद्धा को नही छोडना चाहिए। श्रद्धा तो दीवार की तरह खडी होती है। वह पर्दे के समान लटकती नही रहती। या तो वह खडी है या या पडी है। वह आठ आने या चार आने खडी नही होती। या तो वह है,

या नही है। वह आठ आने जिंदा हे, आठ आने मरी है, ऐसा नही हो सकता। श्रद्धा की यही हालत है। विना श्रद्धा के कोई काम नही वन सकता। श्रद्धा से कृति होती है और कृति के बाद श्रद्धा निष्ठा मे परिणत होती है। निष्ठा प्राप्त होने के पहले मनुष्य श्रद्धा से काम कर सकता है। निष्ठा अनुभवजन्य होती है। वह वाद मे आ मकती है, परन्तु श्रद्धा तो आरम्भ से ही होनी चाहिए। इसलिए कहता हू कि अगर हमे नैतिक शक्ति से यह मसला हल करना है तो हमारी उस तरीके मे अटल श्रद्धा होनी चाहिए।

अक्सर मुझसे लोग पूछते हैं कि क्या आप इस तरह जमीन के मसले को हल कर सकेगे ? मेरा कहना है कि दुनिया का मसला न तो राम हल कर सके, न कृष्ण। दुनिया का मसला दुनिया ही हल कर सकती है। आपका मसला मै हल कर सकू, ऐसा कोई अहकार मुझमे नही है। इसलिए मै सदा निश्चित रहता हू, रात को गहरी नीद सोता हू, एक मिनिट भी मुझे नीद आने मे देरी नही लगती। दिन-भर काम किये जाता हू। कभी मुझे चार एकड जमीन मिलती है, कभी चारसौ और कभी चार हजार, फिर भी मुझे उसका कोई सुख-दु ख नही है। जनक महाराज की तरह सोता हू और इसीलिए काम कर सकता हू।

दूसरी वात सत्याग्रह के सम्वन्ध की है। मै आप लोगो को समझाना चाहता हूं कि मेरी अगर कोई आबरू है तो वह सत्याग्रही के नाते ही है। दूसरी कोई आवरू मेरे पास नही है। इसलिए अगर सत्याग्रह करने की आवश्यकता हुई तो मै जरूर सत्याग्रह करूगा। लेकिन गांधीजी का यह तरीका था कि वह एक कदम उठाना काफी समझते थे। याने दूसरे कदम के वारे मे हम कुछ जानते ही नहीं, ऐसा नही है। लेकिन जहा हमने दूसरे कदम की वात सोची वही हमारे मन मे अपने पहले कदम की सफलता के बारे मे अश्रद्धा पैदा होती है। मै जव कभी वीमार की सेवा करूगा तो इस खयाल से नही करूगा कि सम्भव है, वह न सुधर सके और मर जाय तो दवा के साथ-साथ लकडी भी लाकर रख दू, वल्कि इस खयाल से और इस श्रद्धा से करूगा कि वह उपचार और सेवा से जरूर सुधर जायगा और अगर मर ही जाय तो शान्ति मे लकडी इकट्ठी करूगा। दूसरे कदम के वारे मे हम इसलिए विचार करते है न, कि शायद लोग हमारी वात न माने, वे हमे जमीन न दें। ऐसा मानने मे ही सामनेवाले के प्रति हमारी अश्रद्धा प्रकट होती है। फिर हम श्रद्धावान नही कहलायेगे। मुत्सद्दी—युक्ति-कुशल—कहलायेंगे। अगर जमीन हासिल करने की, ऐसी कोई वनी-वनाई तैयार जुगत होती तो उससे भी शायद जमीन मिल सकती। लेकिन वह काम का सही तरीका नही होता। उससे काम वनने के वजाय विगडता। उसमे हमारे सकल्प में हीनता आती और अगर सकल्प मे हीनता आई तो काम कैसे वनेगा ? मै अपने अनुभव से कहता हू कि जो-जो सकल्प मेरे मन मे उठे वे पूरे होकर रहे। इसलिए लोगो के

पास भी इसी विचार से मागता हू कि जो भगवान मेरे भीतर विराजमान है वही उनके भीतर भी है और उन्हे अपना विचार समझाया जा सकता है। एक बार नही, दो बार नही, अनेक बार समझाया जा सकता है। आखिर शकराचार्य के पास सिवा समझाने के और क्या शस्त्र था ? हमारी अन्तिम श्रद्धा अगर किसी चीज पर हो सकती है तो वह हमारी समझाने की शक्ति पर ही हो सकती है। जैसे ख्रिस्ति (क्राइस्ट) भगवान ने कहा कि अपराधी को क्षमा करना चाहिए और क्षमा की कोई हद नही होती। उसी तरह समझाने की कोई मर्यादा या सीमा नही होती। इसलिए जिसे आप सत्याग्रह कहते है, वह उसी हद तक सम्भव है जिस हद तक उसे समझाने का स्वरूप है। दबाव का स्वरूप आने पर वह सत्याग्रह नही रह जाता। माता जैसे अपने बच्चे के बारे मे यह आशा किये रहती है कि वह कभी-न-कभी सुधरेगा ही, वैसे सत्याग्रही को भी लोगो के बारे मे यह आशा रखनी चाहिए कि उन्हे सूझेगा, सूझेगा और जरूर सूझेगा। इसमे सत्याग्रह का भी स्थान है, लेकिन अगर हम सत्याग्रह को समझेंगे नही तो वह सत्याग्रह सत्याग्रह नहीं रहेगा, वह हिंसा होगी।

आज एक भाई ने प्रश्न उठाया कि जिसके पास एक हजार या दस हजार एकड जमीन हो वह अगर जमीन कम दे तो उसे स्वीकार करना चाहिए या नही ? उसकी उस भीख से क्या होनेवाला है ? हमारे आन्दोलन मे इस सवाल का जवाब प्राय' रोज दिया जाता है—मेरे भाषण मे भी और कृति से भी। मै लोगो को समझाता हू कि न तो मुझे गरीबो को जलील करना है और न श्रीमानो को, इसलिए जब कोई बडा आदमी कम जमीन देता है तो मै स्वीकार नही करता। लेकिन मेरा अनुभव यह है कि थोडा समझाने पर लोग ठीक-ठीक हिस्सा देते है। तीनसौ एकडवाले एक भाई मुझे आकर स्वेच्छा से एक एकड देने लगे। लेकिन जब मैने वह एक एकड लेने से इन्कार कर दिया और अपना दृष्टिकोण समझाया तो उस भाई ने फौरन तीस एकड कर दिये। इस सबमे मुश्किल से मेरे दो-तीन मिनिट लगे होगे। मनुष्य का ऐसा है कि अगर एक पैसे की मिश्री से भगवान राजी होते है तो वह चार पैसे की नही खरीदता। वह इधर भगवान को भी राजी रखने की चेष्टा करता है और उधर पैसा भी बचाना चाहता है। दोनो मे मनुष्य प्रामाणिक होता है। अगर मै किसी मदिर या मठ के लिए मागता होता तो एकाध एकड से भी मेरा काम चल जाता। लेकिन मै तो गरीबो के हक के रूप मे मागता हू और अबतक इस तरह करीब दस हजार लोगो ने दान दिया है। उन दानो मे कई दान परम पवित्र है, जिनका स्मरण मुझे निरन्तर होनेवाला है।

एक दूसरे भाई ने सवाल पूछा कि दान देनेवाले के लिए तो ठीक है, उसकी प्रतिष्ठा बढती है। लेकिन क्या लेनेवाला इससे जलील नही होता ? मेरा कहना है कि नही होता, क्योकि मै भीख नही मागता। मै तो गरीब का हक मागता

हू। अगर मै जमीन न देकर उसे पका-पकाया अन्न देता तो जरूर उसे जलील करता, लेकिन जमीन से वह जलील नही होता। उसी तरह जमीन का प्यासा भी जमीन मागने से जलील नही होता। जो जमीन मागने आता है उसका ही उपकार मानना चाहिए, क्योकि जमीन लेने भर से तो उसमे फसल नही आयगी। फसल के लिए उसे अपना पसीना बहाना होगा। सालभर मेहनत और मशक्कत करने से उसमे फसल मिलेगी। इसलिए उसमे जमीन लेनेवाला दीन नही बनता।

दो आक्षेप और रहे है। कुछ भाई कहते है कि मै इस तरह जमीने मागकर जमीनवालो को सजीवन दे रहा हू। यह आक्षेप मुझे कबूल है। जमीनवालो को तो मुझे सजीवन देना ही है। उनकी जमीदारी को सजीवन नही देना है। वह तो रोग है, उसे निकालकर रोगी को सजीवन देना है। मेरी इस सजीवनी की खूबी यह है कि इससे गरीब गरीब नही रहता, धनवान धनी नही रहता। दूसरा आक्षेप यह है कि लोगो के दिलो मे जमीन की भूख पैदा करके मै उन्हे बागी बना रहा हू। यह आक्षेप भी मुझे मजूर है। दोनो आक्षेप मुझे उस-उस अर्थ मे मजूर है, क्योकि मै एक क्राति को रोकना चाहता हू और एक को लाना चाहता हू। हिंसक क्राति को रोकना चाहता हू और अहिंसक क्राति को लाना चाहता हू।

कुछ प्रश्न कानूनी सुविधा-असुविधा के बारे मे उठाये गए है। एक भाई ने शका उठाई है कि सरकार अगर कानूनी सुविधाए न दे तो मेरा कहना है कि सरकार हर तरह की सुविधाए और मदद देगी। देना उसके हक मे है, लेकिन मान लो कि वह नही देती है, तो क्या होगा? जिन लोगो ने दान दिया है, उन सबका उपकार मानकर मै चला जाऊगा। बाबा का कुछ नही बिगडनेवाला है। सरकार को ही सोचना होगा।

एक बात और। हम लोग यहा किस बात के लिए जमा होते है! जाहिर है कि एक आदर्श समाज-रचना करने की दृष्टि रखकर हम इकट्ठा होते है। केवल चित्त-शुद्धि की एकात साधना करना हमारा उद्देश्य नही हो सकता। कृपालानीजी ने यह बात अच्छी तरह समझाई है। उन्होने विश्लेषण करके यह बात हम लोगो के सामने रखी। किस चीज पर कितना भार देना है यह समझने के लिए विश्लेषण का उपयोग होता है। फिर भी विश्लेषण की मर्यादा है। आखिर वस्तु का मूल रूप विश्लेषण से नही, बल्कि सश्लेषण से मालूम होता है। केवल विश्लेषण से कभी-कभी वस्तु की जान ही चली जाती है। हम तो मोदक प्रिय है। हम न केवल आटा चाहते है, न केवल घी चाहते है, न केवल शक्कर चाहते है। हमने इस काम को उठाया है, क्योकि हम समाज मे परिवर्तन चाहते है। हमने इस काम को उठाया है, क्योकि इससे गरीबो को राहत मिलनेवाली है। हमने इस काम को उठाया है, क्योकि हम आत्म-शुद्धि भी चाहते है। अर्थात् इसके जो-जो अवश्यम्भावी अच्छे परिणाम है उन सबको एकत्र पाने के लिए हमने यह मोदक बनाया है।

मै चाहता हू कि सर्वोदय के सिद्धात के माननेवाले जो लोग यहा आये है वे महसूस कर सके कि वे जो कुछ करना चाहते है वह इस भूदान-यज्ञ के जरिये सध सकता है।

चौथा सर्वोदय-सम्मेलन
सेवापुरी, १३ अप्रैल १९५२

४ : : तीसरी शक्ति

जैसा कि शकरराव देव ने किया, मै भी पू किशोरलालभाई के स्मरण से इस सम्मेलन का आरभ करना चाहता हू। जो एक महान कार्य ईश्वर ने हमे सौंपा है और जिसकी हमने ईश्वर के और जनता के सामने दीक्षा ली है, उस काम मे वह अत्यत तन्मय थे। गीता ने यो कहकर जीवन की कुजी हमे बताई थी कि कर्म मे अकर्म हो सकता है और अकर्म मे भी कर्म हो सकता है। वह शरीर से बहुत कमजोर थे, इसलिए जिसे हम स्थूल कर्म कहते है, वह बहुत नही कर पाते थे। तो भी चौबीसो घटे वह कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे। फिर भी उस कर्म का स्थूल आकार बहुत बडा नही हो सकता था। लेकिन उन्होने हमे यह बताया कि कर्म न कर सकने की हालत मे भी कितना महान कार्य हो सकता है। जिनके हृदय निर्मल होते है, परमेश्वर की कृपा से जिनके राग-द्वेष धुल गये है, ऐसे मनुष्यो की केवल हस्ती ही बहुत काम कर जाती है। ऐसे जो भी थोडे लोग दुनिया मे प्रकट होते है, उनमे से मै किशोरलालभाई की गिनती करता हू। बापू के पीछे हम लोगो को उनका सहारा था और वह अपने सहज सौजन्य से हम लोगो को सभाल लेते थे। उतनी शक्ति हममे से दूसरे किसीमे अभी तक प्रकट नही हुई है। इसलिए उनका अभाव हम लोगो को बहुत महसूस होता है और होता रहेगा। उस अभाव की पूर्ति हम अपने परस्पर के सद्भाव से और सौहार्द से ही कर सकते है। मै आशा करता हू कि वैसा सौहार्द, सौजन्य, सद्भाव और बधुभाव हम लोगो मे रहेगा, ताकि हमारे जरिये ईश्वर का कार्य सपन्न हो।

हम एक कार्यकर्ता-जमात है। यहा सम्मेलन मे आते है तो कुछ बोल भी लेते है, लेकिन यह बोलना भी हमारा काम ही होता है। वह कोई केवल वक्तृत्व नही हो सकता, कर्तृत्व का ही हिस्सा होता है। साल भर कुछ काम करके उसे नारायण को समर्पण करने के लिए हम आते है और दूसरे साल के लिए कुछ सबल लेकर जाना चाहते है। ऐसे मौको पर कुछ विचार-विनिमय, विचारो का लेन-देन कर लेते है। आज हमे उसी दृष्टि से अपने काम के पीछे जो भूमिका है, वह देख लेनी चाहिए, कार्य का जो सशोधन करना है, उसपर भी नजर डालनी

चाहिए। 'कार्य-पद्धति', 'कार्यक्रम' और 'कार्य-रचना', इन तीनो पर हमे थोडा विचार कर लेना चाहिए।

हम दुनिया के किसी गोशे मे भी काम क्यो न करते हो, आज दुनिया की हालत ऐसी नही है कि सारी दुनिया पर नजर डाले वगैर हमारा काम चलेगा। दुनिया मे जो ताकते काम कर रही हैं, जो नये प्रवाह शुरू हुए है, कल्पनाओ और भावनाओ का जो सस्पर्श और सघर्ष हो रहा है, उसकी तरफ ध्यान देकर, उसपर सतत नजर रखकर ही जो भी छोटा-सा कदम हम उठाना चाहे, उठा सकते है। समुचित दृष्टि के विना कर्म अधा हो जायगा। इसलिए दुनिया की हालत का खयाल करना होता है। आज हम देख रहे है कि दुनिया की हालत बहुत चचल है। इतना ही नही, कुछ विस्फोटक भी है। याने उसमे कई खतरो की सभावना भरी है और कह नही सकते कि किस समय उसमे से ज्वालामुखी का विस्फोट होगा। यह कुछ नाहक भयावना चित्र मै नही खीच रहा हू। इससे भयभीत होने का मेरा इरादा नही है। न आपको ही मै भयभीत करना चाहता हू, वल्कि जो हालत है, सिर्फ उस ओर ध्यान खीचना चाहता हू।

एक-दो महीने पहले की वात है। दिल्ली मे कुछ ज्ञानी, विद्वान एकत्र हुए थे और उन्होने अहिंसा के दर्शन के वारे मे कुछ चितन-मनन, विमर्श किया। उसमे हमारे पू. राजेन्द्रवावू ने जिक्र किया था कि आज कोई भी देश यह हिम्मत नही कर रहा है कि हम सेना के वगैर चलायेगे। उन्होने इस बात का दु ख भी प्रकट किया कि वावजूद इसके कि गाधीजी की सिखावन हमने उनके श्रीमुख से सीधी अपने कानो से सुनी है, और वावजूद इसके कि हमने उनके साथ कुछ काम भी किया है, हिंदुस्तान भी आज ऐसी हिम्मत नही कर सक रहा है।

हमारे महान नेता पडित नेहरू कई मर्तबा बोल चुके है कि दुनिया का कोई मसला शरीर-वल से हल नही हो सकता। हमारे ये भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे है और जिनपर यह जिम्मेदारी देश ने डाली है, वे अहिंसा को दिल से मानते है। उनका अहिसा पर विश्वास है। फिर भी यह हालत है कि सेना को वनाने-वढाने की, उसको मजवूत करने की जिम्मेदारी उनको माननी पडती है। इस तरह विचित्र परिस्थिति मे हम पडे है।

स्थिति यह है कि श्रद्धा एक वस्तु पर है, और क्रिया दूसरी ही करनी पडती है। हम चाहते तो यह है कि सारे हिंदुस्तान मे और दुनिया मे अहिंसा चले, हम एक दूसरे से न डरे, वल्कि एक दूसरे को प्यार से जीते। प्यार ही कामयाव हो सकता है और सवको जीत सकता है, ऐसा विश्वास दिल मे भरा है। तिसपर भी एक दूसरी चीज हममे है, जिसे वुद्धि नाम दिया जाता है। वैसे वह भी हृदय का एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है और ये दोनो मिले-जुले है, फिर भी हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नही होगा। एक मसला हल होता-

होगा। यदि हमारे दिल मे कोई दूसरी बात है और उसे हम छिपाते है, तो जान-बूझकर ढोंगी है। लेकिन जहा दिल उस बात को कबूल करता है और परिस्थितिजन्य बुद्धि दूसरी बात कहती है, इस वास्ते लाचारी से कोई बात करनी पडती है, तो वह दाम्भिकता की तो नही, बल्कि दयाजनक स्थिति है। ऐसी दयाजनक स्थिति मे हम है।

अभी राजेंद्रबाबू ने बताया कि सर्वोदय-समाज पर यह जिम्मेदारी है, क्योकि लोगो को उस समाज से अपेक्षा है कि वह समाज अपने मूल विचार पर कायम रहे और उसको आज की हालत मे अमल मे लाने के लिए वातावरण तैयार करे। अगर सर्वोदय-समाज यह करेगा तो आज की सरकार को, जो कि हमारी राष्ट्रीय सरकार है, उसकी सर्वोत्तम मदद होगी। मान लीजिये कि आज हममे से कोई मत्री बन जाय और कुछ मत्र करने लगे तो उसका यह मत्र और उसका वह तत्र, दोनो मिलकर आज की सरकार को उतनी मदद नही देगा, जितनी मदद बिना सैन्य-बल के जिस तरह समाज बन सकता है, उस दिशा मे काम करने से वह देगा।

कभी-कभी लोग मुझसे पूछते है कि आप बाहर क्यो रहते है? देश की जिम्मेदारी आप क्यो नही उठाते? तो मै कहता हू कि दो बैल जब गाडी मे लग चुके है वहा मै और एक तीसरा गाडी का बैल बनूगा तो उतने मे गाडी को क्या मदद मिलेगी? अगर मै यह कर सकू कि वह रास्ता जरा ठीक बना दू, ताकि गाडी उचित दिशा मे जाय, तो उस गाडी को मै अधिक-से-अधिक मदद पहुचा सकता हू। हा, एक बात जरूर है कि अगर मै बैल ही हू, तो मुझे बैल बनना चाहिए, वही काम करना चाहिए। मै एक विशेष भाषा मे बोल रहा हू। मै उम्मीद करता हू कि आप उस भाषा को सहन करेगे। हमारी सस्कृति मे बैल के लिए जितना आदर है, उतना मनुष्य के लिए भी नही है और उसी अर्थ मे मै बोल रहा हू। जो राज्य की धुरी उठाता है, उसे हम धुरधर कहते है। धुरधर के मानी होते है बैल। धुरधर हमे बनना पडता है, लेकिन जो लोग धुरधर बन चुके है, वे कहते है कि आप वही काम मत करिये जो हम कर रहे है। उस काम मे मत लगिये, बल्कि जो कमिया हम महसूस करते है, उनकी पूर्ति आप कर सकते है तो करें। ऐसी आशा से वे लोग हमारी तरफ देखते है। तो हमे यह ठीक से समझना चाहिए और जिस दृष्टि से, जिसे मै स्वतत्र लोक-शक्ति कहता हू, वह जिससे निर्माण हो, ऐसे ही काम मे हमे लग जाना चाहिए। तभी आज की सरकार की सच्ची मदद करेगे और अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

मैने कहा कि हमे स्वतत्र लोक-शक्ति निर्माण करनी चाहिए। मेरा अर्थ यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दड-शक्ति से भिन्न, ऐसी लोक-शक्ति हमे प्रकट करनी चाहिए। आज की हमारी जो सरकार है, उसके हाथ मे हमने दण्ड-शक्ति सौंप दी है, क्योकि उस दड-शक्ति में हिंसा का एक अश जरूर है, फिर भी हम

उसे 'हिंसा' नही कहना चाहते है, हिंसा-शक्ति से भिन्न दण्ड-शक्ति हम उसे कहना चाहते है, क्योकि वह शक्ति उनके हाथ मे सारे समुदाय ने दी है। इस-लिए वह निरी हिंसा-शक्ति नही, दण्ड-शक्ति है। उस दण्ड-शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थिति देश मे निर्माण करना हमारा काम होगा। वह अगर हम करेंगे तो हमने स्वधर्म पहचाना और उसपर अमल करना जाना। अगर ऐसा हम नही करेंगे और दण्ड-शक्ति के उपयोग से ही जो जन-सेवा हो सकती है उसका लोभ रखेंगे तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है उस कार्य को, उस अपेक्षा को, हम पूर्ण नही करेंगे, बल्कि सभव है कि हम बोझ-रूप साबित हो।

मै कुछ थोडा स्पष्टीकरण कर दू। मैंने कहा कि दण्ड-शक्ति के आधार पर सेवा के कार्य हो सकते है और वैसा करने के लिए ही हमने राज्य-शासन चाहा है और हाथ मे लिया है और जबतक समाज को वैसी जरूरत है, उस शासन की जिम्मे-दारी हम नही छोडना चाहते। सेवा तो उसमे से जरूर होगी, पर वह सेवा नही होगी, जिससे कि दण्ड-शक्ति का उपयोग ही न करना पडे, ऐसी परिस्थिति निर्माण हो। मै मिसाल दू। लडाई चल रही है। सिपाही जख्मी हो रहे है। उन सिपाहियो की सेवा मे जो लोग लगे है, वे भूत-दया से परिपूर्ण होते है। वे शत्रु-मित्र तक नही देखते है और अपनी जान खतरे मे डालकर युद्ध-क्षेत्र मे पहुचते है और ऐसी सेवा करते है कि जो माता ही अपने बच्चो की कर सकती है। इसलिए वे दयालु होते है, इसमे कोई शक नही। यह सेवा कीमती है, हरकोई जानता है। लेकिन युद्ध को रोकने का काम वे नही कर सकते। उनकी दया युद्ध को मान्य करनेवाले समाज का एक हिस्सा है। जैसे एक यत्र मे अनेक छोटे-बडे चक्र होते है, वे एक-दूसरे से भिन्न दिशाओ मे भी काम करते रहेगे, फिर भी वे उस यंत्र के अग है तो एक ही युद्ध-यत्र का एक अग है कि सिपाहियो को कत्ल किया जाय और उसी युद्ध-यत्र का दूसरा अग है कि जख्मी सिपाहियो की सेवा की जाय। उनकी पर-स्पर-विरोधी दोनो गतिया स्पष्ट है। एक क्रूर कार्य है, एक दया-कार्य है, यह हर-कोई जानता है। पर उस दयालु हृदय की वह दया और उस क्रूर हृदय की वह क्रूरता दोनो मिल करके युद्ध बनता है। ये दोनो युद्ध बनाये रखनेवाले दो हिस्से है। वैज्ञानिक कठोर भाषा मे बोलना है तो युद्ध जबतक हमने कबूल किया है, तबतक चाहे हमने जख्मी सिपाही की सेवा का पेशा लिया हो, चाहे सिपाही का पेशा लिया हो, हम दोनो युद्ध के गुनहगार है। यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि हम दयालु कार्य करते है, सिर्फ इसलिए यह नही समझना चाहिए कि हम दया का राज्य बना सकेंगे। राज्य तो निष्ठुरता का है। उसके अदर दया, जैसे रोटी के अदर नमक, वैसे रुचि पैदा करने का काम करती है। जख्मी सिपाहियो की उस सेवा से हिंसा मे लज्जत पैदा होती है, परतु युद्ध की समाप्ति उस दया से नही हो

सकती। अगर हम लोग इस तरह की दया का काम करे, जिससे कि निष्ठुरता के राज मे दया, प्रजा के नाते रह जाय, निर्दयता की हुकूमत मे दया चले, तो हमने अपना असली काम नही किया। इस तरह जो काम दया के दीख पडते है, जो काम रचनात्मक भी दीख पडते है, वे हम दया और रचना के लोभ मे, व्यापक दृष्टि के बिना ही, उठा ले, तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी, पर वह सेवा नही बनेगी, जिसकी जिम्मेदारी हमपर है और जो हमारा स्वधर्म हमने माना और दुनिया ने माना है।

दूसरी स्पष्ट मिसाल देता हू। हरकोई मुझसे पूछता है कि 'आपका सरकार पर भी कुछ वजन दीखता है, तो आप यह जोर क्यो नही लगाते कि सरकार कोई कानून बना दे और मुआवजे के साथ भूमि-वितरण का कोई मार्ग खोल दे ? आप अपना वजन इस दिशा मे क्यो नही इस्तेमाल करते ?' ऐसा बहुत मर्तबा लोग मुझसे पूछते है। मै उनको कहता हू कि भाई, कानून के मार्ग को मै रोकता नही हू, इससे ज्यादा अगर और एक कदम आप मुझसे चाहते है, आपकी दिशा मे, तो मै कहता हू कि जो मार्ग मैने अपनाया है, उसमे यदि मुझे पूरा यश, सोलह आने यश, नही मिला, बारह आने, आठ आने भी मिला, तो कानून के लिए सहूलियत तो होगी। एक तो मै कानून को बाधा नही पहुचा रहा हू और दूसरे, मै कानून को सहूलियत दे रहा हू। उसके लिए अनुकूल वातावरण बना रहा हू, ताकि कानून आसानी से बनाया जा सके। पर इससे भी एक कदम आगे आपकी दिशा मे मै जाऊ, और यही कहू कि 'कानून के बिना यह काम नही होगा, कानून बनाना चाहिए', तो मै स्वधर्मविहीन साबित होऊगा। मेरा यह धर्म नही है। मेरा धर्म तो यह मानने का है कि बिना कानून की मदद से जनता के हृदय मे हम ऐसे भावो का निर्माण करे कि कानून कुछ भी हो, लोग भूमि का बटवारा करे। क्या माताए किसी कानून के कारण बच्चो को दूध पिला रही है ? मनुष्य के हृदय मे कोई ऐसी शक्ति होती है, जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है, प्रेम मे से पैदा हुआ है, प्रेम मे पलता है और आखिर जब दुनिया को छोडकर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से ज़रा इर्दगिर्द देख लेता है और उसके प्रेमी जन अगर उसके दर्शन मे आते है, तो सुख से देह को, दुनिया को, छोड कर जाता है।

तो प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होते हुए भी उसको अधिक सामाजिक स्वरूप मे विकसित करने की हिम्मत रखने के बजाय मै अगर 'कानून-कानून' रटता रहू, तो जन-शक्ति-निर्माण करके सरकार हमसे जिस मदद की अपेक्षा करती है, वह मदद मैने दी, ऐसा नही होता। इसलिए दण्ड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति मै निर्माण करना चाहता हू और हमे वह निर्माण करनी चाहिए। यह जो जन-शक्ति हम निर्माण करना चाहते है, वह दण्ड-शक्ति की विरोधी है। लेकिन मै इतना ही

कहता हू कि वह दण्ड-शक्ति से भिन्न है।

मै एक मिसाल दू। अभी खादी बोर्ड बन रहा है। सरकार खादी को मदद देना चाहती है। पडित नेहरू ने कहा, "मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जो काम चार साल पहले ही होना चाहिए था, वह इतनी देरी से क्यो हो रहा है ?" वह आत्म-निरीक्षण करते है और इस तरह की भाषा बोलते है। अब हमारा काम है, चर्खा-सघ का काम है कि सरकार, जो खादी को बढावा देना चाहती है, खादी का उत्पादन बढाना चाहती है, उसको कुछ मदद दे, क्योकि चर्खा-सघ को इस काम का अनुभव है और अनुभवियो की मदद ऐसे काम के लिए जरूरी है। लेकिन फिर भी मै सोचता हू कि एक नागरिक के नाते और एक माहिर के नाते, अपनी सरकार को जो मदद देनी चाहिए, वह देनी चाहिए। लेकिन अगर हम उसीमे खत्म हो जाय, समाप्त हो जाय, तो हमने खादी की वह सेवा नही की, जिसकी कि हमसे अपेक्षा है। हमे तो खादी के बारे मे अपनी दृष्टि स्पष्ट, शुद्ध रखनी चाहिए और उस दिशा मे काम करते हुए सरकार को खादी-उत्पादन मे जो मदद पहुचानी चाहिए, वह पहुचानी चाहिए। हमे युद्ध मिटाने के तरीके ढूढने चाहिए और तिस-पर भी युद्ध चलते है, तो हमे जख्मी सिपाहियो की मदद मे जाना पडे तो जाना चाहिए। यह तो युद्ध का हिस्सा ही है, ऐसा कह करके इन्कार करेंगे, ऐसी बात नहीं, पर ध्यान मे रखेगे कि वह हमारा असली काम नही है। हमारा खादी-काम ग्राम-राज्य की स्थापना के लिए हो सकता है।

इस मर्तबा पडित नेहरू मिलने आये और बडे प्रेम से बाते की। मैने नम्रता से उनकी बहुत बाते सुनी और फिर जब उन्होने सलाह-मशविरा करना चाहा तो मैने अपने विचार थोडे मे प्रकट किये। मैने यह कहा कि खादी के लिए सरकार की तरफ से अगर मै कोई चीज चाहता हू, ग्रामोद्योग के लिए भी, तो मै कहूगा कि जैसे हरेक नागरिक को पढना-लिखना आना ही चाहिए, क्योकि नागरिकता का यह अश है, अनिवार्य अश है, ऐसा हम मानते है और इसलिए हमारी सरकार सबको शिक्षित बनाने की, पढना-लिखना सिखाने जिम्मेदारी महसूस करती है, मान्य करती है, चाहे वह उसपर पूरा अमल न कर पाये और परिस्थिति के कारण आशिक अमल करे, लेकिन जबतक पूरा अमल नही हुआ है, सारे-के-सारे लोग पढना-लिखना नही जान गये तबतक हमने अपना काम पूरा नही किया, इस तरह का खटका दिल मे रहेगा, वैसे ही हमारी सरकार यह माने, वह विचार कबूल करे कि हिदुस्तान के हरेक ग्रामीण को, हरेक नागरिक को सूत कातना सिखाना चाहिए। जो ग्रामीण, जो नागरिक सूत कातना नही जानते, वे अशिक्षित है, इतना माने और बाकी का सब काम जनता करे। हम सरकार से पैसे की मदद नही मागेगे, परतु यह विचार अगर वह स्वीकार करती है, तो उसके कारण हमे अधिक-से-अधिक मदद मिलती है।

तो यह सब उन्होने सुन लिया। मै समझता हू कि उनके हृदय को जचा ता, वह जचा ही होगा, पर सहज विनोद से उन्होने पूछा कि सूत कातना अगर सबको सिखा दे, तो उसके उपयोग का सवाल आयेगा। मैने जवाब दिया कि पढना-लिखना सिखाने पर भी तो उसके उपयोग का सवाल रहता ही है। मैने ऐसे कई पढे-लिखे भाई देखे है, जो थोडा-सा दो-चार साल पढे और उसका जिदगीभर कोई उपयोग नही हुआ। उनके लिए काला अक्षर भैस बराबर होता है। 'योग' के साथ 'क्षेम' लगा है। यह चिंता करनी पडती है। पर आप देखेगे कि मैने खादी के लिए सिर्फ इतनी माग की है, जबकि जनता की तरफ से यह माग होगी, तो सरकार को उतना करना चाहिए। परतु इससे अधिक लोगो पर खादी लादने की बात अगर कानून से होगी, याने मै ऐसी माग करू तो मै कहता हू कि मैने अपना काम समझा नही है। दण्ड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमे निर्माण करनी है, यह सूत्र मै भूल गया हू।

ये दो मिसाले सहज दी, एक खादी की और एक भूदान की। हम भूमि का मसला हल करने जायगे तो हमारा एक तरीका होगा और अगर लोकशाही सरकार वह हल करना चाहेगी, तो दण्ड-शक्ति का उपयोग करके उसे करना चाहेगी और करेगी, तो उसे कोई दोष नही देगा। लेकिन उसका दूसरा मार्ग है। सरकार की इस तरह की मदद से जन-शक्ति निर्माण नही होगी, लक्ष्मी का भले ही निर्माण हो। हमारा उद्देश्य सिर्फ लक्ष्मी का निर्माण करना नही होगा, बल्कि जन-शक्ति निर्माण करना होगा। यह सारी दृष्टि हमारे काम के पीछे है। अब यह दृष्टि स्थिर होजाय तो फिर हमारी कार्य-पद्धति क्या होगी, इसका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नही रहेगी। हरकोई सोचेगा कि हरेक रचनात्मक काम करने मे हमारी एक विशेष पद्धति होगी। इस पद्धति से काम करने से आखिर यही परिणाम अपेक्षित होगा कि लोगो मे दड-निर्पेक्षिता का निर्माण हो।

इस दृष्टि से यदि सोचेगे तो सहज ही ध्यान मे आ जायगा कि हमारी कार्य-पद्धति के दो अश होगे। एक अश होगा विचार-शासन और दूसरा अश होगा कर्त्तव्य-विभाजन।

विचार-शासन, याने विचार समझाना और विचार समझना, विना विचार समझे किसी बात को कबूल न करना, बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात कबूल करता हे तो दुखी होना, अपनी इच्छा दूसरो पर न लादना, बल्कि केवल विचार समझा करके ही सतुष्ट रहना। हमारे सर्वोदय-समाज की योजना मे हमने जो रचना की हे, उसको कुछ लोग 'लूज आर्गेनाइजेशन' याने 'शिथिल रचना' कहते है। रचना को अगर हम शिथिल करे तो कोई काम नही बनेगा। इस वास्ते रचना शिथिल नही होनी चाहिए। पर यह 'शिथिल रचना' न होते हुए 'अरचना' है, याने केवल विचार के आधार पर हम खडे रहना चाहते है। हम किसी

को आदेश नही देते, जिसे कि वे बिना समझे-बूझे ही अमल में लाये। हम किसी का आदेश नही कबूल करते, जिसपर कि बिना सोचे और बिना पसद किये हम अमल करने जाय, बल्कि हम तो सलाह-मशविरा करते हैं। कुरान में भक्तो का लक्षण गाया है कि उनका यह 'अम्र' याने काम परस्पर के सलाह-मशविरे से होता है। तो हम मशविरा करेंगे और खुश होगे कि हमारी चीज हमारे सुननेवालो ने जबकि उसको पसद नहीं आई थी, मान्य नही की और उसपर अमल नही किया गया। उसके अमल न करने से हमें बहुत खुशी होगी और बिना समझे बूझे अगर अमल करता है तो हमे बहुत दु ख होगा। यह जो रचना है उनमे से जितनी ताकत देखता हू अभी और किसी कुशल रचना मे, स्पष्ट रचना में और अनुशासन-बद्ध रचना में नही देखता। अनुशासन-बद्ध दृढ-रचना मे शक्ति नहीं होती सो बात नही, पर वह शक्ति नही होती, जो शिव-शक्ति है, और जो हमे पैदा करनी है। वह शक्ति दूसरी शक्ति है। हमारे लिहाज मे वह शक्ति नही है, इसलिए विचार-शासन को हम मानना चाहते है। अगर यह ध्यान मे आयेगा तो विचार का निरतर प्रचार करना, हमारा एक कार्य-क्रम बनेगा, जो हम नहीं कर रहे है और जो हमे करना चाहिए।

जब मैं इस दृष्टि से सोचता हूं तो बुद्ध भगवान ने भिक्षु सघ क्यो बनाये होगे और शकराचार्य ने यति-संघ क्यो बनाये होगे, इसका रहस्य खुल जाता है। तिस-पर भी उन सघो के जो अनुभव आये है, उनके गुण-दोषो की तुलना करके मैंने अपने मन मे यह निर्णय लिया है कि हम ऐसे सघ नही बनायेंगे, क्योकि उनके गुणो से उनके दोष अधिक होते हैं। यह अनुभव आया है, और इसलिए हम सघ तो नही बनायेंगे, पर उनको क्यो बनाने पडे, इसका खयाल आ जाता है। निरंतर अखंड बहते हुए झरने की तरह सतत घूमनेवाले और लोगो के पास सतत विचार पहुचानेवाले लोग होने चाहिए। उसके बगैर सर्वोदय-समाज काम नही कर पायेगा। लोगों के पास पहुचने के जितने मौके मिलेंगे, उतने प्राप्त करने चाहिए। लोग एक बार कहने पर नही सुनते है, तो दुबारा कहने का मौका आयेगा, उससे खुशी होनी चाहिए। इतना विचार-प्रचार का उत्साह और इतनी विचार पर श्रद्धा, विचार-निष्ठा हममे होनी चाहिए। लेकिन हमारी हालत ऐसी हुई है कि हममे से बहुत-से लोग भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे गिरफ्तार हो गये है। यद्यपि वे सस्थाए महत्व की है, तो भी हमे सस्था की आसक्ति न हो, भक्ति रहे। उनका काम जारी रखे, लेकिन सस्था मे कुछ मनुष्य ऐसे हो, जो घूमते रहे। इस तरह की रचना और ऐसा कार्यक्रम हम नही करेंगे, तो हमारा विचार क्षीण होगा और विचार-शासन नही चलेगा।

बिहार के लोग कुछ अभिमान से कहते है और उन्हे अभिमान करने का हक भी है कि भूदान-यज्ञ का काम बिहार की काग्रेस ने प्रथम उठाया और उसके बाद

हैदराबाद मे अ भा काग्रेस ने उसको स्वीकार किया । तो होता क्या है? ऊपर मे एक 'सरक्यूलर' (पत्रक) आता है—'भूदान मे मदद देना काग्रेसवालो का कर्तव्य है ।' गगा हिमालय से निकलती है और हरिद्वार आती है । तो वहा का पत्रक प्रातीय समिति मे आता है । हिमालय से गगा हरिद्वार आने पर आगे वहती है और गढमुक्तेश्वर जाती है । यह पत्रक भी प्रातीय समिति से जिला-आफिस मे आता है । गगा कही-से-कही भी जाय, पर वह पानी ही रहती है, गगा ही रहती है । उसी तरह पत्रक मे से पत्रक पैदा होते है । मैने विनोद के तौर पर एक दफा कहा था कि हरेक जाति अपनी जाति को ही पैदा करती है । वैसे ही पत्रक भी पत्रक ही पैदा कर सकता है । आखिर काम कौन करेगा? काम तो करना होगा ग्राम के लोगो को, पर ग्राम के लोगो तक वह पहुचता कहा है? वह तो एक आफिस मे से दूसरे आफिस मे जाता है, वहा से तीसरे आफिस मे जाता है, सिर्फ इतना ही होता है । ये जो भूदान-यज्ञ के ऐसे हमारे कार्य-क्रम है वे तबतक नही हो सकते, जबतक कि हम घर-घर नही पहुचेंगे । पाच लाख देहात से पच्चीस लाख एकड जमीन हम हासिल करना चाहते है । यो तो आसान काम दीखता है । फी गाव पाच एकड कोई बडी बात नही । लेकिन उतने गावो तक पहुचे कौन? इसलिए हमारे पास मुख्य साधन विचार-प्रचार का ही हो सकता है, उसकी योजना हमे करनी चाहिए, यह हमारा कार्य-क्रम होगा ।

अगर हमारी इतनी हिम्मत नही होती है, इतने गावो मे हम कैसे जायगे, कैसे घूमेंगे, ऐसा भय लगता है और जिसको 'छोटा-काट' (अग्रेजी मे 'शार्ट-कट') कहते है वह हम चाहते है कि कानून बने, फलाना बने तो यह बनाना और वैसी इच्छा रखना हमारा काम नही है । कानून बने, जरूर बने, जल्द बने और अच्छा बने, इस काम मे हम लगेंगे तो हम परधर्म का आचरण करेंगे, स्वधर्म का आचरण नही करेंगे । हमारा स्वधर्म होगा कि हम गाव-गाव घूमना शुरू करें और विचार पर विश्वास रखें । यह न कहे कि अरे, विचार सुनने-सुनाने से कब काम होगा? विचार से ही काम होगा, क्योकि हमारा काम विचार से ही हो सकता है । तो यह विचार की सत्ता, विचार-शासन हमारा एक औजार है ।

दूसरा औजार है कर्तृत्व-विभाजन । सारा कर्तृत्व, सारी कर्म-शक्ति एक केंद्र मे केंद्रित नही होनी चाहिए, बल्कि गाव-गाव मे कर्म-शक्ति, कर्म-सत्ता होनी चाहिए । इसलिए हम चाहते है कि हरेक गाव को यह हक हो कि उस गाव मे कौन-सी चीज न आये, इसका निर्णय वह कर सके । अगर कोई गाव चाहता है कि उस गाव मे कोल्हू चले और मिल का तेल न आये, याने उस गाव मे मिल का तेल आने से रोके, तो उसे रोकने का हक होना चाहिए । जब हम यह बात करते है, तो अधिकारी कहते है कि इस तरह एक बडी स्टेट के अदर एक छोटी-सी स्टेट नही चल सकती । मै कहता हू कि सत्ता का विभाजन अगर हम नही करेंगे,

कर्तृत्व का विभाजन नही करेगे तो सेना-वल अनिवार्य है, यह समझ लीजिये। तो फिर सेना के वगैर आज तो चलेगा ही नही, और कभी भी नही चलेगा, फिर हमेशा के लिए यह तय करिये कि सेना-वल से काम लेना है और सेना सुसज्ज रखनी है। फिर यह न वोलिये कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते है। अगर कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हो तो जैसा परमेश्वर ने किया है, वैसा हमको करना चाहिए। परमेश्वर ने अकल का विभाजन कर दिया। हरेक को अकल दे दी—विच्छू को भी दी, साप को भी दी, शेर को भी दी, मनुष्य को भी दी। कमी-वेशी सही, लेकिन हरेक को अकल दे दी और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अकल से करो और तव सारी दुनिया इतनी उत्तम चलने लगी कि वह विश्रांति ले सकता है और यहातक कि लोगो को शका भी होती है कि परमेश्वर है या नही! हमको ऐसा ही राज्य चलाना होगा कि शका आ जाय कि कोई राज्य-सत्ता है या नही! हिन्दुस्तान मे शायद राज्य-सत्ता नही है, ऐसा लोग कहे, तव हमारा राज्य-शासन अहिंसक हुआ। इसलिए हम ग्राम-राज्य का उद्घोष करते है और इसीलिए हम चाहते है कि ग्राम मे नियत्रण की सत्ता हो, अर्थात् ग्रामवाले नियत्रण की सत्ता अपने हाथ मे ले। यह भी एक जन-शक्ति का प्रश्न आया कि गाववाले खुद खडे हो जाय, निर्णय करे कि फलानी चीज हमको पैदा करनी है और सरकार से माग करे कि फलाना माल यहा नही आना चाहिए, उसको रोकिये। वह अगर नही रोकते है, यानी रोक नही सकते है, रोकना चाहते है, तो उसके विरोध मे खडे होने की हिम्मत करनी होगी। ऐसा करने से उस सरकार को अत्यन्त मदद पहुचेगी, क्योकि उसीसे सैन्य-वल का छेद होगा। इसके वगैर सैन्य-वल का कभी छेद नही हो सकता। यह वात कभी नही हो सकती कि दिल्ली मे कोई ऐसी अकल पैदा हो जाय, चाहे वह ब्रह्मदेव की अकल हो, जिसके चार दिमाग है और चारो दिशाओ मे देख सकता है कि हरेक गाव के सारे कारोवार का नियत्रण और नियोजन वहा से हो और वह सारे-का-सारा सवके लिए लाभदायी हो। इस वास्ते 'नेशनल प्लानिंग' के वजाय 'विलेज प्लानिंग' होना चाहिए। 'वजाय' मैने कह दिया। वेहतर तो कहना यह होगा कि नेशनल प्लानिंग का ही अर्थ यह होना चाहिए—विलेज प्लानिंग और उस विलेज प्लानिंग की मदद के लिए और जो कुछ करना पडेगा उतना दिल्ली मे किया जायगा। हम जो कुछ करते है, वह सारा कर्तृत्व-विभाजन की दिशा मे करना चाहते है। इसलिए हम गावो मे जमीन का वटवारा करना चाहते है।

जमीन के वारे मे जव कभी सवाल पैदा होता है तो यही कहते है कि 'सीलिंग' वनाओ, अधिक-मे-अधिक जमीन कितनी रखी जाय, यह सोचो। जवकि यह भूदान-यज्ञ का आदोलन जोर कर रहा है और जनता मे एक भावना पैदा हो रही है, तव यह वात वोली जा रही है। लेकिन मै कहता हू कि पहले तो कम-से-

कम जमीन हरेक को देना है, यह तय करो। यह मैं क्यो कह रहा हू ? इस वास्ते कह रहा हू कि मै कर्तृत्व-विभाजन चाहता हू। जितने भी मजदूर हैं वे सारे मजदूर आज दूसरे के हाथ मे काम करते है। काम तो वे करते है, लेकिन उनमे कर्तृत्व नही है। चलती गाडी ही है, लेकिन गाडी को हम कर्ता नही कहते, क्योकि वह चेतना-विहीन है। तो ये जो मजदूर खेतो मे काम करते है, वे चेतनाविहीन जैसा काम करते है, हाथो से काम करते है, पावो से काम करते है, लेकिन उनके दिमाग से, उनके दिल से यह काम हो, यह हम चाहते है। लोग कहते है कि हिन्दुस्तान के मजदूरो मे उतनी अकल नही है और इसलिए उनका दूसरो के हाथ मे रहना ही वेहतर है। मै कहता हू कि यह अहिंसा का तरीका नही है। उनमे जो अकल है, उसका परित्याग कर दे तो दूसरी कोई अकल, दूसरा कोई खजाना हमारे पास नही है।

माना कि एक मजदूर की अकल से किसी पूजीवाले भाई की अकल ज्यादा है। लेकिन कुल मिलाकर देश मे मजदूरो की जो अकल है, उस अकल की वरा-वरी दूसरी कोई अकल नही कर सकती और अगर उस अकल का हमको उपयोग न मिले तो हमारा देश वहुत-कुछ खो देता है। इस वास्ते जरूरी है कि मजदूरो की अकल का, जैसी भी वह आज है, पूरा उपयोग हो। इसके साथ-साथ उनकी अकल वढे, ऐसी भी योजना चाहिए और उनकी अकल वढाने की ऐसी जो भी योजना करेंगे, उसमे यह भी एक योजना होगी कि उनको जमीन दी जाय। अलावा इसके कि हम उनको और तालीम दे, उनके हाथ मे जमीन देना, यह भी तालीम का एक अग होगा और उनकी अकल बढाने का भी वह एक साधन होगा।

अव हम कार्य-रचना पर आते है। रचना मे तो हमने एक 'सर्व-सेवा-संघ' माना है और दूसरा 'सर्वोदय-समाज।' 'सर्वोदय-समाज' का नाम चलेगा, 'सर्व-सेवा-सघ' का काम चलेगा। इस तरह एक का नाम और एक का काम, ये दोनो मिलाकर हम चले, तो सर्व-सेवा-सघ शिथिल सस्था नही होगी बल्कि [illegible] होगी और सर्वोदय-समाज शिथिल या अशिथिल, दोनो प्रकार की रचना नही होगी, वल्कि वह अरचना होगी, विचार की सत्ता कबूल [illegible] होगी। हमे इस दिशा मे सोचना चाहिए कि सर्वोदय-समाज [illegible] विचार-परायण वने। सर्वोदय-समाज और अधिक अनुशासन [illegible] यह सोचने की हमे जरूरत नही है, क्योकि अनुशासन [illegible] बनाना नहीं चाहते। वह अधिक विचारवान कैसे बने और [illegible] कैसे चले, इस दिशा मे हमको काम करना [illegible] सर्वोदय-समाज के [illegible] यहा इकट्ठे है, जिन्होने नाम लिखे है और [illegible] नही लिखे हैं [illegible] नही आये है, उन सबके लिए एक [illegible] करना चाहिए। इस वास्ते [illegible]

थी कि प्रचार होना चाहिए, उसका चिन्तन-मनन होना चाहिए। ऐसे वर्ग जगह-जगह चलने चाहिए कि जिनमे हमारे विचारो का दूसरे विचारो के साथ तुलना करके अध्ययन हो। हमको इस तरह के आयोजन करने चाहिए, सर्वोदय-समाज और सर्व-सेवा-सघ को एकरस सस्था वनाना चाहिए। मुझे कवूल करना चाहिए कि इस दिशा मे इच्छा रखते हुए भी हम वहुत काम नही कर सके है। मेरी राय मे अगर हम वैसा नही करते है तो जनता को हमसे जो अपेक्षाए है, उन अपेक्षाओ को हम पूरा नही करेगे, वह पुराना ढाचा कि भिन्न-भिन्न सस्थाए काम करती है, नही चलेगा। उससे शक्ति का निर्माण नही होगा।

मै कुछ मिसाले दूगा। मिसाले देने मे कुछ नाम लेकर भी मिसाले दूगा, पर उससे किसीको यह नही लगना चाहिए कि मै दोष वता रहा हू और दूसरो के सामने नही बता रहा हू, लेकिन मै अपने सामने अपना ही दोप वता रहा हू, इस खयाल से मै कुछ दोपो की चर्चा भी करूगा। मान लीजिये कि वर्धा मे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा है। अव वहा क्या होता होगा? विद्यार्थी आते होगे—क्योकि हिन्दी और उर्दू, नागरी और उर्दू दोनो लिपिया सीखने की वात चलती हे, उसके लिए आज वातावरण उतना अनुकूल नही है। फिर भी जो आते होगे वे वहुत-से तो दो लिपिया और भाषाए सीखने का अपना कर्तव्य समझते होगे। लेकिन मै चाहता हू कि अगर हमारा समाज एकरस होता तो हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा मे शिक्षण के लिए आनेवाले विद्यार्थियो को मै चार घटे खेती का काम देता और उसके वाद एकाध घटा सूत कातने का काम देता, उसके वाद एकाध घटा रसोई वगैरा काम करते और फिर तीन-चार घटा उर्दू और हिन्दी, जो कुछ सीखना होता, वह सीखते। लेकिन आज जिस तरह वहा चलता है, उसमे से शक्ति-निर्माण होना मै सम्भव नही मानता। यह हो नही सकता कि उर्दू और नागरी लिपि सीखनेवाले कुछ लडके हमको मिल जाय और उनको वह लिपिया हम सिखाये, और उससे देश मे ताकत वढे। अव मै इतना बोल रहा हू, आप सुनते है। अगर आपके कान काट करके यहा सुनने के लिए रखे जाय और मेरी जबान तोडकर बोलने के लिए यहा रखी जाय, तो न मै बोल सकनेवाला हू और न आप सुन सकनेवाले है, क्योकि मै समग्र हू और क्योकि आप समग्र है, इसलिए मै वोल पा रहा हू और आप सुन पा रहे है। हा, यह ठीक है कि मेरी जवान काम कर रही है, आपके कान काम कर रहे है। तो हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा मे मुख्य काम चार घटे का रहेगा, वह उनका उर्दू और नागरी लिपि सीखने का रहेगा। फिर भी वाकी के जीवन का सारा अश हमे दाखिल करना होगा, तभी उस उर्दू मे ताकत आयेगी, तभी उस नागरी मे ताकत आयेगी। वह तो मैने एक मिसाल दी, ऐसी कई मिसाले मै दे सकता हू। हमारे लोग जो अलग-अलग काम करते है, उनमे ताकत क्यो नही पैदा होती और जन-समाज मे जो क्रान्ति होनी चाहिए, जिसकी हम आशा रखते है, वह आशा

क्यो नही सफल होती ? उसका एक मुख्य कारण मै मानता हू कि हमारे सघ अलग-अलग काम करते है। अच्छा काम वे करते है, लेकिन उनको यह मोह है कि हम अलग-अलग है, इसलिए कोई खास विचार करते है और अगर हम एक हो जायगे, तो हमारा विचार कम हो जायगा, उतने एकाग्र हम नही हो पायेगे, विविध वृत्ति आ जायगी, और इसलिए जोर कुछ कम पडेगा। मै कबूल करता हू कि हरेक योजना मे कुछ खामिया होती है, कुछ खूबिया होती है। लेकिन कुल मिलाकर देखते है तो ध्यान मे आयेगा कि सर्व-सेवा-सघ को एकरस बनाये बगैर हमे शक्ति का दर्शन नही होगा। अब आखिर मे दो-तीन काम हम जुटा रहे है, उसका थोडा जिक्र करके मै समाप्त करूगा।

एक तो भूमि-दान-यज्ञ का काम हमने शुरू किया है, जो मेरे मन मे है और जो मेरी जबान पर है। काम यह है कि कम-से-कम पाच करोड एकड जमीन इस हाथ से उस हाथ मे जानी चाहिए। अगर इस काम मे हम सब लग जायगे—हम सब याने आप और हम, जो सर्वोदय-समाज के लोग माने जाते है उतने ही नही, बल्कि काग्रेसवाले, प्रजा-समाजवादी इत्यादि, जो कि इस विचार को कबूल करते है—तो इस मसले को हम हल करेगे, चाहे सोलह आना यश पाकर बिना कानून के हो जाय, चाहे बारह आना यश पाकर या आठ आना यश पाकर कानून की सहायता से पूरा हो जाय। मै भविष्यवादी नही हू। जिस किसी तरह से वह हो, पर हो प्रधानतया जन-शक्ति से। पूर्णतया अगर जन-शक्ति से हो तो मै नाचने लगूगा, लेकिन प्रधानतया जन-शक्ति से हुआ तो भी मै सतोष मानूगा। अगर १९५७ के पहले हम इतना कर लेते है तो आगे जो चुनाव होगा, वह पक्षो के बीच नही होगा, ऐसे पक्षो के बीच कि जिनमे बहुत सारे सज्जन पटे है। आज हालत यह है कि इस पक्ष मे भी सज्जन है, उस पक्ष मे भी सज्जन है, और भीष्मार्जुन युद्ध हो रहा है। हम राम-रावण युद्ध चाहते है, भीष्मार्जुन युद्ध नही चाहते है। दोनो पक्षो मे सज्जन है तो वे एक क्यो नही हो सकते ? अगर कोई कार्यक्रम ऐसा मिले कि जिसपर वे एकाग्र हो जाय तो उनके बीच आज जो दूसरे मतभेद है, वे फौरन मिट जायगे, क्योकि यह कार्यक्रम बुनियादी है। आज समाजवादी मुझसे कहते है कि आपने यह हमारा कार्यक्रम उठा लिया। मै कहता हू कि यह मुझे कबूल है और इसलिए मेहरबानी करके मुझे मदद दीजिये। काग्रेसवाले कहते है कि यह तो कार्यक्रम बहुत अच्छा है, हमको करना ही था। उनसे भी हम मदद चाहते है। जनसघवाले कहते है कि आपका कार्यक्रम भारतीय सस्कृति के अनुकूल है, इसलिए अच्छा है। तो हम कहते है कि इस तरह भिन्न-भिन्न विचारवाले भी इस कार्यक्रम को पसन्द करते है। अगर हम सब इस काम मे लग जाय तो ऐसा हो सकता है कि आगामी चुनाव मे बहुत-सा मतभेद न रहे और अच्छे-से-अच्छे लोग चुने जाय। इस तरह होगा तो इसके आगे जो सरकार होगी, वह बहुत शक्तिशाली होगी। यह एक उम्मीद इस

कार्यक्रम से मैने की है। तो यह भूमिदान का काम हमको करना है। पांच करोड के विना हमारा सन्तोप नही। लेकिन अगले साल तक पच्चीस लाख एकड पूरा हो ही जाना चाहिए।

इसके साथ-साथ मैने एक दूसरा कार्यक्रम शुरू कर दिया है, जिसको सपत्ति-दान-यज्ञ नाम दिया है। उसके वगैर भूमि-दान-यज्ञ की सफलता नही होगी और उसके वगैर आर्थिक आजादी का हमारा जो कार्यक्रम है और आर्थिक साम्य का, वह भी पूरा नही होगा। आरम्भ से ही मै इस चीज को पहचानता था, लेकिन 'एक साधे सब सधे', दो वातें एक साथ नही हो सकती। फिर भूमि का सवाल जितना वुनियादी था उतना वुनियादी सपत्ति का नही था। इस वास्ते, और तेल-गाना मे परमेश्वर के इशारे से, काम करना मुझे अच्छा लगा, इसलिए आरम्भ मे इतना ही लिया, लेकिन वाद मे विहार का मसला हल करने की वात चली, तो मैने देखा, भूमिदान के साथ-साथ सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी चलेगा, तव यह हल होगा। उसमे सपत्ति हम अपने हाथ मे लेनेवाले नही है, वल्कि उसमे भी कर्तृत्व-विभाजन हम चाहते है। यानी जो सम्पत्ति देगा, वह हमारे निर्देश के मुताविक उसका इस्ते-माल करेगा, यह हमारी योजना है। पर सम्पत्ति-दान-यज्ञ का व्यापक प्रचार, जैसे भूमि-दान-यज्ञ का प्रचार हम व्याख्यान के जरिये गाव-गाव मे जाकर करते है, वैसा सामुदायिक तौर पर करने का नही है। व्यक्तिगत तौर पर प्रेम से जिनसे वात हो सकती है, उनके हृदय मे और उनके कुटुव मे, उनके विचारो मे प्रवेश करके यह काम करने का है। अभी तक जिस किसीने सम्पत्ति-दान-यज्ञ मे दान दिया है, वह प्रति वर्ष देने का है, यानी जिदगी भर देने की वात है। उसको मैने काफी जाचा है और जाच करके ही कवूल किया है। यानी उत्तेजन देने के वजाय कुछ थोडा नियन्त्रण ही मैने किया है। अभी करीव चालीस-पैंतालीस लोगो के नाम मेरे पास है। इसका ज्यादा जिक्र यहा वढाना नही चाहता, पर इतना कहता हू कि आपमे से जिनके पास कोई गठरी है उसको खोलनी चाहिए और इसमे शरीक होना चाहिए और अपने मित्रों मे इसका प्रचार प्रेम से करना चाहिए। इतना ही कहता हू कि ये दो काम परस्पर पूरक है।

इन दो कामो के अलावा एक तीसरी चीज जो हम कर रहे है, उसको हम सूताजलि कहते है। यह एक वडी शक्तिशाली वस्तु है। उस शक्ति को हम पह-चान नही सके है। वापू की स्मृति मे और शरीर पर श्रम की प्रतिष्ठा की मान्यता के रूप मे, और देश मे लक्ष्मी वढाने की जिम्मेदारी महसूस करते हुए सूताजलि समर्पण करे। उसको मैने सर्वोदय का 'वोट' माना है। जैसे हम पच्चीस लाख एकड जमीन की वात करते है, वैसे लाखो लच्छिया हमको प्राप्त करनी चाहिए। इसके अलावा एक वात और, आजतक हमने जो सस्थाए चलाई, वे पैसे का आधार लेकर चलाई अर्थात् पैसेवाले, जो कि हमारे मित्र थे, प्रेमी थे, सहानु-

भूति रखते थे, जिनके हृदय शुद्ध थे, ऐसे लोग हमको मदद देते थे और हम लेते थे और उसमे हम कुछ गलती करते थे, ऐसी बात नही, पर अब जमाना बदला है और श्रम का जमाना आया है। उसकी प्रतिष्ठा हमको बढानी चाहिए। अत अगर हम हरेक प्रात मे एकाध सस्था ऐसी बना सकते है, तो बनाये, जो आरम्भ मे श्रम के ही आधार पर चले और यदि लेना है तो श्रम का ही दान ले। यह सूता-जलि की बात अगर फैली तो ऐसी सस्थाएं हम चला सकते है और उसमे तेजस्वी कार्यकर्ता निर्माण हो सकते है, जो प्रचार मे भी लग सकते है और काम मे भी लग सकते है।

आखिर मे दो शब्द कहना चाहता हू कि यह अपना काम एक सप्रदाय का काम नही है। 'सर्वोदयवाले' यह शब्द हमको सुनाई नही देना चाहिए। यह शब्द ही गलत है, बल्कि हम केवल मनुष्यमात्र है, मानव से भिन्न हम कोई नही है, नही तो देखते-देखते, यद्यपि हम सर्वोदय-समाज कोई विशेष अनुशासन के साथ नही बनाते, तो भी हम पाथिक बन सकते है, साम्प्रदायिक बन सकते है। तो यह भाषा कभी नही निकलनी चाहिए कि फलाना समाजवादी है, फलाने कांग्रेसवाले है, फलाने सर्वोदयवादी है आदि। वे जो दूसरे नाम है, वे चलेगे, क्योकि वे लोग उस नाम पर काम करना चाहते है और उसकी उपयोगिता वे मानते है। लेकिन हमारा कोई पक्ष नही है। जिसको तीसरी शक्ति कहते है, वे हम है। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा मे यह होता है कि जो शक्ति न अम-रीका के 'ब्लाक' मे पडती है, न रूस के 'ब्लाक' मे पडती है, उसको लोग तीसरी शक्ति कहते है। लेकिन मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् जो हिंसा की शक्ति नही है, और जो दड-शक्ति से भी भिन्न अर्थात् जो दड-शक्ति नही है—ऐसी जो शक्ति है उसका नाम है तीसरी शक्ति। एक हिसा शक्ति, दूसरी दड-शक्ति, तीसरी हमारी शक्ति है। तो वह शक्ति हम व्यापक बनाना चाहते है और उसका कोई अलग सप्रदाय नही बनाना चाहिए, बल्कि हमको आम लोगो मे घुलमिल जाना चाहिए और केवल मानव-मात्र रहना चाहिए।

पाचवा सर्वोदय-सम्मेलन
चाडिल, मार्च १९५३

५ : : पश्चातीत कार्य

बापू के निर्वाण के बाद सेवाग्राम मे हम सब लोग पहली बार इकट्ठे हुए थ। ईसामसीह ने, जब उनका अतिम समय नजदीक आया, शिष्यो को एकत्र किया था और आदेश दिया था तुम एक-दूसरे से प्यार करो। यो कहकर आदेश दिया कि यह नई आज्ञा, एक नया आदेश मै दे रहा हू। जिदगीभर उनका यही आदेश रहा कि पडोसियो से प्यार करो। कभी कहते थे, दुश्मनो से प्यार करो। लेकिन 'एक-दूसरे पर प्यार करो', यह शिष्यो को कहने की प्रेरणा ईसामसीह को अतिम समय मे हुई।

बापू की भी ठीक यही हालत हुई। जब उनका अतिम समय नजदीक आया था, तब उन्होने सोचा कि उनके सारे साथी और सहकर्मी-जनो को एकत्र करके उनका एक समाज बनाया जाय, उनका एक समूह बनाया जाय। ऐसी प्रेरणा उनको अतिम समय मे हुई। लेकिन उस प्रेरणा पर अमल करने के लिए वह देह मे नही रहे। परतु उनकी प्रेरणा ने काम किया—विदेह अवस्था मे; और हम सब सेवाग्राम मे इकट्ठे हुए और सर्वोदय-समाज बना, यानी एक-दूसरे पर प्रेम करने का आदेश सर्वोदय-समाज के रूप मे प्रकट हुआ। इसके पहले जो आदेश ईसामसीह देते थे, वही तो आदेश बापू भी हमेशा हमे देते थे। वह 'पडोसी पर प्यार करो' कहते रहे और इसी वास्ते खादी और ग्रामोद्योग तथा स्वदेशी-धर्म उन्होने हमारे सामने रखे। स्वदेशी-धर्म की, खादी की और ग्रामोद्योग की जो व्याख्या उन्होने हमे समझाई थी, उसके मानी यही थे कि हमे अपने पडोसियो पर प्यार करना चाहिए। लोभ मे पडकर बाहर का माल सस्ता मिलता है, इस वास्ते नही खरीदना चाहिए। नजदीक रहनेवाले पडोसियो के काम की हमे कदर करनी चाहिए, कीमत करनी चाहिए, यही उस स्वदेशी-धर्म की व्याख्या उन्होने हमे समझाई थी। वह पडोसी पर प्यार करने का आदेश था।

दुश्मनो पर प्यार करने का आदेश भी ईसामसीह के समान वह हमे देते रहे, जिसका प्रत्यक्ष रूप अहिंसात्मक प्रतिकार और सत्याग्रह के रूप मे उन्होने हमारे सामने रक्खा था। और अतिम समय का आदेश, परस्पर प्रेम करने का, सर्वोदय-समाज के आकार मे प्रकट हुआ। बहुत खुशी होती है, हृदय को समाधान होता है कि प्रेम के उनके अतिम सदेश ने हम लोगो के हृदयो को छुआ है और उसपर अमल करने की हमने कोशिश की है।

इस साल अपने प्रिय सुहृद्जनो को, प जवाहरलालजी को, यहा बुलाने की धृष्टता मैने की है। मुझे उसमे कुछ झिझक भी थी, क्योकि वह निरतर किसी-न-किसी कार्य मे मग्न रहते है और वे इतने विविध कार्य होते है कि उनपर एक और भार डालना कुछ ठीक नही लगता था। लेकिन फिर भी सोच करके पत्र लिखा,

और बहुत प्रेम से उस निमत्रण को उन्होने स्वीकार किया और अपने कार्यक्रम मे जरूरी बदल करके वह यहा हम लोगो के बीच आये हुए है।

मैने उनको लिखा था, जहातक मेरा ताल्लुक है, मै तो आपके नजदीक ही पडा हूं, चाहे बीच मे कोसो का अतर दीख पडता हो। मेरे मित्रो को मालूम है कि शारीरिक सपर्क मे मेरा बहुत ज्यादा विश्वास भी नही है। मेरा विश्वास हृदय-सपर्क मे है। इस तरह आमत्रण देने की वृत्ति मुझमे स्वाभाविक नही है। पर मैने वह काम किया, उसका एक कारण था।

इन दिनो भूदान-यज्ञ का काम करते हुए मुझे जो अनुभव हुआ, उस अनुभव ने मुझे यह प्रेरणा दी। वह अनुभव यह था कि भूदान-यज्ञ मे कोशिश हमारी यह रहे कि इस काम को हम पक्षातीत रखे। उसकी अपनी एक भूमिका है। उसी भूमिका पर यह काम चले। उसमे नैतिक शक्ति का आवाहन है। उसमे किसी तरह की सत्ता का कोई सबध नही है। उस नैतिक भूमिका पर ही यह आदोलन चले, ऐसी हमारी निरतर कोशिश रही है। अर्थात् हमको सबका सहयोग लेना था। वे सब वे ही भाई थे, जो भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षो मे बटे हुए थे। उनके साथ हम सबध रखते थे और उनसे काम लेने की कोशिश करते थे। यह कहने मे खुशी होती है कि उन्होने बहुत काम किया और बहुत प्रेम से किया। लेकिन उस काम के सिलसिले मे यह अनुभव आया कि हम लोग, जोकि मूल मे एक ही कुटुम्ब के है, जिसे मै गाधी-कुटुम्ब कहता हू, जो कि अत्यन्त विशाल है, उस कुटुम्ब के हम सारे होते हुए भी हमारे हृदयो मे जितनी निकटता होनी चाहिए, उतनी मैने नही देखी। उसमे कुछ कमी मुझे महसूस हुई। भूदान-यज्ञ का यह परिणाम था कि हृदयो को कुछ-न-कुछ नजदीक लाने मे उसका उपयोग हुआ। हालत कहातक पहुची थी और भूदान से उसमे किस तरह कुछ सुधार हुआ इसकी मिसाल देते हुए उडीसा के महान कार्यकर्त्ता गोपबाबू (गोपबधु चौधरी) मुझसे कहने लगे कि भूदान की यह महिमा है कि जो लोग एक साथ बैठकर भोजन तक नही करते थे, वे अब एक साथ बैठकर भोजन करने लगे है।

इसपर से आपके ध्यान मे आयेगा कि इस काम को करते हुए कैसे अनुभव हमे आये। मुझे लगा कि अपने देश के लिए यह चीज ठीक नही है।

आजकल कई लोग बोलते है कि देश पर जब कोई सकट आयेगा, और कहते है कि देश के लिए आज वैसी कुछ चिंतनीय हालत उपस्थित हुई है, तो हम सब कधे-से-कधा लगाकर उसकी रक्षा के लिए भिड जायगे, सारे भेद-भावो को भूल जायगे। हम कहते है, परस्पर प्रेम प्रकट करने के लिए क्या यह बहुत जरूरी है कि देश पर कोई भारी सकट आना ही चाहिए? यह एक सवाल मै अपने मन मे पूछता हू। दूसरा यह भी सवाल पूछता हू कि जिस देश मे असख्य धर्म-भेद, भाषा-भेद, जाति-भेद, पक्ष-भेद, और भी तरह-तरह के भेद मौजूद हैं, उस देश के

लिए क्या किसी नये सकट की आवश्यकता भी है ? क्या यह पर्याप्त सकट नहीं माना जायगा ? जिस देश मे बावजूद स्वराज्य-प्राप्ति के, सर्वसाधारण जिदगी की आवश्यकताए बहुत-से लोगों को ठीक तरह से मुहैया नही होती हैं, उस देश के लिए और किसी दूसरे सकट की क्या जरूरत है ? हम समझते हैं कि यह पर्याप्त से ज्यादा सकट है और उस हालत मे बहुत जरूरी है कि हम लोगो के दिल एक हो जाने चाहिए ।

यह आवश्यकता महसूस करके मैंने धृष्टता की थी पडितजी को यहा बुलाने की, और वह प्रेमपूर्वक यहा आये हुए है । अब कुछ बातें मैं आप लोगो के सामने रखूगा ।

प्रथम तो सोचने की बात यह है कि राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गाधी तक,इस जाति-भेद पर अनत प्रहार होते रहे, और जिसकी कमर टूट चुकी थी, उसी जाति-भेद की प्रतिष्ठा, चुनावो का जो तरीका हमारे देश मे आया है उसके कारण, मजबूत होती जा रही है । यह मैंने बिहार मे देखा, दूसरे प्रातो मे भी देखा। चुनाव का तरीका लाभदायी समझकर हमने उसे स्वीकार किया है । पर अपने देश की हालत देखते हुए उसमे कोई जरूरी सशोधन करना चाहिए, यह सोचने का अवसर अब आया है । क्या सशोधन हो सकता है, यह चिंतनशील लोग सोचे । पर यह नही हो सकता कि सारे राष्ट्र की मुख्य चिंतन-शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के चुनावो की परपरा मे ही लगी रहे । देहात से लेकर राजधानी तक के तरह-तरह के चुनाव, अन्दर-अन्दर के और बाहर के, भिन्न-भिन्न पक्षो के, सतत होते रहते हैं और एक-एक चुनाव मे समाज की शक्ति, उसका पैसा, उसका समय, खर्च होता है । उसके अलावा, जो मन-मुटाव बढता है, वह अलग । इसपर कुछ सोचने की जरूरत है या नही, यह जिम्मेदार नेताओ के लिए एक विषय है । मैं नम्रता से यह विषय पेश कर रहा हू ।

इसपर कुछ-न-कुछ चिंतन हमारा चलता ही है । परन्तु यह किसी एक मनुष्य के चिंतन का विषय नही हो सकता । बहुतो को इसका चिंतन करने की जरूरत है । क्या यह हो सकता है कि पक्षीय चुनावो को अभी सीमित किया जाय ? कुछ क्षेत्र ऐसे छोडे जाय कि जिनमे पक्षीय पद्धति से चुनाव न हो । क्या यह हो सकता है ? या और भी दूसरे तरीके ढूढे जा सकते हैं, यह एक सोचने का विषय है, नही तो जिस तरह जाति-भेद एक खतरनाक चीज हमने मानी है, उसी तरह उत्तरोत्तर अनुभव आयेगा कि इस गरीब देश के लिए, जिसका स्तर सब तरह से गिर चुका है, राजनैतिक पक्षो के बीच जो साठ-मारी चलेगी, उससे लाभ कहातक होगा ? मेरे मन मे आता है कि कम-से-कम, जो सज्जन होते हैं, उनकी आइडियालाजीज मे, उनकी कल्पनाओ मे, विचार-सरणी मे कितना भी भेद क्यो न हो, उनके बीच सर्वसाधारण कार्यक्रम पर एकता होनी ही चाहिए ।

अगर किसी ऐसे सार्वजनिक उपयोग और सेवा के काम के लिए एकता नही बन सकती है तो मै तो यह कहूगा कि वे सज्जनो के पक्ष नही होगे। सज्जनो मे विचार-भेद के बावजूद, आचार के विषय मे कुछ-न-कुछ एकसूत्रता, कुछ-न-कुछ समान अश होना ही चाहिए। ऐसा समान अश ढूढकर उसका प्रोग्राम बनाना चाहिए और उस कार्यक्रम पर देश की शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए। सब लोगो की शक्ति उसमे लगनी चाहिए और एक आवाज से लोगो के सामने वह चीज रखी जानी चाहिए। तभी इस देश की जनता मे, जो बहुत ही निष्क्रिय हो चुकी है, प्राण-सचार होगा, क्रिया की प्रेरणा होगी। जडता कुछ कम होगी। यह आवश्यकता बहुत महसूस होती है और मैने तो नम्रता के साथ कई दफा कहा कि भूदान-यज्ञ इस तरह का एक कार्यक्रम हो सकता है। उसके साथ दूसरे और भी कार्य-क्रम जोडे जा सकते है। उसपर सोचा जा सकता है। लेकिन ऐसा कोई कार्यक्रम होना चाहिए, जिसपर भिन्न-भिन्न पक्षो के सज्जनो की एकवाक्यता हो जाय, और उसपर जोरो से अमल शुरू हो जाय।

इसका मतलब यह नही कि भिन्न-भिन्न विचारो को हम छोड ही दे। विचार-भिन्नता का उपयोग भी है। विचार-मथन जरूर होना चाहिए। मैने यह कई दफा कहा है। आचार-सघर्ष नही होना चाहिए। मथन से नवनीत निकलता है, मक्खन निकलता है, इस वास्ते विचार-मथन बहुत जरूरी चीज है। सघर्ष से अग्नि पैदा होती है, जो कि दाहक वस्तु है, इसलिए सघर्ष आचार मे नही आना चाहिए। विचार का मथन जरूरी होता है।

हमने एक कार्यक्रम उठा लिया और परमेश्वर की कृपा रही कि भिन्न-भिन्न पक्षो का आशीर्वाद उसको प्राप्त हुआ और सब लोगो ने उसमे देश का लाभ समझा। आरभ मे न तो हमे पता था, न दूसरो को ही पता था कि इस चीज मे क्या ताकत छिपी है। लेकिन मैने तो इसका आरम्भ, जिसको आप केवल अन्ध-श्रद्धा कहते है, उससे किया और मेरा तो दावा है कि श्रद्धा अध ही हो सकती है, जो अध नही होती, वह श्रद्धा नही होती, वह बुद्धि होगी। आखवाली बुद्धि हो सकती है।

दुनिया मे कुछ काम बुद्धि के होते है और कुछ काम श्रद्धा के होते है। दोनो परस्पर पूरक है और दोनो की आवश्यकता है। मैने व्याख्या की है कि बुद्धि तो वह है, जो प्रमाण के बिना किसी चीज को कबूल नही करती। श्रद्धा वह है जो किसी खास चीज को कबूल करने मे प्रमाण की अपेक्षा ही नही करती। बच्चे को माता के स्तन से मिलनेवाला दूध अपने लिए मुफीद होगा, यह सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की, दलील की या प्रमाण की आवश्यकता नही होती। वह उसकी श्रद्धा का स्वाभाविक विषय है और उसी श्रद्धा से उसका पोषण होता है। वह अगर तर्क-वितर्क करता रहे कि इस स्तन्य से, इस दुग्ध से मेरा कहातक पोषण होगा, किन-किन वस्तुओ का क्या-क्या मिश्रण हुआ होगा, जो मेरे शरीर के लिए कहा

तक लाभदायी होगा, ऐसा अगर वह विचार करता चले, तो उसका शरीर सूखने की स्थिति आ जायगी। इस वास्ते कुछ चीजो मे श्रद्धा ही रखनी होती है।

श्रद्धा कहा से आती है और बुद्धि कहा से आती है? जैसे किसी यत्र मे एक गति देनेवाली शक्ति होती है और एक दिशा-सूचक शक्ति होनी है। यन्त्र मे ऐसे दो हिस्से होते है। यह तो विज्ञान का विषय है। ऐसे ही मनुष्य के जीवन मे गति देनेवाली जो शक्ति है, उसको श्रद्धा कहते है, और वह प्राण मे से निर्माण होती है। जो दिशा दिखानेवाली शक्ति हे, उसको बुद्धि कहते है और वह मनुष्य की ज्ञान-शक्ति है। ये दोनो शक्तिया जरूरी होती है और मैने इस काम का आरभ केवल श्रद्धा से किया।

मैने देखा कि सामने एक ऐसा दृश्य है कि जहा गरीब लोग गुमराह हो गये है और अमीर लोग गुमराह होने से बाकी तो क्या थे, उनकी तो अक्ल ही गुम थी। इनकी तो खैर राह गुम थी, लेकिन उनकी तो अक्ल ही गुम थी। ऐसी हालत मे मै पहुचा तेलगाना मे, और मैने देखा कि इसके लिए जरूरी आदेश मिलना चाहिए। एक दिन अचानक दान मिल गया। हरिजनो की जमीन की माग थी। वह गाववालो के सामने रखी गई, और उसका जवाब मिल गया। माग थी अस्सी एकड की, मिल गई सौ एकड। तब मै उसपर बहुत चिंतन करता रहा और मैने मान लिया कि यह एक इशारा है। ईश्वर का इशारा है। मै तो उसी भाषा मे बोल सकता हू, जो भाषा मेरे हृदय मे हे। दूसरी भाषा मै समझता नही। लेकिन उस दिन मैने बहुत सोचा कि क्या यह काम मै उठा लू? मेरा गणित का स्वभाव है और विज्ञान का प्रेम है। इसलिए मैने हिसाब भी कर लिया कि करीब-करीब पाच करोड एकड की जरूरत होगी। तो क्या इतना कार्यक्रम मै उठा लू? और मागने से यह हो सकेगा? तो मेरे विचार ने मुझे कोई मदद नही दी। मेरी हिम्मत नही जमी। आखिर अन्दर से आवाज आई कि अगर तू इस काम को स्वीकार करने मे डरेगा तो तुझे सीधे साम्यवाद को स्वीकार करना चाहिए। दो के सिवा तीसरी बात नही होगी। अदर से जब यह एक आवाहन आया, तब उस काम को शुरू कर दिया और आपने देखा कि धीरे-धीरे जो शकाशील लोग थे, वे भी अनुकूल हो गये। यहातक हुआ कि वहा जब मेरा प्रचार चलता था, तो कम्यूनिस्ट तेलगू भाषा मे पत्रक निकालकर लोगो को समझाते थे कि यह एक बडा ढोगी मनुष्य आया हे। इससे सावधान रहना।

तुलसीदासजी ने लिखा है

'संत भेष करनी कठिन बरनि न जाय प्रभु।'

ऐसा इसका रूप है, यह बडा खतरनाक मनुष्य है और यह अमीरो की इज्जत बढानेवाला, उनका एजेंट आया है। इस तरह तेलगू भाषा मे पत्रक बटे थे। मुझे तेलगू भाषा का थोडा ज्ञान है। वे पत्रक मेरे हाथ मे आये। वे मैने

पढ लिये, परन्तु जब कभी उनके विपय मे बोलने का मौका आया, तब तो मैंने केवल प्रेम से ही बात की और माना कि ये सारे लोग सद्भावनावान है। गरीबो का हित चाहते है, इसमे कोई सदेह नही। इस वास्ते वे मेरे दुश्मन नही हो सकते। उनको समझाने की मै चेष्टा करता गया और अपना काम करता चला गया। आखिर आज हालत यहातक है कि उनके नेता गोपालन ने एक दिन कह दिया कि "यद्यपि इस तरीके पर हमारा कोई विश्वास नही है, इसे हम निकम्मा तरीका समझते है, तो भी इस काम के हम विरोधी नही। इससे कुछ काम होना है तो होने दीजिये। उसका विरोध करने की हमे जरूरत नही है।" यहातक वह बोले। हम समझते है कि यह हृदय-परिवर्तन की मिसाल मानी जायगी। बहुत दफा हृदय-परिवर्तन का मखौल उडाया जाता है। लेकिन जो लोग ऐसा करते है, उन्ही-से मैने कई दफा कहा है कि भाइयो, मार्क्स ने आपका जो विचार-परिवर्तन किया और कराया, वह क्या तलवार लेकर किया था? 'मेरे विचार कबूल करो, नही तो काट डालता हू सिर तेरा', क्या यह आवाहन दिया था? उसने तो एक विचार आपके सामने रखा और आपको वह जचा। हम समझते है कि आप विचार-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन के नमूने है। तो उस प्रक्रिया पर से हमारा विश्वास नही छूट सकता, आपको देख करके तो और भी बढता है। हमने तो यहातक देखा कि जो विश्वास किसी सनातनी को होता है वेदो के लिए, या किसी मुल्ला को होता है कुरान के लिए, वैसा ही विश्वास मार्क्स के वचनो पर रखने तक की उनके मन की तैयारी हो गई है। वह एक हृदय-परिवर्तन का ही नमूना है, चाहे उसमे जडता हो।

इस तरह इसके लिए लोगो के दिलो मे अनुकूलता पैदा हुई और इसमे चाहे कुछ मसला हल करने की शक्ति हो या न हो, दिलो को जोडने की शक्ति कुछ इसमे है, ऐसा भान लोगो को हुआ। ईश्वर चाहता है कि हम निरन्तर चिंतनशील रहे, सावधान रहे। जब मैने सुना था कि उधर अमरीका का और पाकिस्तान का कुछ सम्बन्ध जुड गया है और लोगो मे कुछ हलचल शुरू होगई है तो मैंने आनन्द के उद्गार प्रकट किये कि मुझे खुशी हो रही है कि जड जनता कुछ थोडी हलचल दिखा रही है और उसको तो मैंने आशीर्वाद कह दिया।

इस वास्ते मै समझता हू कि अब, जबकि इसके लिए अनुकूल भावना लोगो की हो गई है, तो इसके साथ करने के दूसरे जो काम है, उनपर हम सोचे। इससे कोई मसला कहातक हल होगा, उस फिक्र मे हम न पडे। एक अच्छी राह मिल गई है तो उसपर हम चलें और उसकी पूर्ति मे जो करना चाहिए, वह करे। उस-की पूर्ति मे जो करना चाहिए उस बारे मे एक बात शुरू भी हो गई है, उसपर अब जोर देना है। वह बात यह कि इस बात को मानने के लिए एक हवा तैयार हो गई कि जमीन की कोई मालकियत नही हो सकती, जमीन परमेश्वर की पैदा

की हुई चीज है, वह सारे समाज की हो सकती है, गाव की हो सकती है; पर उसका कोई मालिक नही हो सकता। वह मुफ्त वस्तु है। जैसे हवा है, जैसे पानी है, जैसे सूरज की रोशनी है, वैसे ही जमीन है और उसकी सेवा करने का हक ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए, जो सेवा करना चाहता है। जैसे इस बात की हवा हो गई है, वैसे यह भी एक बात अब होनी चाहिए कि जिसके पास जो भी सम्पत्ति है, चाहे वह शक्ति के रूप मे, बुद्धि के रूप मे हो या धन-दौलत के रूप मे हो, जिस किसी रूप मे हो, उस शक्ति का अश सबको देकर ही उसका उपयोग वह कर सकता है। बिना दिये नही खाना चाहिए। 'पहले दो, पीछे खाओ' यह एक भावना निर्माण करने की जरूरत है।

एक भाई ने जब कहा कि जमीन उत्पादन का बडा भारी साधन है, इसलिए वह साधन किसीकी मालकियत नही हो सकता, यह बात कुछ समझ मे आ जाती है, तब मैंने कहा था कि वह सिर्फ उत्पादन का साधन नही है, वह परमेश्वर की भक्ति का साधन है। इसका अनुभव मैंने किया है। ईश्वर की भक्ति के जो अनेक साधन होते हैं, जप होता है, तप होता है, ज्ञान होता है, उन सबका थोडा-कुछ अनुभव मुझे है। लेकिन उन सबसे जितनी ईश्वर-भक्ति होती है, अर्थात् मनुष्यो के विकार-शमन के लिए जितनी मदद उनसब तरीको से मिलती है, उससे ज्यादा मदद जमीन पर परिश्रम करने से, खुली हवा मे कुदाली लेकर काम करने से होती है। इस वास्ते काशी-विश्वनाथ के मदिर मे हरिजनो को नही आने देना मुझे जितना गुनाह मालूम होता है, उससे ज्यादा गुनाह मालूम होता, जब कोई शख्स, जोकि जमीन की काश्त कर सकता है और काश्त करना चाहता है, उसको हम जमीन देने से इन्कार करते हैं—यह कहकर कि इस जमीन के कोई दूसरे मालिक हैं, जो कि इस दुनिया से चल बसेंगे—बिना नोटिस के और जमीन कायम रहेगी! अब यह चल नही सकता। हरिजनो का मदिर-प्रवेश न हो तो चल सकता है, क्योकि ईश्वर की भक्ति के और उसके दर्शन के उससे भी बेहतर दूसरे तरीके मौजूद हैं। लेकिन बेजमीनो को जमीन की सेवा से वचित नही रख सकते, क्योकि जमीन की सेवा ईश्वर-भक्ति का सबसे उत्तम साधन है। उस साधन से किसीको भी वचित नही कर सकते हैं।

हमारे एक भाई है, जिन्होने प्राकृतिक उपचार का एक केन्द्र चलाया है। वहा पर उपचार के लिए एनिमा पॉट होता है, हाट-वाटर-बैग होते हैं। ऐसे कई साधन होते हैं। एक दफा चर्चा चली थी, प्राकृतिक उपचार के औजारो की और साधनो की। तब मैंने कहा था कि यह जो औजार आप लोग रक्खा करते हैं, वे तो हैं, परन्तु कुदाली भी एक प्राकृतिक उपचार का साधन है, यह समझकर प्राकृतिक उपचार के केन्द्रो मे ऐसा आयोजन होना चाहिए कि कुदाली से कुछ खोदकर उपासना की जाय तो आरोग्य की भी बहुत उत्तम साधना होगी। इस तरह जैसे हरेक को पानी

पीने का हक है, वैसे ही काश्त करनेवाले को जमीन मांगने का हक है। हरएक प्यासे को पानी पीने का हक है, वह किसी भी जगह जा सकता है और कह सकता है कि मुझे प्यास लगी है, पानी दीजिये, उसको शर्मिन्दा होने का कारण नही है। लेकिन अगर हम किसी कारण से प्यासे को पानी नही दे सके, तो हमे शर्मिन्दा होना पडता है, पानी मागने मे शर्मिन्दा होने की जरूरत नही है। जैसे प्यासे को पानी पीने का हक है, वैसे जमीन पर काश्त करने की जिसकी तैयारी हे, उस हर शख्स को जमीन का एक टुकडा मागने का हक हे, ऐसा मै मानता हू।

इस तरह की हवा फैल गई है, जिसके लिए लोगो के मन तैयार होगये हे। लोक-मानस तैयार हुए विना आखिर के कदम नही उठाये जा सकते। परन्तु हिन्दुस्तान मे तीन साल के प्रयत्न से यह हवा तैयार हो चुकी है। अव इसका किस तरह उपयोग किया जाय, यह सोचने की वात है। सोचा जा सकता है, पर मुझे कहना यह था कि जिस तरह यह हवा जमीन के लिए पैदा हो चुकी हे, उसी तरह की हवा सम्पत्ति के लिए पैदा होनी चाहिए और हरएक के पास जितनी सम्पत्ति है, उसका एक हिस्सा, मैने तो छठा हिस्सा मागा है, देकर पाच वटा छह का उपयोग मनुष्य न्यायपूर्वक कर सकता है। इस तरह की भावना अव हमको सारे राष्ट्र मे फैलानी चाहिए।

जव यह चीज हम सर्वत्र फैलायेगे तो आज जैसे देश की सेवा करने का मौका भूमिवानो को ही मिलता हे, क्योकि वे भूमि दे सकते है, वैसे कुछ-न-कुछ देने का और देश की सेवा करने का मौका हरएक को मिलेगा। हरकोई खाता है, तो खाने के पहले उसको समाज के लिए थोडा कुछ रखना है और फिर खाना है। यह भावना, यह विचार अव हमको फैलाना है, जिसको 'सम्पत्ति-दान-यज्ञ' कहते है। इसकी वहुत जरूरत पैदा हुई है, क्योकि हमे जमीन का वटवारा करना है और अव तो फौरन करना है। काफी जमीन हमारे हाथ मे आ चुकी है। अव उसको वाटना चाहिए और उसके आधार पर जो कुछ ग्राम-कार्य करना है, उसका आरम्भ हमे करना चाहिए। इसके लिए साधन जुटाना बहुत जरूरी है। उस वास्ते भी सपत्ति-दान की आवश्यकता होती रहेगी। यह काम ठीक मौके पर शुरू हो रहा है। मै चाहता हू कि आप सव लोग इसपर जोर दे और हरकोई, चाहे उसके पास अल्प सम्पत्ति हो, या ज्यादा सम्पत्ति हो, कुछ-न-कुछ देकर ही वाकी का उपयोग करे। यह एक धर्म-विचार, यह एक नीति-विचार लोगो मे फैलाना चाहिए।

कुरान मे स्वर्ग और नरक के साथ एक और भी गति वताई गई है। उसको वरजख कहते है। एक तो है दोजख और दूसरा है, जन्नत। वीच मे है वरजख। वरजख मे जो लोग जाते हे, उनके चेहरे का आधा हिस्सा रोता हुआ होता है और आधा हिस्सा मुस्कराता हुआ। आधे मे खुशी होती है और आधे मे दु ख होता हे। वह एक बीच की हालत है। वहा से स्वर्ग का भी दर्शन होता है, नरक का भी।

जब वे स्वर्ग की तरफ देखते है, तब वे रोते है, और जब नरक की तरफ देखते है, तब वे खुश होते है, क्योकि बीच की हालत मे है। दुनिया मे जितने भी प्राणी है, सारे बरजख मे है। न कोई दोजख मे है, न कोई जन्नत मे। याने हमसे ज्यादा दुखी कोई-न-कोई है ही। जैसे हमसे अधिक सुखी भी कोई है, वैसे कोई मनुष्य ऐसा नही, कोई प्राणी ऐसा नही कि जिससे अधिक दुखी दुनिया मे कोई नही। तो, बीच की हालत मे हम है। इस वास्ते चाहे जितने दुखी हम हो, हमसे भी दुखी लोग होगे। उनके वास्ते कुछ-न-कुछ करने की जिम्मेदारी हमपर है, यह धर्म-भावना हमे रूढ करनी है। इसको सम्पत्ति-दान-यज्ञ कहते है।

इसके साथ-साथ एक और बडी वस्तु सूझी है। महात्मा गाधी की कृपा है। उनके स्मरण के लिए हर साल अपने हाथ के कते हुए सूत की एक लच्छी हरकोई दे, ऐसी हमने माग की है। उसको हमने 'समर्पण' नाम दिया है। वह श्रम-प्रतिष्ठा के लिए है। हर मनुष्य कुछ-न-कुछ उत्पादन-कार्य तो जरूर करे, उसका एक प्रतीक, उसका चिह्न, एक निशान के तौर पर सूत कातना, हम लोगो ने माना, जो कि बहुत ही आसान कार्य है। हम चाहते है कि जो भी कात सकते है, वे सारे-के-सारे, कम-से-कम एक लच्छी दे। हम इस कार्यक्रम को बहुत ही प्राणवान कार्यक्रम समझते है और सर्वोदय-विचार का यह वोट है, ऐसा मैने बहुत जगह कहा है। मानी उसके यह है कि जिनका श्रम-प्रतिष्ठा मे विश्वास है, अहिंसा के तरीके मे विश्वास है, भ्रातृभाव मे, भाई-चारे मे विश्वास है, वे अपनी मान्यता के दर्शन के लिए एक लच्छी अपने हाथ की दे, समर्पण करे। वोटरो की लिस्ट बनाई गई और कहते है, लगभग अठारह करोड वोटर बन गये है। पर इसमे तो हमने उम्र की भी कोई कैद नही रखी है। इस वास्ते उससे भी ज्यादा लोगो से हमको सूत मिल सकता है और हमको उम्मीद हे कि यह काम हम फैला सकेगे। हमको इसे फैलाना चाहिए। मै यहा तक जाऊगा कि इसमे यह भी जिम्मेदारी हमपर आयेगी कि हिन्दुस्तान मे कोई ऐसा शख्स न रहे जो कि सूत कातना ही न जानता हो। जहातक हिन्दुस्तान का ताल्लुक है, तालीम का यह एक अनिवार्य अग मै मानता हू।

इगलैड के लोगो की तालीम मे उन लोगो ने तैरना और बोटिग अनिवार्य-सा माना है। हरएक बच्चे को ये चीजे आनी ही चाहिए, उसके बिना तालीम पूरी नही होती। यह उन्होने क्यो माना ? इस वास्ते माना है कि उनका देश समुद्र-परिवेष्ठित है। उन्होने सहज ही पहचान लिया कि अपने देश के हरएक ग्रामीण को, बच्चे-बूढे सबको, और बहनो तथा भाइयो को तैरना जरूर आना चाहिए। ये चीजे जो नही कर सकता, वह अपने देश की रक्षा के काम मे कामयाब नही हो सकता। जिस तरह उन्होने यह समझकर अपनी तालीम मे इन चीजो को स्थान दिया है, साक्षरता के साथ-साथ इन चीजो की आवश्यकता मानते है, वैसे ही हमको भी हमारी तालीम मे, देशभर की सब तालीम मे, देश के लिए कातना अनिवार्य

समझना चाहिए। जो जरूरत तैरने की कला की और वोटिंग की कला की इगलैंड की जनता के लिए है, हम अगर जरा वारीकी से सोचे तो हिन्दुस्तान के लिए वही जरूरत कातने की है, ऐसा गाधीजी ने हमे सिखाया। और मैंने उनका यह विचार वहुत दलील के वाद ग्रहण किया। वहुत दिनो तक वहस चली, वरसो तक। मैं यद्यपि कातता तो था, लेकिन इस विचार को मानता नही था। लेकिन जव मुझे इसका पूरा यकीन हो गया, तभी मैं समझ गया कि हिन्दुस्तान के किसान की आज जो हालत है, उस हालत मे अनएम्प्लायमेंट का सवाल इतना वडा नही है, जितना कि 'अडरएम्प्लायमेंट' का है। खेती के साथ-साथ किसान के हाथ मे ऐसा उद्योग होना चाहिए, जो कि चन्द मिनट करना है तो कर लिया और छोडना है तो फौरन छोडकर खेत मे चले गये। इस तरह का उद्योग उसके घर मे होना ही चाहिए। उसके वगैर हिन्दुस्तान का किसान नही वचेगा और हिन्दुस्तान की रक्षा भी नही हो सकेगी।

यो वहुत ही वारीक दर्शन उनका था। वे वहुत दूरदर्शी थे। वहुत उनका स्मरण होता है। वे क्रातदर्शी थे। हमारे ऋपियो ने यह शब्द निकाला—'कवि क्रात-दर्शी।' कवि कौन है ? तो कहा कि जो क्रातदर्शी है, वह कवि है, याने परले पार जो देखता है। इधर के देखनेवाले तो सभी है, लेकिन परले पार, परदे को भेद करके जो देख सकता है, वह क्रातदर्शी कहलाता है। वे ऐसे क्रातदर्शी थे और हमारे देश का दर्शन उनको वहुत ही सूक्ष्म था। यह वस्तु उन्होने सिखाई और हमको लगता है कि सारे हिन्दुस्तान की तालीम मे इसको स्थान देना होगा, अपनी सरकार के सामने यह मेरी माग है। यह माग मैंने पिछले साल पडितजी के सामने रखी थी। इस साल मैं उसको दुहरा रहा हू और दृढता के साथ दुहरा रहा हू, क्योकि इसमे हिन्दुस्तान की रक्षा का मैं यह सवाल मानता हू। तो यह काम हमको करना है कि हरएक से एक लच्छी हमे प्राप्त हो। जो कातना नही जानता, उसको सिखाना भी है। यह हमारा एक कार्यक्रम है।

थोडे मे एक वात और कहूगा कि देश मे जो कुछ कार्य हो रहे है, उन कार्यों मे कोई तर तम-भाव होना चाहिए, याने किस काम को हम प्रथम स्थान दे, किस काम को दूसरा स्थान दे। मैं मानता हू कि हिन्दुस्तान की जमीन का मसला कहिये, चाहे भूमिदान का मसला कहिये, जो भी नाम दीजिये, वह मसला उचित ढग से हल किये वगैर हिन्दुस्तान की जनता को स्वराज्य के सुख का भान नही हो सकता और इस कार्य की अत्यन्त तीव्रता है। हम समझते है कि देश की यह प्रथम समस्या है।

मैं चाहूगा कि इन वातो और दूसरे और भी सवाल, जो देश के हित के है और जिनके वारे मे हमे सोचना चाहिए, पर हमारे प्रिय नेता और मित्र, जवाहरलालजी, जो यहा उपस्थित है, कुछ-न-कुछ प्रकाश डालें। उनका मार्ग-

दर्शन हम चाहते है । हम वहुत ही नम्र हैं । हम कोई चीज है नही, यह हम जानते है, लेकिन किसी कारणवश बापू के पास पहुच गये और उनके हाथ मे कोई ऐसी कीमिया थी कि वे मिट्टी से चेतन बना लेते थे, जगलियो को सभ्य बनाते थे, मुर्दों मे चेतना डालते थे और छोटो को वडा वनाते थे, ऐसी कोई शक्ति उनमे भगवान ने पैदा की थी । उसके कारण हम नाचीज भी कुछ-न-कुछ काम कर पाते हैं । परन्तु इतना समझने की अक्ल हममे है कि वास्तव मे हम कोई चीज नही हैं, बुद्धि भी हममे कम है । श्रद्धा कुछ भगवान ने जरूर दी है, परन्तु हम सबकी सलाह चाहते हैं और सबके मार्ग-दर्शन की अपेक्षा रखते हैं और खास करके जिन सज्जनो ने देश का नेतृत्व वडे सकट-काल मे भी सभाला है और गाधीजी की राह पर चलने की जो जी-जान से कोशिश कर रहे हैं, ऐसो से मार्ग-दर्शन वहुत नम्रता से हम चाहते हैं ।

छठा सर्वोदय-सम्मेलन
बोध गया, १८ अप्रैल १९५४

६ : : सत्याग्रह का विधायक स्वरूप

हम रोज देखते हैं कि पक्षी अपनी जीविका के शोध के लिए आसमान मे इतस्तत घूमते हैं, दौडते हैं, उड़ते हैं और आक्लात होकर विश्राम के लिए घोसले मे वापस आ जाते हैं । वेद कहता है कि इसी तरह सारे जीव ससार मे विविध कर्मों को करते हुए, अनेक प्रयोगो का सपादन करते हुए, कर्म-फल का भी उपभोग करते हुए थक जाते हैं और फिर कुछ विश्राति के लिए, कुछ शाति के लिए, नये उत्साह की प्राप्ति के लिए और कुछ आत्म-परीक्षण के लिए भी एक स्थान मे आ जाते हैं । **'यत्र विश्व भवति एक-नीडम्,'** एक ऐसा स्थान होता है ।

गाधीजी के प्रयाण के बाद अहिसा के विचार को माननेवाले, उस आकाश मे सचार करनेवाले, पक्षियो के लिए सर्वोदय-समाज एक विश्राम-स्थान होगया है । ऐसा स्थान नही होता, सालभर मे एक दफा हम जो एकत्र होते हैं, वैसी योजना अगर नही होती, तो यथा-शक्ति हम सचार जरूर करते, आसमान मे, लेकिन जाने-अनजाने हमारी शक्तिया एक-दूसरे से टकराती और अहिसा का नाम जपते हुए भी हम हिंसा-मार्ग मे खिच जाते । यह सब सभव था । इसलिए यह हमारा सौभाग्य है कि एक घोसला हमको मिल गया । हम सालभर मे एक दफा आते हैं और कुछ चिंतन करते हैं । प्रकट चिंतन, एक दूसरे से सलाह-मशविरा करते हैं,

और जैसाकि शकररावजी ने कहा 'सत्सग'। ऐसे स्थान मे जो कुछ बोलना होता है, जो कुछ चर्चा करनी होती है, वह बिल्कुल मुक्त मन से करनी होती है। उसमे कोई छिपाव नही होना चाहिए, दुराव नही होना चाहिए। उसमे आवेग की कोई जरूरत नही है, परतु जो परस्पर-विरोधी विचारधाराए भी हमारी बनी हो, वे सब हम यहा रख सकते है। जिस प्रकार कोई नदी पूर्व दिशा मे जा रही है, तो कोई पश्चिम दिशा मे जाती है, पर परस्पर विरुद्ध दिशा मे जाती हुई भी आखिर वे समुद्र मे एकरूप होती है। उसी तरह भिन्न-भिन्न विचारधाराए और कभी-कभी परस्पर-विरोधी विचारधाराए भी, जो परस्पर विरुद्ध दिशा मे बहनेवाली हो जाती है, सारी चर्चा मे लीन हो सकती है, लीन होनी चाहिए। इसलिए अभी जो विचार मै आपके सामने प्रकट करूगा, उन विचारो के लिए मेरी व्यक्तिगत कितनी भी निष्ठा हो, मेरा आग्रह नही है। विमर्श के लिए, सोचने के लिए जैसी बाते सूझती है, जो आभास होते है, वे हम आपके सामने रखेगे। खैर, इतना तो कार्य सर्वोदय-समाज मे होना ही चाहिए। पर उसके अलावा कुछ काम की बातें, जिस कार्य मे हम लगे है, उसके सिलसिले मे भी कुछ विचार रखेगे।

हममे से बहुत लोग मानते है कि समाज के विकास मे ऐसा एक मुकाम आ जाना चाहिए, जबकि दड के आधार पर शासन चलाने की जरूरत नही रहेगी। उस तरह का शासन, दडाधार शासन नही रहेगा। इस अतिम ध्येय को साम्यवादी भी मानते है, परतु उनका विश्वास है कि उस ध्येय की प्राप्ति के लिए इस समय अधिक-से-अधिक मजबूत केन्द्र सत्ता होनी चाहिए और उसके आधार पर, दूसरी सारी स्थायी सत्ताए हम खडित कर सकेगे। उसके बाद जिस प्रकार काष्ठ को खत्म करके ज्वलत अग्नि खुद भी खत्म हो जाती है, वैसे ही यह केंद्रित सत्ता लोगो की तरफ से जो प्रकट हुई, तो दूसरी सारी वैसी ही सत्ताओ को हिसा से—अगर जरूरत पडी तो—नष्ट करेगी और फिर स्वयमेव शात हो जायगी। उसकी शाति के लिए और कुछ नही करना पडेगा। यही करना पडेगा कि उसके खिलाफ जितनी शक्तिया है, उन सबका खात्मा किया जाय। जब यह कार्य हो जायगा, तब उसके लिए अवकाश नही रहेगा और वह शक्ति स्वय शात हो जायगी। यह बिल्कुल थोडे मे एक विचार मैने यहा रखा। उसका एक खासा अच्छा शास्त्र भी बनाया है। उसका भी चितन-मनन हमको करना चाहिए।

इसके अलावा कुछ बीच के लोग है, जो मानते है कि शासन हर हालत मे कुछ-न-कुछ रहेगा। शासन याने दण्ड-युक्त शासन। दड की आवश्यकता समाज मे कायम है, क्योकि सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, सभी जो चलते है। कोई एक अवस्था ऐसी नही आती कि जहा रजोगुण, तमोगुण का लोप ही हो जाय। इस वास्ते हर हालत मे दड की आवश्यकता रहेगी, वह कम-बेशी भले हो—दड का स्वरूप भी कुछ शात हो, वह दूसरी बात है, परतु दड की आवश्यकता रहेगी, ऐसे

माननेवाले भी कुछ लोग है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विचार उस अतिम लक्ष्य के विषय मे होते है। परतु लोग यह जानते है और समझते है कि आज की परिस्थिति मे दड-युक्त सत्ताए हैं और वे अभी रहेगी। हिंसक समाज-रचना मे तो और आगे भी दड-शक्ति कायम रहेगी। उसका आधार भी उस समाज पर रहेगा, परतु अहिंसक समाज मे भी आज की सूरत मे दड-शक्ति रहेगी, ऐसा हमको मानना पडता है। परिस्थिति देखते हुए, दड-शक्ति का एक स्थान है, यह मानना पडेगा। परतु अहिंसक समाज का यह लक्षण रहेगा कि उस समाज मे सबसे बडी सस्था सेवा ही रहेगी। उसमे दड और सत्ता का स्थान होगा, उसके लिए अवकाश रहेगा, परतु वह बहुत गौण रहेगा। सबसे बडा स्थान सेवा का होगा, सबसे बडी सस्था सेवा-सस्था होगी। इस दृष्टि से कभी-कभी हम अपने मन मे सोचते है तो हमे लगता है कि इस देश की अहिंसक रचना के लिए क्या सबसे अधिक बाधा देनेवाली वस्तु आज की काग्रेस नही होगी। यह सस्था देश की सबसे बडी सस्था है और आज की हालत मे वह चुनाव-प्रधान है, याने उसका मुख्य ध्यान चुनाव पर रहता है। चुनाव के जरिये सत्ता, सत्ता के जरिये सेवा, यह उसका सिलसिला है।

जिस देश की सबसे बडी सस्था चुनाव-प्रधान हो, उस देश मे अहिंसा की प्रगति के लिए एक बाधक यत्र खडा हुआ है, ऐसा आभास होता है। इसका उपाय भी हमारे राष्ट्रपिता बतला गये है। वह द्रष्टा थे। दृष्टा और उपदृष्टा भी। दूर और समीप, दोनो प्रकार का उन्हे दर्शन था।

उन्होने यह सोचा था कि हमारी सबसे बडी जमात काग्रेस, जिसने इस देश के सिर पर जो एक बडा बोझ था, जो इसे दबा रहा था, उसको हटाया, वह सस्था उतना कार्य समाप्त होने पर लोक-सेवक-सघ बन जाय। हम सोचते हैं कि उनमे कितनी कुशल-बुद्धि थी। अगर वह चीज बनती तो देश की सबसे बडी सस्था सेवक सस्था है, ऐसा होता। अब जब वह हालत नही है, तो सोचा जाता है कि सेवा के लिए एक भारत-सेवक-समाज बनाया जाय। भारत-सेवक-समाज सेवा करेगा, लेकिन जिस परिस्थिति मे सबसे बडी ताकत सत्ताभिमुख है, चुनाव-प्रधान है, उस परिस्थिति मे भारत-सेवक-समाज को बहुत ज्यादा बल नही मिल सकता। वह गौण ही रहेगी। सेवा करनेवाली गौण सस्थाए हिंसक समाज मे भी होती है, क्योंकि चाहे समाज हिंसाश्रित हो, चाहे अहिंसाश्रित हो, जहा समाज का नाम लिया जाता है, वहा सेवा की जरूरत प्रत्यक्षत होती है। इस वास्ते उस समाज मे भी सेवाए चलती है, सेवा करनेवाली सस्थाए होती है। लेकिन अहिंसक समाज मे सबसे बडी सस्था वह होनी चाहिए, जो सेवामय हो। सेवा-प्रधान कहने से भी मेरा समाधान नही हुआ, इसलिए मैंने जो 'सेवामय हो', ऐसा कहा।

दूसरी बात, लोक-सेवक-सघ की जो कल्पना थी, उसमे सत्ता पर सत्ता चलाने की बात थी। एक सत्ता रहती, जो कि राज्य-शासन करती, आज की आवश्यकता

के मुताबिक करती, जिसके हाथ मे दड होता और उसके हाँथ मे दड देकर बाकी का सारा दडरहित बनता, पर वह भी दड-सत्ता हाथ मे रखनेवाली सस्था होती। उस पर भी उससे अलिप्त रहनेवाले समाज की सत्ता रहती, याने सेवा सार्वभौम होती और सत्ता सेविका बनती, सत्ता का नियत्रण करने की शक्ति उस समाज मे रहती। लोग उसका आशीर्वाद प्राप्त करके ही चुनाव मे खडे होते और सेवा देखकर सज्जनो का चुनाव समाज करता। इस तरह से सारी बात बनती। लेकिन कई कारणो से वह चीज नही हुई और काग्रेस इलेक्शिनियरिंग बॉडी (चुनाव करनेवाली सस्था) प्रधानत रही। परिणाम यह है कि जैसे मैने विनोद मे कहा था, हमारे देश की मुख्य सस्था इस प्रकार की होने के कारण सारे समाज मे भूत, भविष्य और वर्तमान, ये जो तीनो काल है, उन तीनो कालो का परिवर्तन, इलेक्शन-पीरियड, प्री-इलेक्शन-पीरियड और पोस्ट-इलेक्शन-पीरियड मे होता है, याने कुल कालात्मा समाप्त हो गई इन तीनो कालो मे। जिन कारणो से यह किया गया, उन कारणो की चर्चा मै नही करना चाहता। नेताओ ने जिस ढग से सोचा, उस ढग के लिए कोई आधार ही नही था, ऐसा मै नही कहता। हमे लगा कि जो बलशाली संस्था बन चुकी है, वह अगर चुनाव के क्षेत्र मे बनी रहती है, तो शायद नवीन राज्य के लिए सुरक्षितता होगी, क्योकि भिन्न-भिन्न पक्षो को जोडकर, एक राज्य समाप्ति के बाद, फौरन उस राज्य पर कब्जा करने के लिए दूसरे भी तैयार हो सकते है। इतिहास मे देखा गया है कि ऐसा कभी-कभी होता है। इस वास्ते उसके प्रतिकार के लिए योग्य समझकर उस समय वैसा किया होगा। उसका कुछ समर्थन भी किया जा सकता है। उसकी परीक्षा मै नही करना चाहता, परतु यह एक घटना ऐसी है कि जिसके कारण हमारे देश मे पचासो उलझने अहिंसा के मार्ग मे खडी हुई है। यह हमको समझ लेना चाहिए।

इसलिए हम पर एक नई सस्था बनाने की जिम्मेदारी आती है। गाधीजी के बाद जो नही आनी चाहिए थी, वह आती है। तो एक ऐसी सस्था इस देश मे हम बनाये, जो सेवामय हो और जो सबसे बडी हो। एक सस्था, जो पचास-साठ साल से बन चुकी, जिसमे हम सब लोगो ने भक्तिपूर्वक योग दिया, जिसने एक ऐसा भारी कार्य किया, जो इतिहास मे अकित रहेगा, उस संस्था को नगण्य समझकर कोई आगे बढे, यह असभव है। पर यह जिम्मेदारी नाहक छोटे-छोटे सेवको पर डाली गई है। जिनके कधो मे उतना जोर नही, और जिनके दिमागो मे भी शायद बहुत ज्यादा बल नही, और एक महान् नेता को खोकर जो कुछ अस्त-व्यस्त भी हो सकते थे, ऐसो पर एक जिम्मेदारी डाली गई कि वे स्वतत्र रूप से एक सस्था बनावे। हम छोटे है, सेवा की छोटी सस्थाए हम मजे मे बना सकते है, चाहे काग्रेस या महाकाग्रेस उनके विरुद्ध क्यो न खडी हो। अग्रेज-सरकार के रहते हुए भी हमने सेवा की छोटी-छोटी सस्थाएं बनाई है, यह सरकार तो हर हालत मे हमारे लिए पोषक

ही है, मददगार है और काग्रेस भी हर हालत मे हमारी सेवा का गौरव करेगी। इस नाते छोटी-छोटी सेवा-सस्थाए बनाना हमारे लिए कठिन नही था। परतु हम पर यह जिम्मेदारी डाली गई कि हम लोग सेवा की सस्था न बनाये, पर ऐसी सस्था बनाये जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तंत्र पर सत्ता चलाने की शक्ति हासिल करे। बडी भारी जिम्मेदारी हमपर डाली गई है। परमेश्वर सहायता करेगा तो उस जिम्मेदारी को भी छोटे, निकम्मे औजारो के जरिये वह सफल बनायगा। वह उसकी मर्जी की बात है, लेकिन काम दुश्वार है।

इस हालत में, हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे, राजनैतिक सस्थाओ मे हैं, उनपर जिम्मेदारी आती है कि वे हम लोगो पर कृपा करके थोडी मदद दे। मदद वे यह दे कि जहा वे बैठे हैं, वहा सेवा किस तरह ऊपर उठे, उसके बारे मे वे प्रयत्न करें, चाहे वे प्रजा-समाजवादी दल मे हो, या काग्रेस मे हो। वहा वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करे कि चुनाव का जो सारा जजाल है, उससे अलग रहनेवाली सस्था खडी हो। एक सस्था के अन्दर अनेक ग्रुप पैदा होते हैं, यह बडी खतरनाक बात मानी जाती है राजनीति मे। मै यह बात नही सुझा रहा हू कि ये जो सस्थाए राजनैतिक क्षेत्र मे काम करती हैं, वे अपने अन्दर कुछ दूसरे-तीसरे ग्रुप बनाये। मै नही चाहता कि इनमे से किसी की भी ताकत टूटे, जिसे वे ताकत समझते हैं। जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे, वह ताकत नही थी, तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत मे उनको सच्ची ताकत हासिल होगी। परन्तु हम सुझाते यह हैं कि हमारे जो भाई भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे हैं, वे यह कोशिश करे कि जिसको वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन सस्थाओ मे प्रधान कार्य हो जाय और दूसरी बाते गौण हो जाय। चुनाव को कितना भी महत्व क्यो न दिया जाय, वह ऐसी चीज नही है कि उससे समाज के उत्थान मे कुछ मदद पहुचे। वह 'डेमोक्रेसी' मे खडा किया हुआ एक यत्र है, एक 'फारमल डेमोक्रेसी' (औपचारिक लोकसत्ता) आई है। वह माग करती है कि राज्य-कार्य मे हर मनुष्य का हिस्सा होना चाहिए। इस वास्ते हरएक की राय पूछनी चाहिए। यह तो हरकोई जानता है कि ऐसी कोई समानता परमेश्वर ने पैदा नही की है कि जिसके आधार पर एक मनुष्य के लिए जितना एक वोट है, उतना ही वह दूसरे मनुष्य के लिए भी हो। ऐसी कोई योजना ईश्वर ने नही की। लेकिन यह स्पष्ट है कि पण्डित नेहरू को एक वोट है, तो उनके चपरासी को भी एक ही वोट है। इसमे क्या अक्ल की बात है, हम नहीं जानते। मै ऐसे किसी शख्स को नही जानता जो वह अक्ल की बात मुझे समझायेगा। परन्तु जब मै इसका समर्थन करता हू, तब मुझे बडा ही आनन्द होता है। वह समर्थन यह है कि इसमे मेरे वेदान्त का प्रचार होता है, इसमे आत्मा की समानता मानी गई है। बुद्धि अलग-अलग है, कम-बेशी है, शरीर-शक्ति कम-बेशी है, और शक्तिया हरएक की अलग-अलग होती है।

फिर भी हम हरएक को जो एक-एक वोट देते हैं, उसका इसी विचार से समर्थन होता कि इसके माननेवाले लोग वेदान्त को मानते है। वहुत अच्छी वात है और उसी आधार पर हम उसका समर्थन करते हैं और हमको वहुत अच्छा लगता है कि एक आधार हमको मिल गया, जिसके जरिये हम साम्ययोगी समाज की स्थापना कर सकते हैं। यह हमको वडा अच्छा आधार मिला है।

परन्तु सोचने की बात है कि जहातक व्यवहार का सवाल है, भर्ती की गिनती करके एक राज्य चलाने के काम का, मतो की उस गिनती का, वहुत ज्यादा महत्त्व नही हो सकता। ऐसा महत्त्व उसका नही है जिससे समाज मे परिवर्तन हो जाय। समाज मे आज लोग क्या चाहते है, इसे जान लेने से, आगे क्या परिवर्तन,हमको करना है, उसकी दिशा सोचने मे शायद उससे मदद हो सकती है। परतु लोग आज क्या चाहते है, इतना जानने पर भी समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया मे कोई मदद पहुचती हो, सो बात नही। इसलिए चुनाव को कितना भी महत्व प्राप्त हो, व्यावहारिक क्षेत्र मे तो मूल्य-परिवर्तन का जहातक सवाल है, वहा वह गौण वस्तु हो जाती है। इतना समझकर हमारे जो लोग वहा है, वे वहा रचनात्मक कार्य के लिए वहुत जोर दे और अगर उनको यह महसूस हो कि 'नही', वहा एक ऐसा मामला है कि जो हमारे सारे प्रयास को शून्य बनाता है, विफल बनाता है', तो फिर उनको वहा से निकल आना चाहिए। ऐसा अगर वे करते है तो हमारे जैसे लोग, कम शक्ति के लोग, जो वडा भारी जिम्मा उठाने के लिए मजबूर किये गए है, उनको कुछ मदद मिलेगी।

दूसरी सोचने की वात यह है कि गाधीजी ने हर वात मे अहिसा का नाम लिया, तो हम लोगो के सिर पर अहिंसा का वरदहस्त ही है। पर हम लोगो मे से कुछ लोग सरकार मे गये है और कुछ वाहर है, इसलिए इन दिनो अहिंसा का अर्थ, सरकारी अर्थ, अक्सर यह हुआ है कि अहिंसा याने समाज को कम-से-कम तकलीफ देना। पीडा पैदा न हो, अभी की हमारी जो व्यवस्था है, उसमे वहुत वाधा न पडे, इसका नाम अहिसा है। अब बोला जाता है कि समाज का सोशलिस्टिक पैटर्न वनाना है, तो उसके साथ कहते है कि हमारा ढग अहिसा का रहेगा। जव ये दो शब्द मे एक साथ सुनता हू कि समाजवादी रचना करनी है और रग अहिंसा का रहेगा, तो मेरे मन मे दोनो को मिलाकर सिवा सत्याग्रह के, सिवा सर्वोदय के, दोनो का कोई अर्थ नही निकलता। परन्तु कई लोग उसका इतना ही अर्थ समझते है कि हमको जो परिवर्तन लाना है, समाजवादी रचना के लिए जो करना पडेगा, वह बिल्कुल आहिस्ता-आहिस्ता करना होगा। हाथ मे कोई जख्म है, फोडा है, तो उसको तकलीफ न हो, इस तरह से जैसे उस हाथ का उपयोग किया जा सकता है, वैसे बहुत नाजुक तरीके से, समाज-रचना मे तकलीफ न हो, वहुत ज्यादा एकदम से फरक न हो, ऐसे ढग से काम करने को आजकल अक्सर अहिसा समझते है।

थाने वह एक निरुपद्रवी वस्तु होनी है। **'न जान हारदेन, न विद्विषादरः'** ऐसी स्थिति कि जिसमे हम बहुत ज्यादा आगे नही बढते है, अगर आज की हालत भी करीब-करीब वत्ती-सी रहती है, और समाधान भी होता है, क्योकि हमने एक आदर्श समाने रखा है और उसका कुछ-न-कुछ जप भी करते है, कुछ बोलते भी है। इस वास्ते जो कुछ किया जायगा, उसमे उसका थोडा स्वाद आ ही जायेगा और धीरे-धीरे वह बात बनेगी। मुझे लगता है कि अहिसा की यह व्याख्या अहिसा के लिए बडी खतरनाक है, और हिसा के लिए बडी उपयोगी है। बुद्ध भगवान ने यह बात हमको स्पष्ट समझाई। उन्होने कहा, **"मंद पुण्यं कुवत पापे हि रमते मन."** अगर हम पुण्य आचरण आलसी होकर आहिस्ता-आहिस्ता करते है तो पाप त्वरित गति से बढता है।

अगर अहिसा के इस अर्थ को माने तो हिसा बहुत जोरो से बढेगी। जहा आप कहेगे शराबबदी को, 'गो-स्लो' वहा शराबखोरी जोर से बढती है। दुर्जनता जोरदार होती है, इस वास्ते 'गो-स्लो' वाली जो बात है, वह कृपा करके अहिसा के लिए लागू मत कीजिये। वह हिसा के लिए लागू कीजिये। वहा 'गो-स्लो' बहुत अच्छा है। परन्तु अहिसा मे तीव्र सवेग होना चाहिए। शास्त्र-वाक्य मे **'तीव्र संवेग नाम आसन्न'**। अगर आप अच्छाई को जल्दी-से-जल्दी नजदीक लाना चाहते है, तो उसमे तीव्र सवेग होना चाहिए। अगर अहिसा का अर्थ इतना मृदु, नरम, निर्वीर्य किया जाय, तो उससे विरोधी शक्तिया, हिंसक शक्तिया, हमारे न चाहते बढ़ेगी, इस बात का ज्ञान सारे गाधीजी के अनुयायियो को हो, यह हमारी भगवान से प्रार्थना है।

राजाजी ने दो-तीन मर्तबा एक महान विचार दुनिया के सामने रखा। उसे रखने के लिए वह ही समर्थ थे, क्योकि वह तत्वज्ञानी है और तत्वज्ञानी होते हुए भी राज्य-कार्य-कुशल है। जिस पुरुप मे तत्वज्ञान और राज्य-कार्य-कुशलता, इन दोनो का सयोग होता है और इसके अलावा जो शब्द-शक्ति के भी ज्ञाता है, शब्द का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय मे भी जो प्रवीण है, ऐसी त्रिविध शक्तिया जहा एकत्र होती है, वही शख्स ऐसा कहने के लिए अधिकारी है। उन्होने कहा, 'यूनिलेटरल एक्शन' याने एकपक्षीय सज्जनता प्रकट होनी चाहिए। सामनेवाले से बातचीत करके कि तू जितना सज्जन होगा, मै भी उतना ही सज्जन होऊगा, इस तरह सज्जनता नही बढती है। सज्जनता तो स्वयमेव बढती है, अपना ही विचार करके। इसलिए उन्होने अमरीका को यह रास्ता सुझाया। अब अमरीका के लिए बडी मुश्किल बात होगई। अमरीका के कुल विद्वान लोगो ने, खास लोगो की बात मै नही करता, वे सब लोग ही विद्वान है, क्योकि हिन्दुस्तान मे जितना कागज खपता है, उससे १६० गुना कागज प्रति व्यक्ति अमरीका मे खपता है, एक मनुष्य को, जो मिलिटरी कार्य मे प्रवीण है, सारी सत्ता सौंप दी है और कहा है कि फारमोसा

के बारे मे जो करना है, वह करने का पूरा अधिकार आपको दिया है, और आपके हाथ मे जो ब्रह्मास्त्र और परमाणु अस्त्र है, उनका भी उपयोग अगर जरूरी हो तो आप कर सकते हैं। अब इस तरह से सारे विद्वानो का जिसपर इतना विश्वास है, वह शख्स अगर राजाजी की बात माने, तो उसके लिए बडी मुसीबत की बात है। वह क्या करे ? उसको मेन्डेट है सारी जनता का कि वह उस अक्ल को चलाये, जिसके लिए उसको चुना गया है । अगर वह अक्ल जेब मे रखकर राजाजी की अक्ल कबूल करे तो कितना विश्वासघात होगा प्रजा के साथ ? वह प्रजा कहेगी कि "अरे, क्या तुझे यह समझ करके चुना था कि तू अपना सारा दिमाग राजाजी को अर्पण करेगा। तुझे हमने इस वास्ते चुना था कि तू पिछले युद्ध मे बहादुर साबित हुआ था और तूने हमको बचाया। तुझे अपना मददगार समझकर हमने सारी दण्ड-शक्ति तेरे हाथ मे सौंपी और तू भलामानुस ऐसे तत्वज्ञानी की बात सुनता है।"

लेकिन हम अपने मन मे सोचते है कि दूसरे देशो को इस तरह की सलाह देने के लायक हम है क्या ? मैंने कहा कि राजाजी मे त्रिविध शक्ति एकत्र हुई है, इस वास्ते इस प्रकार का उद्गार प्रकट करने के वह सब प्रकार से अधिकारी है, सारी दुनिया को वह बुद्धि दे सकते है और दुनिया नही मानती है, तो दुनिया का ही वह दुर्दैव है। लेकिन जिस देश के वह गिने जायेगे, क्या वह भी उन्हे इतना बल देता है ? क्या हमारे देश मे हमारी ऐसी भूमिका है कि पाकिस्तान की कुछ भी हालत हो, हम समझे कि वह हमारा वैरी नही है ? मै जरा दूसरी भाषा मे बोल रहा हू । अमरीका को लगता है कि उसकी तुलना तो रूस के साथ करनी है। तो जैसे उसके सामने रशिया है, वैसे हमारे यहा के लोगो के सामने पाकिस्तान है। इसलिए उस हालत मे हम लोगो को क्या लगता है कि पाकिस्तान अपनी सेना बढा रहा है तो हम अपनी सेना घटाये, उधर खूब अवकार बढ रहा है, इसलिए क्या यह जरूरी नही है कि एक सादी-सी लालटेन से अब काम नही चलेगा। तो अब जरा अहिंसा की जरूरत है और इस वास्ते हम अपनी सेना छोड दें ? पाकिस्तान ने जो काम किया है, अमरीका की जो मदद उसने मागी है, उसपर से हमको यह विचार सूझा कि क्योकि हमारे पडोसी इतने भयभीत हो गये है, इसलिए ऐसी हालत मे सारी दुनिया को, खास करके अपने पडोसी को, हमे निर्भय बना देना चाहिए। हम यह प्रस्ताव करते है कि अभी तक तो हम सेना पर साठ करोड रुपये खर्च करते थे, अब अगले साल दस करोड ही खर्च करेगे। क्या ऐसा करने की शक्ति हम रखते है ? नही रखते, तो यह शक्ति कब आयगी ? यह शक्ति आनी भी चाहिए या नही आनी चाहिए ? अगर आनी चाहिए तो फिर शीघ्र आनी चाहिए। देरी इस काम मे नही चलेगी। अपने देश को शीघ्र ही अहिंसा मे अग्रसर होना होगा। इस वास्ते जो लोग अहिसा की ऐसी व्याख्या करते है कि जो धीरे-धीरे चलेगी, उसका

नाम अहिंसा हो, तो यह व्याख्या वडी खतरनाक है।

इस बारे मे जरा सोचा जाय, क्योंकि इससे अहिंसा 'स्टेटस को' का बचाव करनेवाली बनती है । थोड़ी-थोडी प्रगति तो होने ही वाली है, चाहे आप करें या न करे। यह तो विज्ञान का युग है। ढकेलकर ही यहा प्रगति होती है और वही हमको प्रगति की तरफ ढकेलेगा। इस वास्ते अहिंसा की व्याख्या आज खतरे मे पडी है। यह हमारे देश के लिए सोचने का विषय है।

तीसरी वात यह है कि इस देश मे सत्याग्रह शब्द से बहुतो को डर लगता है। यह हमारे लिए चिंता का विषय है, क्योंकि जो मत्र हमने सीखा, जिसे हम नया मत्र कहते है, और जो दुनिया के लिए तारक-मत्र होगा, ऐसा भी हम कहते हैं, और यह भी हम कहते हैं कि सारे मानव के इतिहास मे अभी तक जो अनुभव आया, उस अनुभव के परिणामस्वरूप सामूहिक सत्याग्रह का जो एक मत्र मिला, उससे अहिंसा बलवती होगी। लेकिन इन दिनों तो सत्याग्रह शब्द से डर लगता है और लोग यहातक कहते है कि 'डेमोक्रेसी' मे, लोकसत्ता मे, सत्याग्रह के लिए स्थान नही। पर सत्याग्रह के लिए तो उस सत्ता मे स्थान नही होगा, जिस सत्ता मे हर निर्णय 'यूनानिमस' एक राय से ही हो। सबकी सम्मति से निर्णय हो, ऐसी जहा समाज-रचना होगी, वहा स्वतन्त्र सामूहिक सत्याग्रह की जरूरत नही होगी। उस समाज मे पुत्र के खिलाफ मा का सत्याग्रह होगा और पुत्र का मा के खिलाफ सत्याग्रह हो सकता है। एक पडोसी के खिलाफ दूसरे पडोसी का सत्यागह होगा। खिलाफ का अर्थ हिंसा के अर्थ मे खिलाफ नहीं, मददगार है। उसके शोधन के लिए जो किया जायगा, प्रेमपूर्वक और त्याग से जो किया जायगा, उस अर्थ को प्रकट करने के लिए अब भी खिलाफ शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। तो पडोसी पर विशेष प्रकार से प्यार प्रकट करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह पडोसी के साथ होगा, परन्तु सामूहिक सत्याग्रह के लिए गुजाइश नही रहेगी। यह बात समझ मे आती है। इस वास्ते हम बार-बार कहते है, यह 'डेमोक्रेसी' कुछ दोषमय है और उसमे अहिंसा का माद्दा कुछ ही हद तक आता है, ज्यादा नही आता। इसलिए अपने सारे फैसले सर्वसम्मति से करने की अपनी तैयारी करनी चाहिए। पर इस विषय मे हमारे साथी भी हमसे कहते है कि भाई, इससे व्यवहार कैसे चलेगा? यह वस्तु कुछ नई-सी है और इस वास्ते इसमे काफी सोचना पडेगा। अपने जीवन को और अपने दिमाग को ऐसा बनाना पड़ेगा कि जिससे सर्वसम्मति से काम होते हुए भी काम अग्रसर हो। समाज इस तरह से सोचने लगे। कार्य-हानि न होते हुए सबके साथ कैसे काम किया जाय, यह समाज सीखे। यह सारा करना पडेगा। उसमे कुछ मुसीबते जरूर हैं, लेकिन क्योंकि इसमे मुसीबते है, इस वास्ते अगर हम उसपर नही सोचेगे, तो हम समझते हैं कि जो एक नया विचार प्रकट किया जा रहा है कि "डेमोक्रेसी मे सत्याग्रह के लिए स्थान नही", वह नया मत अहिंसा के लिए

खतरे का है। इस बारे मे निर्णय हमारा होना चाहिए।

वह जो सत्याग्रह के लिए भय पैदा होता है, उसका एक कारण मैं अभी कहूगा और वह कारण अहिंसा के लिए एक खतरा है। वह यह है कि सत्याग्रह की एक निषेधात्मक (निगेटिव) व्याख्या मनुष्यो के मन मे स्थिर हो गई है। सत्याग्रह याने अडगा लगाने का एक प्रकार, दबाव लाने का एक प्रकार। इतना ही अर्थ इसका अभी लोगो के मन मे है और इस वास्ते कुछ लोगो को इसका आकर्षण भी बहुत ज्यादा है। हम जैसे सत्याग्रह शब्द का एक डर देखते हैं, वैसे ही इस शब्द का आकर्षण भी देखते हैं। लोग कहते है कि बाबा कबतक जमीन मागता फिरेगा? आखिर कभी वैष्णवास्त्र भी निकालेगा या नही? ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, आदि मान लिये कि हिसा के हैं, लेकिन वैष्णव का अस्त्र, जो विष्णु का है, वह तो अहिंसा का रामबाण है? तो वह भी निकालेंगे या नही? ऐसा हमसे बार-बार पूछते हैं। तब समझाना पडता है कि वह जो चल रहा है, इसमे सत्याग्रह का ही रूप प्रकट होता है। यह तो हमारे लिए सोचने की बात है। सत्याग्रह, जो गाधीजी के जमाने मे किये गए, वे यदि सत्याग्रह के आदर्श हैं, ऐसा समझकर अगर हम चले, तो हम गलती करेंगे। उनका एक ज़माना था, उनकी एक परिस्थिति थी। उस परिस्थिति मे कार्य को 'निगेटिव' (निषेधात्मक) करना था। परन्तु फिर भी उस कार्य के साथ-साथ कितनी ही रचनात्मक और विधायक बातें उन्होने जोड दी, क्योकि उनकी प्रतिभा उनको कहती थी कि एक निषेधात्मक कार्य करते हुए भी अगर हमने विधायक बुद्धि नही रखी, तो जहा वह कार्य सपन्न होगा, वहा और कई खतरे पैदा होंगे। इस वास्ते उस कार्य के साथ-साथ काफी रचनात्मक प्रवृत्तिया उन्होने जोड दी। परन्तु लोग उनसे बार-बार पूछते थे कि यह चरखा क्यो चलाना है, हमको जरा समझा तो दीजिये। अग्रेजो को यहा से भगाना है, तो उसके साथ चरखे का सम्बन्ध कहा से आने लगा, यह समझ मे नही आता। लेकिन गाधीजी के नेतृत्व के साथ स्वराज्य का सम्बन्ध है और इस वास्ते इस बात को कबूल करो, यों कहकर लोग उसको कबूल करते थे। लेकिन बार-बार पूछते थे कि इस कार्य के साथ इसका सम्बन्ध क्या है? जवाब मिलता था कि जनता मे जागृति हुए बगैर कैसे काम चलेगा? अग्रेजो पर इसका प्रभाव कैसे होगा? क्या ऐसे ही, केवल शब्द से? इस वास्ते अपने रचनात्मक कार्य से अपने विचारो को फैलाना चाहिए और जन-सपर्क होना चाहिए। जन-सपर्क के लिए हमे एक अच्छा मौका इसके कारण मिलता है। थोडी उनको राहत मदद मिलती है। हमारी उनके साथ सहानुभूति इसका दर्शन उनको मिलता है और उनकी ही सहानुभूति हमको मिलती है। इस तरह हमारे राजनैतिक कार्य के पीछे एक नैतिक बल खडा होता है, इस तरह लोगो को समझाना पडता था।

परन्तु यह जमाना ऐसा था कि उसमे लोगो के सामने जो कार्य करना था, वह

अभावात्मक था। इस वास्ते जो सत्याग्रह इस जमाने मे हुए, वे सत्याग्रह के अन्तिम आदर्श थे, ऐसा हमको नही समझना चाहिए। यह वात समझनी चाहिए कि जहा लोक-सत्ता आगई, वहा सत्याग्रह का अस्तित्व अगर हम मानते है तो उस सत्याग्रह का स्वरूप भी कुछ भिन्न होगा। यह नही कि लोकसत्ता मे सत्याग्रह के लिए अवकाश नही रहेगा। ऐसा जो माना गया, वह तो विल्कुल ही गलत विचार है। पर यह भी विचार गलत है कि जो निगेटिव, अभावात्मक प्रकार के सत्याग्रह उस जमाने में किये गए, उनके लिए डेमोक्रेसी मे वहुत ज्यादा गुजाइश है और उनका परिणाम लोकसत्ता मे वहुत ज्यादा प्रभावशाली होगा। लोकशाही मे, लोकसत्ता मे, जिस सत्याग्रह का प्रभाव पडेगा, वह सत्याग्रह अधिक प्रभावशाली होना चाहिए, अर्थात् अधिक विधायक होना चाहिए। उस दृष्टि से भी हमको अपने आन्दोलन की तरफ देखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का कार्य हम एक तरीके से कर रहे है, जो अहिंसा का तरीका है, परन्तु अहिंसा मे वह एक ही तरीका है, सो वात नही। दूसरे भी तरीके है। दूसरे इससे वलवान तरीके हमको मिल सकते है और उनका हम इस्तेमाल कर सकते है। अगर इस तरीके का पूरा उपयोग कर लिया हो और उसका नतीजा पूरा देख लिया हो तो हमको सोचने का मौका मिलेगा। आज का हमारा जो सत्याग्रह चल रहा है, भूमिदान मागने का, लोगो को समझाने का, गरीवो से जमीन लेने का, सतत घूमने का, इत्यादि, यह सारा एक विशाल सत्याग्रह है, रचनात्मक सत्याग्रह है। परन्तु इसके आगे सत्याग्रह का इससे और भी कोई वलवान स्वरूप प्राप्त हो सकता है, या नही हो सकता है, इसका सशोधन करने का मौका मिलेगा—अगर इस काम मे हम पूर्ण शक्ति लगाये और थोड़े समय मे उसका नतीजा क्या आ सकता है, उसे देखे। अगर इसको हम न आजमाये, पूरी ताकत इसमे न लगाये और उस हालत मे १९५७ साल तक निकल जाय, तो आगे को कदम क्या उठाया जाय, इसका सशोधन करने के लिए हम पात्र ही नही रहेगे, अपात्र साबित होगे और उस हालत मे हमने जो सारा कार्य आरम्भ किया, उसको आगे वढाने की शक्यता कम रहेगी, ऐसा उसका अर्थ होगा। इस वास्ते हम सव लोगो पर यह जिम्मेदारी आई है कि अव समय थोडा है तो इस थोडे समय मे यह जो तरीका अभी अख्तियार किया जा रहा है, उसमे पूरी ताकत लगा करके उससे क्या कार्य वनता है, उसका अन्दाजा लिया जाय। मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि यह वहुत ही समर्थ तरीका है और इसमे अगर हम शक्ति लगाते है तो हमारा कार्य नि:सशय निश्चित मुद्दत मे समाप्त हो सकता है। यह मैने विहार मे देखा, यहा उडीसा मे भी यह देख रहा हू और आश्चर्य की वात है कि यह मैने वगाल मे भी देखा। लोग कहते थे और आज भी कहनेवाले लोग है कि वगाल मे तो भूदान के लिए गुजाइश ही नही है। भूदान की जरूरत ही वहा नही है। वहा काम हो चुका है। ३० एकड का सीलिंग होगया, कानून हो चुका। अव उसके आगे इसकी

जरूरत ही मिट गई है। बाबा क्यो नाहक घूमता है ? ऐसा भी बोलनेवाले लोग हैं और वे लोग सत्ता के केन्द्रो मे है, इस वास्ते उनके पक्ष मे कुछ व्यावहारिक बल है, ऐसे कुछ लोग वहा जरूर हैं। लेकिन जहातक आम जनता का सवाल है, कार्य-कर्त्ताओ का सवाल है, हमने देखा कि वे सारे इसके लिए तैयार है। और गाव-गाव जाकर लोगो को समझानेवाले अगर मिल जाय, तो हमारा दावा है कि बिहार मे भूदान का पूरा चित्र हमारी आखो के सामने प्रत्यक्ष हो सकता है। पर मान लीजिये कि पूरी शक्ति लगाने पर भी वह कार्य नही हुआ तो हम इस लायक तो बनेंगे और समर्थ बनेंगे कि इससे आगे का कदम क्या उठाया जाय, इसका विचार कर सके। लेकिन हम विचार नही कर सकेंगे, विचार हमे नही सूझेंगे, न हम विचार करने के लिए पात्र रहेंगे—अगर हमने पूरी ताकत नही लगाई। तो यह कार्य पूरी ताकत लगा करके १९५७ के पहले समाप्त होना चाहिए। इन दो मे से एक वस्तु होनी ही चाहिए। लेकिन पूर्ण शक्ति न लगाते हुए १९५७ तक अगर हम काय करते रहे तो हमारे हाथ मे कोई निर्णायक शक्ति नही रहेगी। इस वास्ते सब भाइयो को अब सोचने का मौका है कि इस वक्त हमारी जो बिखरी हुई ताकतें है, वे हमको इस काम मे लगानी चाहिए या नही लगानी चाहिए। कुछ लोगो के मन मे विचार आता है और वह भी एक चिन्तनीय विचार है कि आखिर हम यहा आये किसलिए ? जैसा हमने आरम्भ मे कहा, हम इसलिए आये है, विरोधी विचार-धाराए हो तो भी बहस करें, चर्चा करें। कुरान मे यह कहा है कि भक्तो का यह लक्षण है कि वे आपस मे सलाह-मशविरा करते हैं। तो सलाह-मशविरे के लिए ही हम इकट्ठे हुए है। इस वास्ते विचार करने के लिए दूसरा पक्ष भी सामने रखना चाहिए। वह पक्ष यो कहनेवाला है कि स्वराज्य के बाद हम ऐसे एकागी बनें तो नही चलेगा। स्वराज्य के पहले अगर हम एकागी नही बनते तो नही चलता, क्योंकि तब एक ही 'फ्रंट' (मोरचा) हमारे सामने रहना चाहिए था और वह यह कि परकीय सत्ता को यहा से हटाना। इसलिए सारी शक्ति एकागी याने एकाग्र बनानी जरूरी थी। लेकिन अब जबकि स्वराज्य हाथ मे आया है, उसको चलाना है, समाज का सब प्रकार से भला सोचना है, इस वास्ते सर्वांग विचार होना चाहिए और किसी एक अग मे अगर हम सारी शक्ति लगाये तो यह गलत है। इस विचार मे कोई सार नही है, पर हमारे लिए सोचने की बात इतनी ही है कि वे जो बहुविध कार्य है, उन्हे करने की जिम्मेदारी हमपर किसने डाली ? हम, जोकि चुनाव मे खडे भी नही हुए, न लोगो से वोट मागा और न जिनको लोगो ने वोट दिया, उन पर यह जिम्मेदारी किसने डाली कि सारे हिन्दुस्तान की समस्या पर विचार करें ?

वह तो उन लोगो पर जिम्मेदारी डाली गई है, जिन लोगो ने चुनाव मे लोगो से मत प्राप्त किये और जो सत्ता चला रहे है। उनपर यह जिम्मेदारी है कि वे सर्वांग

सोचे और सब तरह से अपना वजट वनाये, अपना कार्यक्रम वनाये और भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे हलचल करते जाय। अगर ऐसी जिम्मेदारी चलानेवाला, उठानेवाला एक वर्ग मौजूद है और लोगो का वह विश्वस्त है, हमको मानना चाहिए कि उसमे बहुत सज्जन लोग भी है, तो फिर उस हालत मे वह जिम्मेदारी हमपर कैसे आती है ?

एक भाई ने कहा, "कलकत्ता मे रोजमर्रा गाय का कत्ल होता है। मै नही जानता कि ईसामसीह की कृपा से इतवार के दिन छुट्टी रहती है या नही—परन्तु रोज वहा गायो का कत्ल होता है, तो 'दूध सप्लाई' शहरो को कैसे करना है, इसका जरा आप हमको नमूना दिखा दीजिये।" हम पूछते है कि यह नमूना वताने की जिम्मेदारी हमपर कैसे आई ? क्या हम वेकार है ? हमको कोई काम नही है ? क्या यही काम था ? अगर यह होता, तो कोई कह सकता कि देखो, खादी के जरिये कैसे मसला हल हो सकता है, यह जरा हमको दिखाइये, यह पूछ सकता है। इस वास्ते पूछ सकता है कि एक तरीका मौजूद है। कपडे की समस्या मिल से कैसे हल हो सकती है, इसका एक तरीका मौजूद है। इस तरीके के विरुद्ध अगर हम बोलते है तो लोग हमसे पूछेगे कि आप वताइये कि किस तरह से खादी से मसला हल होगा ? यह कहने का उसका अधिकार है। लेकिन क्या शहरो को दूध सप्लाई करने का यह सुव्यवस्थित तरीका है कि गाय कत्ल की जाय ? एक साल गाय ने दूध दे दिया और जहा दूध कम हुआ, वहा उसको कत्ल खाने मे भेज दिया जाय, ऐसी एक योजना है। जैसे मिल की भी एक योजना है, कपडा सप्लाई करने की यह एक योजना है वैसे शहरो को दूध सप्लाई करने की यह एक योजना है। एक सुव्यवस्थित योजना, साइंटिफिक, वैज्ञानिक, यत्र-युगानुकूल है और हम उसका विरोध करते है, तो फिर हमसे पूछा जायगा कि आप तो ग्रामोद्योगी लोग है, हमको ऐसी योजना वता दीजिये कि गाय का कत्ल किये वगैर कलकत्ता को दूध कैसे सप्लाई किया जाय।

लेकिन क्या यह भी कोई योजना है ? यह तो विल्कुल अचिंतन है, चिन्तन ही नही है। इस विषय मे जो चली आई वात, वह चल रही है। लेकिन हमारे सामने लोग ऐसी बाते रखते है और हममे ऐसे भोले-भाले लोग है, जिनको थोडा गो-सेवा का ज्ञान भी है। उनको लगता है कि हा भाई, अगर यह हम दिखा दे, तो अच्छा। एक भाई ने कहा कि हमने थोडा वर्धा मे दिखा दिया है। पर वर्धा मे दिखाने से नही चलेगा तो कहा दिखाना पडेगा ? तो चलो दिल्ली, दिल्ली मे दिखाना पडेगा। हर वात हमको दिल्ली मे दिखानी पडेगी। इस तरह से अगर हम सोचने लगेगे कि स्वराज्य के ये सव विविध कार्य सोचने की हमपर जिम्मेदारी है तो इसका मतलब यह होता है कि हम सर्व-सामान्य सेवा करेगे। परतु जिस प्रण से हमने यह कार्य उठाया है कि अहिंसा को हम सर्वोपरि बनायेगे और अहिंसा का राज्य होगा, यह

जो हमारी प्रतिज्ञा है, उसके योग्य वह काम नही रहेगा। इस वास्ते हम चिंतन मे व्यापक जरूर रहें, परन्तु एक कार्य एकाग्र होने की इस वक्त जरूरत है।

हमको इस काम मे अधिक-से-अधिक ताकत लगाने की जरूरत है। इसपर भी आप लोगो को सोचना चाहिए। कुछ लोग कहते है कि अव पार्लमेंट मे, असेंवली मे, हमारे लोग है। वे कहते है कि हमारी आवाज कुछ ज्यादा कर नही पाती। कुछ अल्पमत मे है, कुछ वहुमत मे है। जो वहुमत मे है, वे चावुक के नीचे है और जो अल्पमत मे है, वे तो अल्प है ही। उनके वास्ते चावुक की भी जरूरत नही है। उनके लिए चना भी नही है। सिर्फ तवेले मे ही है। तो जो दोनो प्रकार के लोग पार्लमेंट मे जाकर बोलते है कि हम कुछ अच्छी वात वहा रख सकते है और अपनी आवाज हमें सरकार मे पहुचाते है, तो क्या सरकार इतनी बहरी वन गई है कि वाहर सभा मे कोई वात वोलेगा तो वह नही सुनेगी और पार्लमेंट मे जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी? क्या वहा वोलेगे तभी आवाज सुनेंगे, नही तो नही सुनेंगे? क्या आप यह समझते है कि हम एक काम करते चले जाय, जन-समूह मे पैठे, जनता की ताकत बनती जाय और उस हालत मे हम कही व्याख्यान दे देते है—प्रार्थना-सभा मे समझिये—उसका जो असर होगा, उससे ज्यादा असर हम यदि पी एस पी मे दाखिल हो जाय, या काग्रेस मे दाखिल हो जाय और फिर वहा जाकर एक व्याख्यान दे दे, पार्लमेंट मे दे दे, तो ज्यादा असर होगा? यह सोचने की जरूरत है कि अपना मत-प्रदर्शन करने के लिए समुचित स्थान कौन-सा है? हम क्या इन नौकरो के पास जाकर अपनी कहानी रोयें? उनके मालिको के पास ही हम क्यो न पहुचे? और मालिक कौन है? हिंदुस्तान मे आज मालिक कौन है? मालिक है जनता। तो सीधे हम मालिको के पास जाय और अपनी वात रखे, उसका असर नौकर पर होगा और वह काम कर लेगा। हम वहा नौकरो के पास जाते है तो वे कहते है कि 'आप कहते तो है, लेकिन लोकमत क्या है?' अगर उनको हम यह समझाने जाय कि भाई, खादी के पक्ष मे मिलो को वद करो, तो पूछते है, लोकमत क्या है? लोकमत अगर वैसा हो तो हम कर सकते है, पर इसके लिए लोकमत अनुकूल नही है। इस तरह हर वात मे वे लोकमत की दुहाई देगे और हमारा-आपका विचार अच्छा है, यह भी साथ-साथ कहते जायगे। हमारे विचार को गलत कहते तो और भला होता, जरा चर्चा भी चलती। पर जव कहते है कि आपका विचार अच्छा है तो वात खत्म हो गई। हमारा मुह वद हो गया और उनका तो हाथ चलता नही, क्योकि वे कहते है कि हमारा हाथ तो यत्र मे फसा है और उस यत्र को चलाने के लिए तो जनता का हमको मेंडेट (आदेश) है। तो हमारी जवान वहापर कुण्ठित ही है। इस वास्ते हमारी जवान, हमारी बुद्धि, हमारी शक्ति, लोकमत तैयार करने मे ही हमारे हाथ की है। इस वास्ते इस वक्त हमारी माग है कि हमारे जो भाई इधर-उधर विखरे हुए है, वे अगर कोई ऐसी

कुजी की जगह है, कुछ कुजी की जगह होती है, जहां से कान पकड़ा जाता है, जहा उनको उम्मीद है कि वहा रह करके वे इस काम को वढावा दे सकते है, तो वे भले ही वही रहें, परन्तु जो दूसरे है, जिनका हिसाव केवल एक, दो, तीन, चार ऐसी गिनती में है उनसे हमारी प्रार्थना है कि आप सवकी बुद्धि और शक्ति वहा काम मे नही आयेगी। इधर अगर देहात मे आयेंगे तो आपका खूव जय-जयकार होगा, स्वागत होगा, सम्मान होगा और फूल-मालाए भी आपको ज्यादा मिलेगी। लोगो का वहुत उत्साह वढेगा। लोग राह देखते है कि वे लोग यहा आयेगे तो कितना अच्छा होगा और वे प्यार से स्वागत करेंगे। ताकत वढेगी। यह हमारी माग है।

कुछ लोगो ने एक नया तरीका निकाला है। वह भी सोचने लायक है।

कहते है कि जो सात्विक लोग होते हैं, वे आजकल के चुनावो को उतना पसद नही करते। ऐसा है तो सोचने की स्फूर्ति होनी चाहिए कि इस चुनाव के तरीके को हम कैसे वदलें, जिससे कि सात्विक लोगो को इसमे भाग लेने की प्रेरणा हो। पर इस तरह वे नही सोचते है। वे समझ तो गये है कि सात्विक लोगो को चुनाव मे पडने की रुचि नही होती है; पर अव चुनाव का तरीका वदल नही सकते, क्योकि वह तरीका पश्चिम से आया है। उसके वदले मे दूसरा तरीका जवतक नही सूझता, तबतक वह तरीका चालू रहेगा। लेकिन उन्होंने एक वात सोची है। वे मुझसे तो नही पूछते, परन्तु हमारे साथियो से पूछते है कि क्या आप काग्रेस महासमिति मे आना पसद करेंगे? यानी हम आपको वह तकलीफ नही देते, जोकि सात्विको को सहन नही होती। चुनाव मे आकर हमलोगो के सामने खडे होकर, चुन आने की उस तकलीफ से हम आपको वचाना चाहते है। लेकिन आप अगर आल इडिया काग्रेस कमेटी मे दाखिल होना पसद करे तो हमारी इच्छा है कि आप वहा जाइये और अपने सलाह-मशविरे का लाभ हमको दीजिये। तो फिर हम पूछते है कि हमे काग्रेसमैन तो नही वनना पडेगा। कहते है, नही, काग्रेसमैन तो होना पडेगा, दस रुपया दक्षिणा भी देनी पडेगी।

भाइयो, ये हमारे मित्र ही है, जो इस तरह से करते है। हम उनको समझाते है कि इसमे आप क्या भलाई देखते है। अगर उसमे भलाई है तो हम उसको कवूल करने को राजी है। इधर तो यह हालत होती है कि ये लोग हमेशा डरते ही रहते है। कहते है कि लोकशाही के लिए एक अच्छा-सा विरोधी पक्ष भी होना चाहिए और यह पक्ष भी कमजोर हो जाय तो भी डरते है। इस 'डेमोक्रेसी' ने हमारा दिमाग इतना कमजोर वना दिया कि वह कुछ सोच ही नही सकता, फेर मे पड गया है। अगर आपको यह डर महसूस होता है तो विरोधी पक्ष के लोग अपना दिमाग वदले विना ही आपके पास आ जाय, तो क्या वह आपके लिए या समाज के लिए अनुकूल है, इसे जरा आप सोचें। हम समझते है कि यह एक ऐसा तरीका

है, जिससे सात्विक लोग निस्सत्व बनेगे। सात्विक लोगो मे यह हिम्मत होनी चाहिए कि वे सत्व-गुण का प्रभाव ऐसा बढाये कि चुनाव पर उसका असर हो और चुनाव दूसरा रूप ले। या उनमे यह हिम्मत होनी चाहिए कि हम उस चुनाव को खत्म ही कर देगे और हमको उसमे जाने की जरूरत नही पडेगी या फिर जो-जो चुनकर आयेगे, उनपर हमारा असर रहेगा। लेकिन जब इन दो मे से एक की भी हमारी हिम्मत न हो और कोई हमसे कृपा करके कहे कि आप ऑल इडिया काग्रेस कमेटी मे आइयेगा, हम आपको लेने के लिए राजी है और हम भी जाना चाहे तो हम समझते है कि हम कुछ मोह-चक्कर मे है। यह बिल्कुल खुले विचार आज हम आपके सामने रखना चाहते है और इसके साथ यह भी कहना चाहते है कि अपने विचार के लिए हम बिल्कुल आग्रह नही रखते है। पी एस पी मे भी हमारे मित्र है, काग्रेस मे हमारे मित्र है और रचनात्मक सस्थाओ मे भी हमारे मित्र है। हमारी हालत इसलिए मुश्किल हो जाती है कि जो हमारी दुश्मनी करना चाहते है, वे भी हमारे मित्र है।

कुल दुनिया ही मित्रो से भरी है, इस वास्ते हमारा मामला और कठिन हो जाता है। परन्तु वह आसान भी होता है, इस वास्ते कि हम खुले दिल से विचार रखते है और हमको आग्रह तो है नही, इसलिए चर्चा के लिए एक मामला मिल जाता है। आप इसपर भी चर्चा करियेगा कि हमारी स्थिति क्या होनी चाहिए ? हमने आरभ मे ही कहा है कि कोई भी राजनैतिक पक्ष, जोकि लोकशाही को मानता हो, हिंदुस्तान मे जबतक उसका अपना विचार कायम है, तबतक वह कम-जोर बने, इसमे देश का भला नही है। पर अगर काग्रेसवाले परिवर्तित हो जाय तो उसमे देश का नुकसान नही है। अगर पी एस पी के लोग अपने विचार को गलत समझे और इस वास्ते उनका पक्ष टूट जाय तो उसमे भी देश का नुक-सान नही है। लेकिन ये दोनो पक्ष या और भी कोई पक्ष, जो लोकशाही को मानते है, वे जबतक अपने विचारो को मानते रहे, तबतक वे कमजोर पडे, इसमे देश का हित है, ऐसा हम नही समझते। वे पक्ष बलवान बने रहे, इसीमे उनका हित है, ऐसा हमारा मानना है। तो किसीको इस अर्थ मे कमजोर नही बनाना चाहते। लेकिन हम यह पूछना चाहते है कि हम कमजोर पडे, इसमे भी किसीका हित है क्या ? याने मान लीजिये कि कल विनोबाजी राजी हो जाय और कहे कि ठीक है, मै काग्रेस-मैन बनता हू। काग्रेस-मैन बनने मे बहुत ज्यादा खोने का तो कुछ नही है। उसमे इतना ही सवाल आता है कि अपना जो कुछ विश्वास है उस विश्वास को एक हद तक वहा अवकाश है, एक हद तक नही है, उसकी उपेक्षा करके मनुष्य वहा जा सकता है। हम जानते है कि काग्रेस मे भी सज्जनो की सगति मिल सकती है और जैसा कि शकररावजी ने कहा, यहापर सत्सग है, वैसे वहा भी बहुत सज्जन लोग है और वे वहा इकट्ठे होते है, तो वहा भी सत्सगति का लाभ मिल सकता

है। काग्रेस मे, प्रजा-समाजवादियो मे बहुत-से ऐसे सज्जन है तो उनमे से कुछ अश ऐसा है, जो हमे मजूर है और कुछ ऐसा भी अश है, जो हमे मजूर नही है। जो अश हमको नामजूर है, उसकी उपेक्षा करके जितना अश मजूर है, उसकी तरफ ध्यान देकर व्यावहारिक बुद्धि से, मान लीजिये कि हम काग्रेसमैन बन जाय, तो इसमे काग्रेस का भला है क्या, यह सोचने की बात है। हम समझते है कि इसमे देश का भला नही है, इसमे किसी का भला नही है। जो-जो भिन्न विचार के लोग हैं, वे अपने विचार मे कमजोर पडे, इसमे किसीका भला नही है, यह मुख्य वस्तु ध्यान मे रखकर हम सोचे तो हमारे जो लोग भिन्न-भिन्न पक्षो मे बटे है, जो भिन्न-भिन्न स्थानो मे है, उनको यह समझना चाहिए कि अब मौका आया है, जबकि हमको इस काम मे योग देना चाहिए। उधर रहते हुए अगर सेवा होती है, इस काम को खूब बढावा मिलता है, तब तो उस स्थान मे भले ही वे रहे। तब फिर उनके विश्वास मे बाधा नही आती है, परतु उनको अगर यह महसूस हो कि वहा जो सेवा आज होती है, जो इतनी प्रतिष्ठित नही है, जितनी कि इसके आने से होगी, अगर ऐसा उनको लगे तो हमारी माग है, सबके सामने माग है कि इसमे आप आ जाइये और हमको जरा मदद दीजिये।

जो कहना था वह कह दिया। एक ही बात अब जोडूगा। और वह एक छोटी-सी चीज है। बार-बार उसे हम दोहराते है, इस साल भी उसे दोहराना चाहते है। मीराबाई का भजन है—"**काचे तातणे रे मने हरिए रे बाधी जेम ताणे रहिए रे।**" एक कच्चा धागा है। उस कच्चे धागे मे मुझे बाधा है और वह इतना मजबूत है कि उसके बल से भगवान मुझे खीचता है, उसपर मै खिच जाती हू। ऐसा मीराबाई कहती है। गाधीजी ने कहा था कि देश के सामने एक उपासना चाहिए। देश के लिए बच्चा-बच्चा कहे कि हम कुछ तो करते है। छोटा बच्चा भी यह कहे कि देश के वास्ते मैने कुछ किया तब फिर भोजन किया। ऐसी कोई राष्ट्रीय उपासना चाहिए। धार्मिक-पाथिक उपासनाए तो होती है, जो भेद पैदा करती है, पर सारे राष्ट्र मे अभेद पैदा करनेवाली एक उपासना होनी चाहिए। इसका विचार करके उन्होने कातने की उपासना हमको बताई। यह इतनी आसान चीज है कि किशोरलालभाई जैसा मनुष्य, जो रोज सुबह समझता था कि शाम तक शायद मर जाऊगा और ऐसी हालत मे जिसके बीसो-पच्चीसो साल बीते, वह भी कुछ-न-कुछ पैदावार करता गया, उत्पादन करता गया। मेरा खयाल है कि अपने कपडे के लिए वह काफी सूत कातते होगे। तो ऐसे कमजोर, बीमार मनुष्य भी उत्पादक बने, ऐसा एक सुन्दर औजार उन्होने हमारे सामने रखा और कहा कि यह राष्ट्रीय उपासना चले। हमने गाधीजी की स्मृति मे एक गुडी, एक लच्छी ६४० तार की हरएक से मागी। वह एक निमित्त है। इसका प्रचार आप सब लोग क्यो नही करेगे, जरा इस बात पर सोचियेगा। पार्लमेंट के इतने

मैम्बर है, वे क्यो हमको एक-एक गुडी नही देते ? अगर यह वात है कि वे इसे मानते ही नही, शरीर-परिश्रम का तिरस्कार ही करते है, इस विचार को गलत समझते है, तो फिर वे न दे। परन्तु अगर इस विचार को वे गलत नही समझते तो कुल मेम्वरो से क्यो न हमको एक-एक लच्छी मिलनी चाहिए ? और सारे देश मे हम ऐसा वातावरण क्यो न फैला दे ? छोटी-सी बात है, परतु यह वहुत शक्तिशाली होगी, ऐसा हमको लगता है। हमारी प्रार्थना है कि आप सव लोग इस बात को फैलाये और जितने हमारे लोग भिन्न-भिन्न पक्षो मे है, सब अपने-अपने पक्षवालो को समझाये कि क्यो नही वे इस वात को उठाते ? इसमे क्या गलती या दोप है ? सारे पक्षवाले अगर यह करे कि एक-एक गुडी गाधीजी की स्मृति मे सवको देनी है तो देश मे एक भावना पैदा होगी, जिसका वडा लाभ मिलेगा।

सातवा सर्वोदय-सम्मेलन,
जगन्नाथपुरी, २५ मार्च, १६५५

७ : : कलियुग नहीं, कृतयुग

आज हम आपके सामने अत्यत नम्र होकर आये है। जव ऐसे समूह के सामने वोलने वैठता हू तो ऐसा महसूस नही होता कि मै वोल रहा हू। लेकिन यह तव होता है, जव चित्त एकाग्र होता है। जहा एकाग्रता नही होती है, वहा जो व्याख्यान होता है, वह व्यक्तिगत होता है और व्यक्तिगत व्याख्यान पर हमारा ज्यादा विश्वास नही है। जव समाधि लगती है, तभी हम कहने लायक चीज कहते है।

इस वक्त हमे नम्रता की सख्त जरूरत है। हम ऐसे मौके पर, ऐसे स्थान मे आ पहुचे है कि यहा हमारा काम नम्रता से ही वढ सकता है। इस वास्ते हम सब कार्यकर्ताओ की ओर से भगवान की नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर लेते है।

इस साल भूदान के काम को अपेक्षा से अधिक यश आया है। हमे इसका न कोई आश्चर्य है, न इसमे हमारा कर्तृत्व है। जिस काम के लिए परमेश्वर का आशीर्वाद होता है, वह काम ऐसे ही आगे वढता है। भूदान के लिए सवसे वडी घटना इस साल जो हुई, वह यह है कि वुद्धदेव की जयती का उत्सव इस साल हुआ। हम चाहते है कि हमारा काम एक निश्चित मुहूर्त मे, एक स्पष्ट रूप लेकर, लोगो के सामने प्रकट हो। उसके लिए सबसे अनुकूल घटना बुद्ध भगवान का स्मरण है। हमारे देश के इस महापुरुष का स्मरण कुल दुनिया ने किया। हम समझते है, जिन लोगो ने भूदान का नाम सुना होगा और जिन लोगो ने भूदान का नाम नही सुना होगा और वुद्ध भगवान का स्मरण किया होगा, उन्होने भूदान

को आशीर्वाद दिया। बुद्ध ने दुनिया को जो शिक्षा दी, वह सर्वप्रथम हमारे देश को दी। उसे उठाने की जिम्मेदारी सबसे पहले हमारे देश की है और हम लोगो ने उनका अवतारी स्वरूप पहचानकर उनके विचार को पूर्ण मान्यता दी है। आज उन्हीका अवतार चल रहा है। हम अपने हर धर्म-कार्य के और सकल्प के आरभ मे 'बुद्धावतारे' कहते है, याने हमारा आज का जीवन उनके मार्गदर्शन मे चलना चाहिए, ऐसा हम चाहते है और आप जानते है कि इस वक्त रशिया ने अपना सैन्यभार कुछ कम करने का सोचा है। हम नही जानते कि ईश्वर की प्रेरणा किस दिशा मे, कैसे काम करती है। हम इतना जानते है कि उसकी प्रेरणा हमारे काम के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसलिए हमने कहा कि जिन्होने बुद्ध भगवान् का स्मरण किया, उन्होने हमारे काम को आशीर्वाद दिया। यह हमारे भूदान के काम के लिए बहुत बडी ताकत है।

हमने बहुत नम्रता से दावा किया था और प्रथम उच्चारण उसी दिन किया था, जिस दिन बुद्ध भगवान् की जयती थी। हम लखनऊ मे थे। हमने कहा था, बुद्ध भगवान् का धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य आगे चलाने की हम कोशिश करेगे। बुद्ध भगवान् ने जो प्रेरणा दी, उसके कारण ही बिहार का काम आगे बढा, यह हमने अपनी आखो से देखा। एक दिन बिहार मे हमे एक लाख एकड जमीन मिली थी। वह बुद्ध-जयती का दिन था। एक दिन हमने सकल्प किया था कि गया जिले मे एक लाख एकड जमीन हासिल करेगे। वह प्रेरणा बोधगया मे हुई, जो बुद्ध भगवान् का स्थान है। उसी प्रेरणा की स्मृति मे समन्वय-आश्रम का छोटा-सा, प्रयत्न भी शुरू किया। हम आशा करते है कि हिंदुस्तान के लोग इस स्मृति से प्रभावित होकर भूदान के काम मे पूरी तरह से जोर लगायेगे। यह प्रेरणा काम कर रही है, उसका अनुभव हृदय मे प्राप्त कर लेना है। वह प्राप्त करके काम करना है।

दूसरी घटना इस आदोलन मे हुई है, वह हमारे लिए बहुत ही आशादायक है, और वह है—व्यापक परिमाण मे ग्रामदान, जो उडीसा में हुआ, जिससे जमीन की मालकियत की जडे हिल गई और ग्रामराज्य किस तरह बनाया जा सकता है, यह सोचने के लिए सामग्री मिली और ग्रामराज्य की कल्पना करने के लिए कुछ चितन भी इस साल हुआ। एक भाई ने हमे पत्र लिखा कि अबतक आपके इस आदोलन की तरफ कुछ शका की दृष्टि से देखते थे, पर जबसे व्यापक परि-माण से ग्रामदान शुरू हुआ, तबसे विश्वास हो गया कि यह आदोलन क्रातिकारी है। उडीसा के बाद हमने आध्र मे प्रवेश किया, जहा बहुत-से हमारे कम्यूनिस्ट भाई काम करते है। हमे कहने मे खुशी होती है कि बहुत-से हमारे कम्यूनिस्ट भाई इसमे काम करने के लिए तैयार हुए। कुछ लोग इसमे भय देखते है। हम इसमे कोई भय नही देखते है, क्योकि हमारे मन मे आत्मविश्वास है। जिसके मन

मे आत्मविश्वास नही होता है, उसे भय मालूम होता है। परन्तु हम इससे बहुत ही उत्साहित होते हैं कि वे भाई हमारे साथ आये। हम उनका स्वागत करते हैं। ग्रामदान मे एक नया विचार ही खुल गया है। सिर्फ भारत के सामने ही नही, बल्कि दुनिया के सामने भी एक मार्ग खुल गया है। यह दूसरी घटना है, जो बहुत ही आशाजनक है।

तीसरी बात यह है कि हमारे हाथ मे वितरण की कुजी आई है। कुछ लोग पूछते हैं कि आपने बहुत जमीन हासिल की, लेकिन उसका वितरण नही किया। हम कहते हैं कि जमीन प्राप्त करने की कुजी हमे एकदम हासिल नही हुई है, वह धीरे-धीरे हमारे हाथ मे आई है। उसी तरह जमीन के बटवारे की कुजी पहले हासिल नही थी, अब हासिल हुई है। हमने कहा था कि हिन्दुस्तान की कुल जमीन का बटवारा एक दिन मे करना है और वह एक दिन लाने के लिए हमे कोशिश करनी है। कुल गावो का बटवारा एक ही दिन मे हो सकता है। जैसे हम सुनते हैं और अनुभव भी होता है कि एक ही दिन मे कई प्रातो मे बारिश होती है और कुल जमीन पर हो जाती है। बारिश एक-एक गाव की जमीन भिगोकर आगे नही बढती, वह एकदम कुल जमीन पर बरसती है। इससे बेहतर उपमा सूर्यनारायण की है। उसके उदय से एक ही समय सारे घरो मे प्रकाश होता है। यह तो कुदरत की उपमा हुई। लेकिन मानव-समाज मे भी हम ऐसी उपमा हम देखते हैं। एक ही दिन मे हर घर मे दीवाली मनाई जाती है। सभी घरो मे दीपक जलते हैं। लोगो मे इसकी भावना पैदा हुई है और वह जिस तरह लोगो को मालूम हो गई है, उसी तरह मे एक दिन मे कुल जमीन का बटवारा होना चाहिए, हो रहा है और होगा। इसका प्रयोग करने की हिम्मत कुछ भाइयो ने की है। बिहार मे एक ही दिन मे सौ-दोसौ गावो की जमीन का बटवारा किया गया और उसमे हमारे भाई सफल हुए। किस तरह वह किया, यह वर्णन करने का यह समय नही है। इससे लोगो को विश्वास हो गया कि एक ही दिन मे कुल गावो की जमीन का बटवारा हो सकता है। यह असभव नही है। उसीका प्रयोग उडीसा मे हुआ। वहा सात-आठ-सौ ग्रामदान हुए। उसमे से चार-सौ ग्रामो मे जमीन बटी। दान की प्राप्ति मे जितनी मेहनत लगती है, उससे ज्यादा मेहनत बाटने मे है। लेकिन लोकशक्ति से यह कार्य हो सकता है, यह सिद्ध हुआ। इसलिए मैंने यह कहा कि यह कुजी हमारे हाथ मे आई।

भूदान की एक बडी खूबी यह है कि इसमे अखिल भारतीय नेतृत्व नही बनता, क्योंकि भूदान-आदोलन पैदल चलता है। इन दिनो कितने ही अखिल भारतीय नेता हुए। लेकिन बुद्ध भगवान् अखिल भारतीय नेता नही बन सके। केवल पाली भाषा मे वह बोलते थे और प्रयाग से लेकर गया तक घूमे। परन्तु उनका विचार विश्व-व्यापक होने लायक था। वह इसलिए फैला कि इस विचार के लायक उनका जीवन था। शिवाजी अखिल भारतीय नेता नही बन सके। सतत प्रयत्न करने के

बावजूद देश का छोटा-सा हिस्सा उनके हाथ मे आया। जनक्राति का जो कार्य होता है, वह एक स्थान मे बनता है और हवा के जरिये दुनिया मे जाता है। इस आदोलन की यह खूबी हमारे लिए बहुत मददगार है। पजाब के लोगो को पूरा विश्वास हो गया है कि बाबा चद दिनो मे हमारे प्रान्त मे नही आनेवाला है। अगर बाबा रेलगाडी से जाता तो एक महीने मे पहुचता, परन्तु मै पैदल यात्रा करता हू, इसलिए नेतृत्व स्थानिक ही होता है; बल्कि यह कहना चाहिए कि स्थानिक नेतृत्व नही बनता है, स्थानिक सेवकत्व बनता है, क्योकि हम सेवक बनकर लोगों के पास पहुचेंगे, तभी जमीन मिलेगी। नेता के नाते पहुंचेंगे तो जमीन नहीं मिलेगी। आज ही सुबह हम कहते थे कि हमारी ताकत इसीमे है कि हम अपने स्वामी के सेवक हैं। तुलसीदासजी रघुनाथजी को जगाने के लिए क्या करते थे? वह गाते थे, "जागिये रघुनाथ कुवर"। इसी तरह तमिल-भक्त भी गाते हैं। वे जगाने के लिए गायन गाते है, भजन गाते है। इस तरह प्रभु को जगाना है। लोक-हृदय मे जो प्रभु विराजमान है, उन्हे जगाने के लिए हम भक्त होकर जाते है तभी वह जागते है।

परतु इस साल जो कुछ हुआ, वह यह है कि व्यक्ति के सेवकत्व के बदले गण-सेवकत्व हो सकता है। आप लोग जानते है कि इन दिनो रशिया मे एक खोज हुई है। रशिया का जो उपकारकर्ता माना जाता था, वह उपकारकर्ता नही है, यह खोज हुई है। जिसके स्तुति-स्तोत्र से इतिहास के पन्ने भरे थे, उस इतिहास के बदलने की बात हुई। दुनिया के इतिहास मे इतना बडा भारी सशोधन पहला ही है। हमने अखबार मे पढ़ा था कि कुछ दिनो तक रशिया मे इतिहास नही सिखाया जायगा, नया इतिहास सशोधनपूर्वक लिखा जायगा और उसके बाद वह पढाया जायगा। याने 'मधेसाहबा' का रूपातर 'तबर्रा' मे हो गया। इस्लाम के दो पत हो गये, एक सुन्नी और दूसरा शीया। वहा कुछ खलीफा हो गये। उनकी स्तुति करना धर्म मानते है, वे मधेसाहबा है और जो निंदा करना धर्म समझते है, वे तबर्रा है। यह स्तुति और निंदा करने का दिन एक ही आता है। एक ही दिन, एक ही जगह पर, अगर वह चलेगा, तब तो झगडे और मारामारी होगी। इसलिए रशिया मे अबतक मधेसाहबा चलता था, अब तबर्रा चलेगा, ऐसा हमने कहा, याने एक नई खोज हुई। तालीम मे स्टालिन की स्तुति का विशेष महत्व नही। वह व्यक्तिगत विषय है। परन्तु वहा एक नई बात सूझी है, वह विशेष है। कहते है, अब कलेक्टिव लीडरशिप चलेगी—व्यक्ति-विशेष का नेतृत्व नही, गणनेतृत्व चलेगा। यह एक नया विचार रशिया मे निकला। उसी तरह भूदान मे गण-सेवकत्व की शोध हुई।

एक और भी उत्तम अनुभव आया। हमे भूमिदान तो मिलता था, पर लोग कहते थे कि सपत्तिदान मिलेगा या नही? जब सपत्ति मिली, तब इन लोगो का

सदेह मिटा। पहले तो भूदान के बारे मे भी ऐसा ही सदेह उनके मन मे था। सदेही मनुष्य के लिए एक सदेह जहा समाप्त हुआ कि वहा दूसरा शुरू होता है, यही कार्यक्रम होता है। पैगम्बर ने ऐसा लिखा कि सदेह करनेवाले लोगो को अगर स्वर्ग मे ढकेला जायगा तो भी वे संदेह करेंगे कि यह स्वर्ग है या नर्क ! इसलिए सदेह होता है कि जमीन तो मिली, पर संपत्ति मिलेगी या नही ? और सपत्तिदान मिलेगा तो भी वह सतत कैसे चलेगा ? पर इसका अनुभव इस साल बहुत आया। अभी जयप्रकाशजी की बिहार मे जो सभाए हुई, उनमे हजारो सपत्तिदान-पत्र मिले। इसका अर्थ यह नही है कि किसी एक दिन का या किसी विशेष स्थान का वह काम था। पहले से ही तैयारी थी। फिर भी हजारो दानपत्र प्राप्त करना छोटी बात नही है। कार्यकर्ता जुटे होगे, गाव-गाव घूमे होगे। यही अनुभव उडीसा के छोटे-छोटे गावो मे आया। आज काफी तादाद मे वहा सपत्तिदान-पत्र मिल रहे है। इसका भावार्थ यह है कि अभी लोक-हृदय इसके लिए तैयार नही हुआ है कि कोई आते है तो उसे दान की दीक्षा देते जाय।

कुछ लोग कहते है कि इन दिनो लोगो का नैतिक स्तर गिरने लगा है। इसी तरह का भाव कल राजाजी के व्याख्यान मे था। हम कहना चाहते है कि वह ऊपर-ऊपर का भास है। समाज की रचना ही गलत है, इसलिए पैसे का महत्व बढा है और पैसे की कोई स्थिर कीमत नही है। आज सब लोग देख रहे है कि पैसा आज एक कीमत बोलता है, कल दूसरी कीमत बोलता है। इसलिए हमे लगता है कि लोगो का स्तर नीचे नही गिरा है। आज हजार रुपये मिले तो मनुष्य को लगता है कि यह बस है। लेकिन कल जब उसे मालूम होता है कि उस हजार रुपये की कीमत पाचसौ रुपये हुई तो उसे लगता है कि इतने हजार रुपये नाकाफी है। लोभ-वृत्ति मनुष्य मे होती है, इस वास्ते कितना भी पैसा आया तो भी समाधान नही होता। हमारे एक भाई थे। उन्होने हमसे कहा था कि हमको दस हजार रुपये मिल जायगे, तब हम जन-सेवा करेगे। हमने कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, पर देखिए, दो-चार साल बाद उसके पास दस-बारह हजार रुपये हो गये। हमने पूछा कि सार्वजनिक सेवा के लिए कब आते हो तो उसने कहा कि इन दस-बारह हजार रुपयो की कीमत कम हुई है, इसलिए अब पचास हजार रुपये कमाने होगे। हमे तो यह विनोद मालूम हुआ, लेकिन हम कबूल करते है कि इसमे तथ्य भी है। साराश, श्रम के बदले पैसे को महत्व दिया गया, यही गलत काम हुआ। पैसे की कीमत अस्थिर हो गई है, यह दूसरी गलती है। इस वास्ते लोक-मानस मे पैसे की तृष्णा बढी, इसमे दोष उनका उतना नही, जितना कि गलत समाज-रचना का है। जैसे पत्तागोभी मे अनेक स्तर होते है और ऊपर के छिलके पर हवा का परिणाम होता है, तो कभी-कभी वह हिस्सा सडा हुआ होता है और क्योकि ऊपर का पत्ता सडा होता है तो मालूम नही होता कि अदर अच्छा है या नही। जब ऊपर के पत्ते

को हम हटाते है, तब मालूम होता है कि अदर स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल पत्ते हैं। उसी तरह मनुष्य के चित्त की स्थिति होती है। कभी-कभी खराब हवा के कारण मनुष्य के मन का ऊपरी हिस्सा खराब हो जाता है, लेकिन उसपर से कोई अन्दाज लगायेगा कि यह मन सडा है तो अदाज गलत होगा। ऊपर का हिस्सा हटा दिया तो अदर स्वच्छ-सुन्दर मन है। हम कहना चाहते है कि अब भी लोकमानस दान के लिए तैयार है—प्रस्तुत है।

हमसे जब पूछा जाता है, तब हम कहते है कि यह सत्ययुग है, कृतयुग का आरम्भ है। वम्बई से नौसौ मील पैदल चलकर जवान लडके यहा आये। उनमे एक चौदह साल का लडका है। रोज अठारह मील चलने का औसत था। कभी-कभी पचीस मील भी वे चले है। आप लोग जानते है कि ववई के लडको को तितिक्षा की तालीम तो नही मिलती है, लेकिन वे मजे मे आये। सपत्तिदान और भूदान का विचार क्या है, यह समझाते वे चले आये। अब वावा जाता है और उसे जमीन मिलती है तो मान लीजिये कि यह वावा का प्रभाव है। परतु जब बच्चे आते है तो उनका क्या प्रभाव पडा होगा ? उनके क्या व्याख्यान होते है ? पैदल चलते हैं, इसलिए उनका आदर होता है, यह हम समझ सकते है, क्योकि वच्चो का लाड तो लोग हमेशा किया करते है, परन्तु उनको सिर्फ खाना नही मिला, उसके अलावा ७५० एकड का दान भी मिला। तीन भाषा के प्रातो मे उन्हे चलना पडा। हम समझते है कि यह वुद्धदेव की प्रेरणा है। वे बहुत खुश हुए होगे कि ऐसे बच्चे करुणा का कार्य कर रहे हैं। इसलिए हमने कहा कि यह कृतयुग आया है। शास्त्रकार तो युगो की ऐसी व्याख्या करते हैं कि मनुष्य जब सोता है, तब कलियुग मे रहता है, बिस्तर छोडता है, तब द्वापरयुग मे आता है, उठ खडा होता है, तो त्रेतायुग मे रामजी के साथ होता है। आप ही देखिये, यह कृतयुग है या कलियुग। इस वास्ते यह बात गलत है कि लोगो का नैतिक स्तर नीचे जा रहा है, बल्कि हमे तो यह भास होता है कि लोगो का उत्थान बहुत शीघ्रता से हो रहा है और उनका स्तर ऊचा उठ रहा है। हमारी जिस सभा मे स्कूल-कालेज के लडके होते है, वह सभा अत्यन्त शात रहती है। लोग हमसे कहते रहते है कि आजकल के विद्यार्थी उद्धत और उद्दण्ड बन गये है। अग्रेजी मे एक अलकार है, जिसे 'ट्रासफर्ड एपिथेट' कहते है—जो विशेषण एक के लिए लागू होना चाहिए, उसे दूसरे के लिए लागू करते है। तालीम की पद्धति अत्यन्त रद्दी है, उसको जो गाली देनी चाहिए, वह नाहक लडको को देते है। हमे तो आश्चर्य होता है कि इतनी रद्दी तालीम के बावजूद लडके इतने शात कैसे रहते है। हमे यही उत्तर मिलता है कि ईश्वर की कृपा है और ईश्वर भारत से कुछ काम लेना चाहता है। पाच साल का हमारा अनुभव है। हम देखते है कि हिंदुस्तान मे ईश्वर की प्रेरणा काम कर रही है। मै यह सब उस सदर्भ मे कह रहा था कि लोग सपत्ति देने को राजी है। आज की ही वात है। एक भाई

कुछ पैसे दान मे दे रहे थे। उनको समझाया गया कि सपत्तिदान का तरीका अलग है। यह फड इकट्ठा करने की वात नही है। 'तो सपत्तिदान का तरीका बहुत ही बेहतर है', ऐसा उन भाई ने कहा और सपत्तिदान मान्य किया। भाइयो, पिछले साल का अच्छा अनुभव है कि सपत्तिदान का काम बढ रहा है।

पिछले साल का एक और अनुभव है। उसमे भी एक ताकत भरी है। मध्य-प्रदेश मे एक आदाता सम्मेलन किया गया। जिन्हे जमीन मिली है, वे छोटे-छोटे लोग है। कार्यकर्ताओ ने आशा की थी सौ-सवासौ लोग आयेगे, लेकिन कुछ जिलो मे से पाचसौ लोग आये थे। उन्होने बाते समझ ली और हमे भी कुछ देना चाहिए, ऐसा तय किया। हर साल की जो फसल आयेगी, उसमे से एक हिस्सा देने का तय किया। बहुत लोग पूछते है कि इस आदोलन मे भूमिहीनो के हृदय-परिवर्तन की और उनके उत्थान की क्या योजना है। इस अनुभव से उन लोगो को अब अच्छा उत्तर मिलेगा।

हमने एक नई वात की है। हमने व्यापारियो का आवाहन किया है। हम समझते है कि इसका भी अच्छा अनुभव आयेगा। हमसे कहा गया है कि उसका असर व्यापारियो पर अच्छा हो रहा है। व्यापारियो को हिंदुस्तान मे एक धार्मिक स्थान दिया गया है। सत्य, प्रेम आदि गुणो का सारी दुनिया मे गौरव का स्थान है। इन गुणो की सब धर्मों मे कीमत होती है। परन्तु व्यापार को भी एक स्वतन्त्र धर्म माना गया, यह वात हिंदुस्तान मे ही हुई है। दुनिया के लोग व्यापार को व्याव-हारिक काम मानते है। पर हिंदुस्तान मे चातुर्वर्ण्य की योजना मे व्यापार को वैश्य का एक स्वतन्त्र धर्म माना गया। वैश्य को मोक्ष का उतना ही अधिकार है, जितना वेदाध्ययनशील ब्राह्मण को। यह हिंदुस्तान की विशेषता है। व्यापार भी करो और मोक्ष भी पाओ, यह अजीव वात है। दूसरे देशो में यह कहा गया कि सुई के छेद से ऊट चला जा सकता है, परन्तु श्रीमान् को मोक्ष नही मिलेगा। लेकिन हिंदुस्तान के दयालु शास्त्र की योजना मे व्यापारी को मोक्ष-मार्ग खुला कर दिया गया, कुछ शर्त के साथ। हमने व्यापारियो से निवेदन किया कि यह जो भार आपपर डाला गया है, वह आप उठाइयेगा और हमे सुनाया गया है कि उसका असर व्यापा-रियो पर हुआ है। हम कोई भविष्यवादी नही है, न भविष्यवाद पर हमारी श्रद्धा है, पर हमारे मन मे कोई सदेह नही है कि भारत मे एक नैतिक क्राति होने जा रही है।

गतसाल मे हानिया भी हुई और वे काफी गभीर है। इधर इतना नैतिक उत्थान का अनुभव और उधर इतनी नैतिक हानि का अनुभव, यह क्या तमाशा है? यह है परमेश्वर की लीला! इसका भी समाधान है। कई लोग कहते है कि एक ओर लोग जमीन देते है और दूसरी ओर वे ही बेरहमी से बेदखलिया करते है। इसलिए वे कहते है कि लोग बाबा को ठग रहे है, वे दान करने का ढोग करते

है और उनकी असलियत प्रकट होती है तब, जबकि वे वेदखलिया करते है। हम कहते है कि हम इससे उलटा समझते है। हम कबूल करते है कि लोग दान भी देते है और उधर वेदखल भी करते है। लेकिन हम समझते है कि वह जो वेदखली का काम है, वह असलियत नही है, वह उनका ढोग है और बाबा को जो दान देते है, वह उनकी असलियत है। इसलिए कि उनकी दान की प्रवृत्ति उनकी आत्मा का गुण है और जो बेदखलिया करते है, वह परिस्थिति का परिणाम है। सरकार कानून नही बना रही है, लेकिन कानून बनेगा, ऐसा चार साल से चल रहा है। वे लोग वेचारे भयभीत है। सभालना चाहते है, इसलिए सभाल लेते है। लोभ तो मनुष्य मे है ही, परन्तु उसके साथ भय भी है। इसलिए परिणामस्वरूप परिस्थितिजन्य दोष हो रहा है। लोगो का वह जो बुरा रूप प्रकट हो रहा है, वह असलियत नही है। वाहर की हवा के कारण ऊपर का वह अस्तर सड गया है। बाबा को यह कुशलता सधी है कि ऊपर का छिलका हटाता है और अदर ही देखता है। ऊपर का हिस्सा सडा हुआ न हो तो भी हटाता है। बाबा ने कहा है कि पत्तागोभी काटने का नियम ही यह है कि ऊपर का छिलका निकाल देना चाहिए। इस वास्ते हम अपने अनुभव से कह रहे है कि लोगो की असलियत दान मे प्रकट होती है। फिर भी ऊपर का छिलका सड गया, यह इष्ट तो नही है। उसके सडने से अदर कुछ परिणाम होता है, इस वास्ते ऊपर का छिलका अच्छा रहे, ऐसी ही कोशिश करनी चाहिए। उस हिसाब से इन हानियो का जिक्र करता हू। परन्तु हम निराश नही है।

भाषावार प्रात के कारण कई जगह हिंसा के प्रकार हुए। उसका बहुत दु ख हमको है और हमने माना है कि यह भूदान-यज्ञ की हार है। हमारा ध्यान इस तरफ गया है। विशेष परिश्रम शहरो पर हमने नही किया, यही इसका कारण है। हम यह कह देना चाहते है, इसके पहले भी कहा है कि भाषावार प्रात बनाने मे कोई गलती नही है, बल्कि हम यह मानते है कि लोगो की भाषा मे राज्य नही होगा तो स्वराज्य के कोई मानी नही है। लोगो की जो भाषा है, वह हाईकोर्ट का न्यायाधीश नही जानता है, तो वह न्यायाधीश बनने के लायक नही है। किसान जो बात करता है, वह उसे समझनी चाहिए और उसीकी भाषा मे जवाब देना चाहिए और उसका बयान तर्जुमा करके नही, वैसा ही सुनना चाहिए, उसका फैसला भी उसी भाषा मे देना चाहिए। तालीम भी लोगो की भाषा मे देनी चाहिए। यह जनता का अधिकार है और यही स्वराज्य का अर्थ है। इसलिए हम उसमे कोई गलती नही मानते है, वल्कि भाषावार प्रात की रचना की माग करनेवाले को 'तू सकुचित है, तू सकुचित है,' यह कहकर सकुचित बनाया गया है। यह तो उपनिषद् का सिद्धात है—अगर हम सामनेवाले को कहते है कि 'तू पापी है, तू पापी है,' तो वह पापी ही बनता है। समझने की जरूरत है कि भाषावार प्रात-

रचना की माग सज्जनो की तरफ से ही हुई है, दुर्जनो की तरफ से नही। इसलिए इसमे गलती नही है। परन्तु उनपर सकुचितता का आरोप किया, उससे वे सकुचित बने, और कुछ लोग पहले से सकुलित होगे भी। परिणामस्वरूप काफी हिंसा हुई, जो बडी दु खद घटना है।

अब यह गभीरता से सोचने लायक विषय है। यह क्यो हुआ ? इसलिए कि हमने गलत मनुष्यो का गौरव आजतक किया। १९४२ के आदोलन मे जनता की तरफ से कई प्रकार के हिंसा के काम किये गए—रेलवे की लाइन आदि उखाडना। ये जो सारी चीजे भाषावार प्रात-रचना के आदोलन मे हुई, वे सारी १९४२ मे हो चुकी थी और उनका गौरव भी हुआ था, क्योकि अच्छे काम के लिए वे बाते हुई थी। सन् '४२ मे ऐसा माना गया था कि वह अच्छा काम था, इसलिए हिंसा हुई। अब अच्छे काम के लिए अगर हिंसा मजूर है, ऐसा माना गया तो इस काम के लिए हिंसा की, तो क्या गलती है ? आज जनता के मन मे इस विषय मे सफाई नही है। अगर यह सफाई होती और इसका स्पष्ट ज्ञान होता कि हमे स्वराज्य अहिंसा की शक्ति से हासिल हुआ है, तो आज जो दशा दिखाई देती है, वह नही दिखाई देती। हम देखते है कि एक ही शख्स के घर मे एक फोटो महात्मा गाधी का होता है और उसके नजदीक सुभाष बोस का होता है। हम भी सुभाष बोस के अनेक गुणो का, उनकी सेवा का और देशभक्ति का गौरव करते है, लेकिन वह जो चित्र लगा रहता है, वह गुण-गौरव के लिए नही होता। वह इस विश्वास से होता है कि हमे जो स्वराज्य मिला, उसमे कुछ गुण है महात्मा गाधी की अहिंसा का, और कुछ गुण है हिंसा का, याने जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे इधर से अहिंसक लोगो ने शत्रु को सताया और उधर से दूसरो ने हिंसा से सताया, तब जो परिणाम आया, वह स्वराज्य है याने हमने अहिंसा को शत्रु पर हमला करने का एक तरीका माना और हिंसा को उसीका दूसरा तरीका माना। हमको आज दुनिया मे इस मामले मे दो मनस्थितियो का मुकाबला करना है। एक विचार यह है कि लोगो का, खास करके यूरोप-अमरीका के लोगो का—यह मानस-शास्त्र का निदान है—हिंसा पर से विश्वास उठ गया है। उनका नाम इसलिए लिया, क्योकि उनका हिसा पर बहुत विश्वास था और क्योकि हिसा ने अतिहिंसा का रूप लिया और वह काम नही करती है, नुकसान ही करती है, ऐसा दीखता है। इसलिए उनका हिंसा पर से विश्वास उठ गया, परन्तु अहिंसा पर विश्वास बैठा नही। चित्त की यह बीच की हालत बहुत भयानक है। उस हालत मे वे लोग आज है और उनका मन केवल डावाडोल है। उनसे कोई भी कदम निश्चयपूर्वक नही उठाया जायगा, चितनपूर्वक कोई काम नही होगा। नसीब से जो होगा, वह होगा। अगर हिंसा पर उनका विश्वास होता तो सुनिश्चित कदम उठाते, अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होता तो भी वे निश्चित कदम उठा सकते। परन्तु अहिंसा पर

विश्वास बैठा नही और हिंसा पर से विश्वास उठ गया, इसलिए बीच की हालत मे निश्चित कदम उठाया नही जाता। यह समस्या आज दुनिया के सामने उपस्थित है।

दुनिया के सामने एक दूसरी समस्या है और वह हिंदुस्तान मे भी मौजूद है। वह यह कि हिंदुस्तान जैसे देश की बडी हिंसा पर श्रद्धा नही रही, क्योकि बडी हिंसा के साधन आज उसके पास नही है और उन्हे वह जल्दी हासिल कर सकेगा, ऐसा लक्षण भी नही है। छोटी हिंसा पर यहा के लोगो का विश्वास है, यह एक बडी विचित्र बात है। छोटी हिंसा यशस्वी नही होती थी, इस वास्ते बडी हिंसा के प्रयोग हुए, लेकिन हिंदुस्तान के लोगो मे छोटी हिंसा पर श्रद्धा बैठ गई। स्वाभाविक ही जो लोगो की स्थिति है, उसका प्रतिबिंब सरकार मे है। आपने देखा कि गोलिया जगह-जगह चली। सिर्फ इस भाषावार प्रांत-रचना की बात नही करता हू, इन पाच साल मे कई मौको पर गोलिया चली। कही कारणो की तलाश हुई और कही नही हुई। कही वह जायज साबित हुई और कही नाजायज। इस जायज-नाजायज मे हम पडना नही चाहते है। उसका कोर्टवाले अपने तरीके से फैसला देते है। परन्तु हमको यह आभास हुआ। हम किसीपर अन्याय नही करना चाहते है। गोलिया आसानी से चली, याने लोगो की तरफ से जैसे हिंसा हुई, वैसे फौरन दूसरी बाजू से हिंसा की तैयारी हुई। दोनो तरफ से छोटी हिंसा पर विश्वास है। यह देश के लिए बडी दु ख की घटना है और एक समस्या है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि हमे अहिंसा की शक्ति और सत्याग्रह की शक्ति खडी करनी होगी। 'सत्याग्रह' शब्द गभीर है, दस-बारह साल से हम इस पर चितन कर रहे है, कई विचार सूझते है। हम जानते है और मनाते है कि सत्याग्रह से बढकर दुनिया के लिए मुक्तिदायक कोई शस्त्र नही है, परन्तु आज सत्याग्रह भी एक धमकी का रूप बन गया है। यह कोई रचनात्मक शक्ति का रूप नही है, यह गभीर विषय है। हम चाहते है कि इसकी छानबीन हमको अक्सर करनी चाहिए। यह गभीर विषय थोडे मे नही कहा जायगा।

हम यह भी कहना चाहते है कि गाधीजी के जमाने मे जो सत्याग्रह हुए, उनको अगर हम आदर्श मानेगे तो गलती करेंगे, क्योकि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जहा लोकशाही है, वहा जो सत्याग्रह होता है, वह अधिक शक्तिशाली, अधिक विधायक होना चाहिए। इसलिए बापू ने बहुत दफा कहा था कि सत्याग्रह का शास्त्र हम लिख नही सकते, वह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। उस शास्त्र का हमे विकास करना होगा। उसका विकास करने के बजाय हमने उस शास्त्र को गाधीजी के जमाने मे जिस तरह चलाया, उससे नीचे के स्तर पर गिराया। गाधीजी के समय का कुल काम, स्वराज्य-प्राप्ति का, निगेटिव था। आज हमे जो काम करना है, वह वैसा नही है। आज हमे अपने देशवासियो के जीवन का ही रूपातर करना

है। बापू हमेशा भाषा बोलते थे—'एड ग्रौर मेड' की। हम वह भाषा नही बोल सकते। वह अग्रेजो को 'क्विट इडिया' कह सकते थे। हम व्यापारियो को जमीन के मालिक को, सपत्ति के मालिक को 'क्विट इडिया' नही कह सकते। हम सबको यही रहना है, इस वास्ते कोई 'क्विट' नही करेगा। इस वास्ते हम सबको एक साथ रहने की युक्ति साधनी चाहिए। ऐसी स्थिति मे जो सत्याग्रह होगा, उसमे सत्याग्रह का गुण-युक्त स्वरूप प्रकट होना चाहिए, लेकिन वह प्रकट नही हुग्रा, बल्कि हुग्रा यह कि बापू के जमाने मे जो सत्याग्रह हुए, उनके स्तर से ऊपर उठने के बदले हम नीचे गिर गये। उसकी ग्राज प्रतिक्रिया यह हुई है कि कुछ लोग बोलने लगे है कि लोकशाही मे सत्याग्रह का स्थान नही है। यह अजीब बात है कि लोकशाही मे लश्कर का स्थान तो है, पर सत्याग्रह का स्थान नही है। यह भी बिल्कुल गलत विचार है, यद्यपि बहुत बडे-बडे यह विचार धारण करते है। इस हालत मे हमपर बडी जिम्मेदारी है। हमे सत्याग्रह को ग्रौर उसके शास्त्र को विकसित करना होगा।

ग्रब मै कुछ ग्रपने खुद के काम के बारे मे कहना चाहूगा। मैने कहा कि इस वक्त हमे नम्रता की बहुत जरूरत है। ग्रब मै बिल्कुल दक्षिणापथ मे ग्रा पहुचा। इसके ग्रागे ग्रब दक्षिण देश नही रहा। भारत का ग्राखिरी हिस्सा यही है। हमे काम की यही पर परिसमाप्ति महसूस हो रही है। हम चाहते है कि इस ग्रादोलन का पूरा तेज यहा प्रकट हो। हम कुछ श्रद्धा रखकर यहा ग्राये है। वैसी श्रद्धा से ही हम हर जगह जाते है। पर यहा विशेष श्रद्धा से ग्राये है, यह कबूल करना चाहिए। वह इसलिए कि हमारे मन मे प्राचीन ग्रथो के बारे मे कुछ प्रेम है। यह नही कि उनमे कुछ गलत बाते हो, तो भी उन्हे हम शिरोधार्य समझेगे। परन्तु हमारे मन पर उनमे जो ग्रच्छी बाते है, उनका बहुत ग्रसर होता है। ऐसे ग्रथो मे भागवत ग्रथ है। इसमे लिखा है कि जब कभी ऐसी स्थिति ग्रायगी कि सारी दुनिया से भक्ति हट जायगी, तब भी द्रविड देश मे भक्ति कायम रहेगी। हम नही जानते कि इस तरह अनुमान करने-को उनके पास क्या ग्राधार था। पर कुछ था जरूर, यह मानकर हमने यह श्रद्धा रखी। यहा हम देखते है कि गाव-गाव मे एक बडा मदिर होता है, उसके इर्द-गिर्द गाव होता है ग्रौर छोटे गाव का मन्दिर उत्तर हिन्दुस्तान के बडे गाव के मन्दिर की बराबरी करेगा। यहा के बडे कवि भारतीय्यार ने उल्लेख किया है कि यहा के लोग, सुपुत्र बने, इस वास्ते यह मन्दिर होते है ग्रौर माताए, ग्रपने पुत्र ग्रच्छे निकले, इस वास्ते यह तपस्या करती है।

हमने इस श्रद्धा से यहा कदम रखा है ग्रौर उत्तर हिन्दुस्तान मे जो कुछ पुण्य-सग्रह हुग्रा है, वह सब लेकर हम यहा ग्राये है। इस वास्ते यहा के कुल लोगो का सहयोग हमे हासिल करना है। हमारी परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना है कि हमारी सबकी शुद्धि ऐसी हो कि हमारी ग्रावाज सबको मधुर मालूम हो ग्रौर

इसलिए यहा कितना रहना चाहिए, इसकी मर्यादा हमने यहा रखी है। हम चाहते जरूर हैं कि कम-से-कम समय मे काम हो, परन्तु हम यह भी चाहते हैं कि काम व्यापक हो, याने हम चाहते हैं कि भूदान के साथ रचनात्मक काम सहज जोड सकते हैं, तो जोडें। गाव-गाव खादी और ग्रामोद्योग चले। ग्राम-स्वावलबन के लिए तैयारी करने का ग्रामोदय का कार्य भी यहा हो और जातिभेद निरसन हो। तीसरी बात हम चाहते हैं कि सर्वत्र नई तालीम का विचार लोग समझे। कम-से-कम ये तीन चीजे भूदान के साथ जोडना चाहते हैं। इसलिए सिर्फ भूदान-कार्यकर्ताओ को नही, बल्कि जितने रचनात्मक कार्य करनेवाले हैं, उन सब कार्यकर्ताओ की मदद चाहते हैं और उन्हे मदद देना चाहते हैं। इसके लिए अधिक शुद्धि की जरूरत हम महसूस करते हैं। इस वास्ते हमने सोचा है कि १ जून से तीन दिन तक उपवास करे, याने पूरे तीन दिन, बहत्तर घटे। १ तारीख को आठ बजे खायेगे और ४ तारीख को फिर आठ बजे खायेगे। यह केवल प्रयोग करने के वास्ते, चित्तशुद्धि के वास्ते और कुछ चिंतन हो सके, इस आशा से और प्रार्थना के लिए हम करना चाहते हैं।

१९५७ मे यह काम किस तरह समाप्त होगा, यह जानने की एक बहुत तीव्र इच्छा लोगो के मन मे रहती है। उस वासना को हमने खुद बढावा दिया है। इस वास्ते उसकी पूरी जिम्मेदारी हम खुद उठाते है। बहुतो ने इस बारे मे हमे साव-धान किया था। एम एन राय ने लिखा था कि एक मुद्दत रखना और साथ-साथ यह भी कहना कि हृदय-परिवर्तन से काम करना है, परस्पर-विरोधी हैं। कुछ लोगो ने हमे यह भी कहा है कि इसमे गलत तरीके अख्तियार किये जा सकते हैं और जल्दबाजी की भावना मे हिंसा भी हो सकती है। एक आक्षेप यह भी है कि इसमे सकाम वृत्ति होती है और गीता ने निष्काम-वृत्ति की सिखावन दी है, उससे इसका विरोध होता है। हम तीनो आक्षेप समझ नही सकते हैं, यद्यपि उन तीनो आक्षेपो का हम गौरव करते हैं। निष्कामता को हम सेवावृत्ति का प्राण समझते हैं। हम कबूल करते हैं कि अहिंसा से बढकर हमारे चित्त मे निष्कामता के लिए अधिक आदर है। लेकिन साथ-साथ हम निष्कामता और अहिंसा, दोनो को पर्याय मानते हैं, हम दोनो को समान अर्थ के मानते हैं। इस वास्ते ऐसी मर्यादा रखने मे निष्का-मता पर प्रहार होता है, यह आक्षेप हमे अधिक तीव्र लगा। हम चाहते हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र दुनिया दुःख से निवृत्त हो। ऐसा मानना निष्कामता के विरुद्ध नहीं है। इसलिए शीघ्र काम करते हैं तो निष्कामता खोते हैं, ऐसा हम नही मानते हैं। एक निश्चित मुद्दत हम मन मे रखना चाहते हैं और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार लेते हैं इन दो बातो मे भी हमे विरोध मालूम नही होता। निश्चित मुद्दत इसलिए होती है कि एक ही कार्य अनत काल तक नही करना होता है। एक तरीका लोगो के सामने हम रखते हैं कि इस तरीके से पाचसौ साल बाद काम होगा तो वह तरीका काम का नही रहता। तो निश्चित मुद्दत मे काम करना

जरूरी है। परतु अगर नही होता तो क्या गलत तरीके आजमायेगे ? गलत तरीके से कभी काम नही होगा। गलत तरीके आजमाये जायगे, ऐसा डर हो सकता है। परतु किसी-न-किसी प्रकार का खतरा उठाये विना कोई वडा काम नही हो सकता। हिम्मत के विना काम नही होता। इतनी जाग्रति रखना हमारा कर्त्तव्य है कि गलत तरीके आजमाये न जाय और उतावली न रखे।

हमने वहुत दफा कहा है कि इस काम के पीछे ईश्वर का हाथ है। हम मनुष्य मे और ईश्वर मे वहुत थोडा फर्क करते है। मनुष्य के दो हाथ होते है, ईश्वर सहस्र हाथोवाला होता है। जहा हजारो मनुष्य इकट्ठे होते है, वहा ईश्वर की शक्ति प्रकट होती है, अर्थात् सज्जन धर्म-कार्य के लिए जव इकट्ठे होते है, तव ईश्वर प्रकट होता है। जैसे ईश्वर के हाथ है, वैसे राक्षसो के भी अनेक हाथ होते है, परतु अनेक हाथ और धर्म-कार्य का जहा सयोग होता है, वहा ईश्वर का अधिष्ठान होता है। यह हमारा विश्वास है कि ईश्वर की मदद इसके पीछे है। इसी वास्ते लोगो के दिल मे अनुकूल भावना होती है। मुद्दत रखने का तात्पर्य यही है कि हमे उपाय-सशोधन का मौका मिलना चाहिए। एक उपाय हमारे हाथ मे आ गया, उसे हम पूरा आजमाते नही है तो काम नही बनता और फिर नया उपाय नही सूझता। एक उपाय को हम पूरी तरह से आजमाते है, निश्चित मुद्दत रखकर काम होता है, तभी समाधान होता है। पूरी शक्ति लगाने पर भी एक निश्चित मुद्दत मे काम नही हुआ तो सशोधन का मौका मिलता है और दूसरा उपाय सूझता है। हम सवको आगाह करना चाहते है कि पूरी ताकत लगाये बिना समय ही नष्ट करेंगे तो वह गलत काम होगा। उपाय-सशोधन के लिए यह बहुत जरूरी है कि निश्चित मुद्दत मे पूरी शक्ति से हम एकसाथ काम मे लगे। गभीरता के साथ परिणामो को भगवान पर सौंपकर निष्काम-वृत्ति से काम मे लगना चाहिए।

आठवा सर्वोदय सम्मेलन
काचीपुरम्, २८ मई १९५६

८ : : वेदान्त और अहिंसा का समन्वय

आज इस स्थान मे हमको परमेश्वर खीचकर लाया है। इस स्थान के लिए मन मे आदर तो वहुत था, फिर भी इस वर्ष का सर्वोदय-सम्मेलन मैसूर स्टेट मे कही हो, ऐसी हमारी कोशिश थी। लेकिन कई कारणो से वह नही हो सका। दूसरी कोशिश यह हुई कि कन्याकुमारी मे सम्मेलन हो, परन्तु वहा पानी की शिकायत रही, अन्यथा सम्मेलन वही होता। जब वह भी नही बना तो आखिर कालडी का

निर्णय किया। इस तरह हमारी कल्पना दूसरी थी और उस कल्पना के बावजूद हमारा यहा आना हुआ तो हमने यह माना कि ईश्वर की ही इच्छा है। ३२ साल पहले 'वायकम' के सत्याग्रह के निरीक्षण के लिए बापू ने हमको भेजा था, तब हम इस प्रदेश मे आये थे। ट्रेन मे जाते हुए हमको भान हुआ कि नजदीक ही कही कालडी है तो हमने साथी से पूछा। उन्होने कहा कि "हा, है। क्या आप वहा जाना चाहते है ?" मैने उनको 'ना' कहा, क्योकि हम वायकम-सत्याग्रह देखने के लिए जा रहे थे, इसीलिए बीच मे यहा आना ठीक नही लगा। हमारी कर्तव्य की व्याख्या मे वह नही बैठा। लेकिन रात को जब हम सोने के लिए गये तो हमको नीद नही आ सकी। मेरा खयाल है कि एक-डेढ घटा केवल शकराचार्य का उपकार-स्मरण हमारे मन मे चला। उसका वर्णन 'गीता-प्रवचन' के बारहवे अध्याय मे आया है।

बचपन से ही शंकराचार्य के ग्रन्थो से हमारा सतत परिचय रहा है और एक अद्भुत योग ही है कि इसी समय कालडी ग्राम मे शकराचार्य का एक ग्रन्थ, जिसका कि हमने चयन किया है, आपके सामने प्रकट किया गया है। यह चयन हमने चार साल पहले किया था, जब चाडिल मे हम बीमार थे। आजतक वह चीज प्रकाशको के पास पडी थी। इस वक्त उसके प्रकाशन का योग ठीक समय पर ही हुआ है। यह भी हम सब ईश्वरीय योजना समझते है।

कालडी मे हमको जरूर आना था, और इस जीवन मे शकराचार्य के चरणो मे हमारी तुच्छ सेवा समर्पण होनी थी। लेकिन उनके ग्रन्थ का हमने जो चयन किया है, वह बहुत बडी सेवा है, ऐसा हम नही मानते है। वह तो एक छोटी चीज है। हमपर उनका बहुत उपकार है। उनके ग्रन्थ हमने कई बार पढे है, सिखाये भी है, पर यह भी हम बहुत बडी बात नही मानते। परन्तु जो विचार उन्होने सिखाया, उसको हम क्षणभर भी भूले नही है। इतना असामान्य वैराग्य उनका था कि सामने जो इतनी विशाल सृष्टि दीख पडती है, उसको वह बिल्कुल मिथ्या समझते थे। इतने वैराग्य के साथ अनुराग भी उनका कितना था। दुनिया को मिथ्या समझनेवाला कभी किसी देश का सेवक नही हो सकता, लेकिन वह भारत के महा-सेवक थे। भारत की सेवा के लिए वह देशभर मे घूमते रहे। समाज मे जो जडता थी, उसका उन्होने सख्त विरोध किया। उसके लिए उनको दु ख भी सहन करने पडे।

आज उनके नाम का हम बहुत आदर करते है, परन्तु उनके साथ हमारा क्या व्यवहार रहा था, यह बहुत-से लोग जानते भी नही होगे। केरल के लोग तो जानते है। समाज ने उनका बहिष्कार किया था। सन्यास लेने के बाद वह माता के आखिरी दर्शन के लिए आये थे और माता की सेवा की थी। उन्होने माता के अन्तिम समय मे उनको हरि-दर्शन हो, इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण का स्तोत्र बनाया। तदनुसार माता को हरि-दर्शन हुआ। उसके बाद माता की मृत्यु हुई। घर मे वह ही अकेले थे। मा की लाश को जलाने के लिए उनकी जातिवालो ने मदद करने

से इन्कार कर दिया। दूसरी जातिवाले तो आनेवाले ही नही थे। उन दिनो का जाति-भेद कोई साधारण नही था। तब शकराचार्य ने क्या किया? तलवार से मा की लाश के तीन टुकडे किये और एक-एक टुकडा दूर ले जाकर जलाया। आज हम उनका इतना आदर करते हैं कि यहापर उनकी इस कृति के स्मरण के तौर पर लाश को ले जाने के पहले उसपर तीन रेखाए खीचने का रिवाज है। उस समय का समाज उनके लिए इतना कठोर था, लेकिन उन्होने उसकी शिकायत नही की, बल्कि उनके कुछ ग्रन्थो मे उसका कोई उल्लेख तक नही है।

वह तो इस दुनिया को मिथ्या ही समझते थे और उसकी असलियत को पहचान गये थे। ऊपर के कवच को वह नही मानते थे। उनकी प्रतिभा असामान्य थी। बुद्ध भगवान के बाद इतनी प्रतिभा शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति मे दीख पडी हो। उनके विचारो मे हमारी इतनी श्रद्धा बैठ गई है कि हमको भी यह दुनिया सत्य नही प्रतीत होती है। तिसपर भी हम काम करते हे। वह भी काम करते रहे। कर्म-सन्यास का विचार उन्होने लोगो के सामने रखा, लेकिन समाधिस्थ होने तक निरन्तर वह कर्म करते रहे। उनकी कर्म की व्याख्या स्थूल नही थी। किसी भी कर्म का कोई अहकार अपने पर नही चिपकना चाहिए, इसे वह सन्यास समझते थे। वह निरन्तर कर्मशील सन्यासी थे। उन्होने हिन्दूधर्म को बडी जडता से बचा लिया। अगर शकराचार्य नही होते तो पाश्चात्य देशो मे विज्ञान के साथ ईसाई धर्म का जैसा विरोध उपस्थित हुआ, वैसा विरोध यहा भी उपस्थित हो सकता था। बात जाहिर है कि यूरोप मे वैज्ञानिको के साथ चर्च का कितना घोर विरोध हुआ था, परन्तु शकराचार्य ने स्पष्ट कह दिया कि विज्ञान के विरोध मे धर्म कोई बात नही कर सकता। विज्ञान का विषय दूसरा है और धर्म का दूसरा। विज्ञान का विषय है सृष्टि का ज्ञान और धर्म का विषय है अतरात्मा का ज्ञान। दोनो के विषय ही बिल्कुल भिन्न हैं। वे परस्पर पूरक हे। ये दोनो विरोधी नही हो सकते, बल्कि उन्होने तो बहुत ही अद्भुत लिख रखा है, "न हिं श्रुति-शतमपि अग्नि अनुष्ण. इति ब्रुवत्प्रामाण्यम् उपैति"। अर्थात्—सैकडो श्रुति-वचन भी, 'अग्नि ठडा है', ऐसा अगर कहे, तो वह प्रमाण नही हो सकता।

कोई भी रैशनलिस्ट जैसा वाक्य लिख सकता है, वैसा यह है? कौन रैशनलिस्ट इससे अधिक कह सकता है? तिसपर भी वह परम नम्र थे और श्रुति को तो वह हजार माता पिता से भी अधिक हितैषी समझने थे। इतनी श्रद्धा वह श्रुति पर रखते थे। इसीलिए श्रुति-वाक्यो की एक-वाक्यता करने के लिए उन्होने जितनी मेहनत की, वह उनके ग्रथो मे दीख पडती है। उनके सारे भाष्य याने श्रुति-वचनो की एक-वाक्यता। अपनी असामान्य निष्ठा श्रुति पर होने पर भी श्रुति-वचन विज्ञान के खिलाफ बोलेगा तो वह प्रमाण नही होगा, ऐसा उन्होने लिख दिया। उसके परिणामस्वरूप हिन्दूधर्म जडता से मुक्त हुआ और धर्म-श्रद्धा बुद्धियुक्त

बनी। हम मानते है कि हिंदूधर्म और हिन्दुस्तान पर उनका बडा भारी उपकार है। उनके ही अनेक शिष्यो ने हिन्दुस्तान को आगे बढाया। उधर बंगाल मे रामकृष्ण परमहस हो गये। वे शाकर-विचार के ही एक शिष्य थे। इधर रमण महर्षि हुए। उनकी सारी साधना भी शाकर-विचार पर पडी है। इस प्रदेश मे नारायण गुरु हो गये। उनका कुल-का-कुल विचार शाकर-विचार है। उधर महाराष्ट्र मे ज्ञानेश्वर महाराज हो गये, जो वहा के ज्ञानियो के गुरु माने जाते है। उनका भी कुल-का-कुल विचार शाकर-विचार है। इस तरह कुल हिन्दुस्तान पर उनके विचार का परिणाम हुआ।

उन्होने भूदान-यज्ञ के लिए तो बडा भारी आशीर्वाद ही दे दिया। ईशावास्य मे एक मत्र है—"मा गृधः कस्य स्विद धनम्"—किसीके भी धन की वासना मत रख। इसका बिल्कुल ही सरल अर्थ यही होगा कि दूसरे किसीके धन की वासना तू मत रख। परन्तु शंकराचार्य ने उसका अद्भुत ही अर्थ लिया। मा गृध कस्य स्विद धनम्। कस्य ? परस्य एव वा। अपने भी धन की वासना मत रख, दूसरे के भी धन की वासना तू मत रख। यह खयाल ही गलत है कि यह धन मेरा है और वह दूसरे का। मै इसका मालिक हू और वह उसका। यह कुल धन परमेश्वर का है और वह सारे समाज की सेवा मे लगना चाहिए। यह हमारा है और यह 'मेरा' नही है, यह 'किसीका' भी नही है। इसीलिए उन्होने भाष्य किया कि किसी भी धन की वासना, याने अपने भी और दूसरे के भी धन की।

भूदान-यज्ञ पर आधुनिक अर्थशास्त्र आक्षेप करते है—"दान की बात लोगो पर उपकार करने की है। क्या जमीन पर किसीकी मालकियत है ? अगर मालकियत नही है तो फिर 'दान' शब्द क्यो इस्तेमाल करते है ?" इसके जवाब मे बाबा ने शकराचार्य को ही वकील बनाया और उसने बाबा का केस अदालत मे अच्छी तरह साबित कर दिया। दान के विषय मे शकराचार्य की व्याख्या है कि 'दान सविभाग'। दान याने सम्यक् विभाजन। ठीक तरह से सब लोगो मे विभाजन होगा, यह है दान का अर्थ। याने बिल्कुल आधुनिक अर्थशास्त्र जो व्याख्या करेगा, वही यह व्याख्या है—बिल्कुल कार्ल मार्क्स की व्याख्या।

यह प्रतिभा का लक्षण है। उस जमाने मे भूमि का तो कोई मसला नही था, परन्तु उनकी प्रतिभा यह कहती थी कि धन पर क्या मालकियत करते हो, वह तो ईश्वर-भक्ति के विरुद्ध बात हो जाती है। ईश्वर शब्द का अर्थ ही है मालिक। हम अगर खुद मालिक बनते है तो हम ईश्वर की जगह ले लेते है। यह तो नास्तिकता है। इसलिए मालकियत ईश्वर-भक्ति के विरुद्ध है, यह शंकराचार्य ने परख लिया। जबतक मालकियत नही छोडते है, तबतक हम भक्त होते ही नही, यह सारा ईश्वर का है, उसपर किसीकी मालकियत नही हो सकती, यह भक्ति का विचार है। यह मै अपनी ओर से नही कह रहा हू। यह मै शकराचार्य की ओर से कह रहा हू।

तीन साल पहले बोधगया मे सम्मेलन हुआ था। वहा हमने समन्वय की वात करते हुए कहा था कि जव वेदात और अहिंसा का समन्वय होगा, तभी हिन्दुस्तान का उद्धार होगा। बुद्ध भगवान् के नाम से मैने वहा भूदान का काम चलाया। तीन साल के वाद आज हम कालडी आ पहुचे है। यह वेदात का स्थान हे। बोधगया अहिंसा का स्थान था, वहा कारुण्य का दर्शन हुआ था, यहा आत्म-साक्षात्कार हुआ।

करुणा की बुनियाद क्या है ? ईसामसीह ने कहा था कि पडोसी पर वैसा ही और उतना ही प्यार करो, जैसा और जितना अपने पर कर सकते हो। यह छोटी वात नही है। पडोसी पर थोडा प्यार करो, यह वात तो हम समझ सकते है, लेकिन जेसा और जितना हम अपने पर प्यार करते है, उतना और वैसा ही प्यार हम अपने पडोसी पर भी करे, यह जव ईसामसीह कहते है तो वह वहुत वडी चीज है। "लव दाई नेबर, एज़ दाईसेल्फ"—यह भाषा है। कोई भी मन मे सवाल करेगा कि कैसे इतने ही और ऐसे ही प्रेम की अपेक्षा की जाती है। उसका उत्तर वेदात देता है। वेदात कहता है कि यह भेद उपर-ऊपर का है। आत्मा मे भेद नही है। इस तरह वेदात और कारुण्य का समन्वय होता है। यह ईश्वरीय सकेत है कि हिन्दुस्तान मे वेदात और अहिसा का समन्वय होना चाहिए। इसीलिए वह हमको कालडी मे खीचकर लाया। तीन साल के अदर वारहसौ साल का काम हमने कर लिया। शकराचार्य और बुद्ध के जमाने मे वारहसौ साल का अतर हे, और बोधगया और कालडी के सम्मेलन मे तीन साल का। याने तीन साल मे वारहसौ साल का काम हुआ। ऐसे ही वेग से हम काम करेगे तो शीघ्र-से-शीघ्र हमको इस देश मे साक्षात्कार होगा। हम आशा करते है कि इस केरल प्रदेश मे ऐसी प्रेरणा सब लोगो को होगी।

इस काम के लिए यह समय केरल देश मे बहुत ही अनुकूल है। केरल की समाजिक, राजनैतिक परिस्थिति और आध्यात्मिक वृत्ति भी इसके लिए अनुकूल है। ईसाई पथवाले भी बोल रहे है कि भूदान का काम तो जरूर होना ही चाहिए। तो धर्म-ग्रन्थो मे भी कोई मतभेद नही रहा। आर्थिक दृष्टि से ग्रामदान, भूदान की अत्यत आवश्यकता इस देश को है। इस तरह सब तरफ देखते हुए ऐसे काम के लिए इससे अधिक अनुकूल काल की कल्पना हम कर ही नही सकते है। उस हालत मे परमेश्वर आपके प्रदेश मे यह सम्मेलन लाया है। हम आशा करते है कि इस प्रदेश के सारे कार्यकर्त्ता विल्कुल एक होकर काम मे लग जायगे।

कार्यकर्त्ता कौन है ? क्या कोई निर्दिष्ट कार्यकर्त्ता हे ? सारी भूदान की समितिया तो हमने तोड डाली। हमने पहचान लिया है कि वह मिथ्या हे। सत्य यही है कि जनता स्वयमेव खडी हो जाय। सारे लोग जो यह सुन रहे है, वे ही कार्यकर्त्ता है। यह सारा जो वोल रहे है, वही कार्यकर्त्ता है। हम सारे भगवान् के सेवक है और भगवान् का काम करनेवाले है। इस काम के लिए कार्यकर्त्ता की कभी कमी नही रह सकती।

आज रवीद्रनाथ टैगोर का जन्म-दिन है। हम आशा करते हैं कि उनका स्मरण भी, हमने जो महान् स्मरण अभी किये हैं, उनमे समाविष्ट होगा। रवीद्रनाथ ठाकुर का मत्रवाक्य था—ईशावास्यमिद सर्वम्—जो ईशावास्य उपनिषद् का पहला मत्र है। देवेद्रनाथ टैगोर, जोकि उनके पिता थे, उन्होने इस वचन के आधार पर समाज के लिए अपने सर्वस्व का त्याग किया था। उसीमे से रवीद्रनाथ टैगोर की विश्व-मानव वृत्ति निर्माण हुई थी। उन्होने जो सस्था वनाई, उसका नाम भी उन्होने 'विश्वभारती' रखा। विश्वव्यापक दृष्टि रखनेवाले वह कवि थे। उनका भी स्मरण इस स्मरण के साथ जुड जाता है। इस तरह काम करने के लिए भगवान सव तरह से अनुकूल होकर हमारा उत्साह बढा रहा है।

नवां सर्वोदय-सम्मेलन
कालड़ी, ८ मई १९५७

९ : : विश्व-शांति का आधार

आज मै उस विठोवा-मदिर के शिखर के सामने बैठकर बोल रहा हू, जिसका दर्शन कर पाच-छ सौ साल से हरिजन वापस लौटते थे। वह यात्रा के लिए जाते थे, लेकिन उन्हे मदिर के अदर जाकर भगवान का दर्शन नही मिलता था, तो भी उनकी श्रद्धा अटूट रही। हिन्दू-धर्म की सबसे श्रेष्ठ उपासना उन लोगो ने की है और समाधान माना है कि हमे मदिर के शिखर का दर्शन होता है, तो हमारी यात्रा सफल हो गई। उन दिनो वे लोग पैदल आते थे और अन्दर प्रवेश नही मिलता था तो उसकी शिकायत करने के वजाय वे समझते थे कि शिखर का दर्शन हुआ तो भगवान का दर्शन हुआ। भगवान का दर्शन होता है और हर जगह होता है, जो उसके लिए प्यासा होता है।

कालपुरुष अपना काम कर रहा है। दस साल पहले एक महापुरुष (साने गुरुजी) ने यहा पर अनशन किया था। हरिजनो की वेदना उनके हृदय मे प्रकट हुई और उनके अनशन से मदिर के दरवाजे हरिजनो के लिए खुल गये, लेकिन फिर भी मदिर मे अहिन्दुओ का प्रवेश अभी तक नही हुआ था। हमने नम्रतापूर्वक जगन्नाथपुरी में उसकी कोशिश की थी, लेकिन जहा से नानक को वापस लौटना पडा था वही से मुझे भी वापस लौटना पड़ा, इसलिए कि एक बहुत ही श्रद्धा-भक्तिमती फ्रेंच महिला मेरे साथ थी। मैने उचित समझा कि जहा उस महिला का प्रवेश नही हो सकता है, वहा मुझे नही जाना चाहिए, बावजूद इसके कि मदिर की मूर्ति मे मेरी ठीक वैसी ही गूढ़ श्रद्धा है, जैसी आम जनता की होती है और जिस श्रद्धा से लालायित

होकर अत्यन्त वेदना, यत्रणा और अपमान सहन करके वे यहा आते रहे। लेकिन मैने समझा कि मुझे वहा नही जाना चाहिए।

दूसरा प्रयत्न केरल मे गुरुवायूर मे किया था। वहा के लोगो ने इच्छा प्रकट की कि मै अपना नित्य का रामायण-पाठ मदिर मे जाकर करू। मदिरवाले इससे वडे प्रसन्न थे। लेकिन जब वे बुलाने आये तो मैने कहा कि "मेरे साथ कुछ ईसाई और मुसलमान भाई भी है। वे मेरे साथ रामायण-पाठ मे बैठते है। अगर आप उनके साथ मुझे आने देगे तो मै आऊगा।" उन्होने कहा कि आपका उद्देश्य हम समझ सकते है, लेकिन हम लाचार है। मैने अत्यत नम्रतापूर्वक उनसे कहा कि जमाना वदल रहा है। इसका थोडा-सा खयाल करे कि मै वहा नही जा रहा हू, इससे मुझे कितना दु ख होना सभव है। मेरी आत्मा कह रही है और इसीलिए मै नम्रता-पूर्वक निवेदन करता हू कि उससे ज्यादा दु ख गुरुवायूर के देवता को होगा कि बाबा मेरे पास आना चाहता था, लेकिन नम्रता और भक्ति से आनेवाले उस मेरे प्यारे वन्दे को मेरे पास नही आने दिया। इस घटना पर केरल के सभी अखवारो मे चर्चा हुई। कुछ अखवारो ने मेरा विरोध किया, पर बहुत-से अखवारो ने उनका विरोध किया, जिन्होने मुझे वहा जाने की इजाजत नही दी थी। मुझे लग रहा है कि काल-पुरुष एक माग कर रहा है।

एक भाई ने मुझसे कहा कि "गाधीजी की एक मर्यादा थी। जिन मदिरो में हरिजनो को नही जाने देते थे, वहा उन्हे जाने देना चाहिए, यही उनका आग्रह था, लेकिन आप इससे ज्यादा आग्रह क्यो रखते है?" मैने कहा, "इसमे अन्तरात्मा जो प्रेरित करती है, वही करता हू। अपने विचारो के लिए मै अपने को ही परिपूर्ण जिम्मेदार मानता हू।"

यहा पढरपुर मे जब आना हुआ, तब चर्चा चली कि मै अहिन्दुओ को लेकर मदिर मे घुसनेवाला हू, खास तौर से मुसलमानो का नाम लिया जाता था। लेकिन लोग जानते नही कि इस तरह घुसना मेरे लिए असभव है। आक्रमण करना न मेरे शील मे है, न मेरे विचार मे है और न मेरे गुरु ने मुझे ऐसा सिखाया है। मुझे कोई जबरदस्ती नही करनी है। पढरपुर के विठोबा के लिए मेरे मन मे जो भक्ति है, उसका साक्षी और कोई नही हो सकता है, उसका साक्षी साक्षात् भगवान ही हो सकता है।

पुडलीक के मदिर के सचालक मेरे पास आये और उन्होने कहा कि आप अपने सब साथियो के साथ मदिर मे आ सकते है। उसके बाद रुक्मिणी माता के मदिर के ट्रस्टी आये। अन्त मे विठोबा के मदिर के ट्रस्टी भी आये। मैने उनसे लिखित आमत्रण मागा और विनोद मे कहा कि "रुक्मिणी ने भी स्वय भगवान को पत्र लिखा था।" उसके बाद उन्होने मुझे पत्र दिया और वडे प्रेम से मुझे वहा बुलाया। उन्होंने मुझपर जो उपकार किया है, उससे वढकर उपकार आजतक किसीने नही किया है।

मेरी आखो से घटेभर अश्रुधारा बहती रही, क्योकि मुझे वहा कोई पत्थर नही दीखा। जब मैं मदिर मे जाने लगा, तब किनकी सगति मे जा रहा था ? (इस समय विनोबाजी रुके। उनकी आखो से आसू बहने लगे।) वे थे—रामानुज, नम्मालवार, ज्ञानदेव, चैतन्य, कबीर और तुलसीदास। धन्य है वह मदिर ! बचपन से जिनकी सगति मे आजतक रहा, उन सबकी मुझे याद आ रही थी और जिनकी सगति मे मै पला, उन सबका स्मरण मुझे होता था। दर्शन के लिए मैने जब उस मूर्ति के सामने अपना मस्तक झुकाया, तब मैने अपनी मा को वहा देखा, अपने पिता को वहा देखा और अपने गुरु को वहा देखा। मैने किसको वहा नही देखा ? जितने लोग मुझे पूज्य और प्रिय है, वे सब मुझे वहा दिखाई दिये।

मेरे साथ दो बहने थी फातमा और हेमा। एक मुसलमान, दूसरी ईसाई। पुजारियो ने दोनो से कहा कि आप भगवान को स्पर्श करिये। यहा एक रिवाज है, भगवान को आलिगन देते है। दूसरे मदिरो मे ऐसा रिवाज नही है। वहा भगवान को छूते नही है। "रखुमादेवी वरु। हात विण स्पर्शिले, चक्षुविण देखिले। ब्रह्म गे माये"—बिना आख के भगवान को देखा और बिना हाथ से भगवान को स्पर्श किया ! तो फातमा से और हेमा से कहा गया कि तुम भगवान को छुओ। दोनो ने भगवान को स्पर्श किया। दोनो के स्पर्श से मेरा खयाल है कि भगवान का शरीर रोमाचित हुआ होगा। एक लडकी मुसलमान है, जिसने एक जैन लडके के साथ शादी की है और वह शादी मेरे हाथो से ही हुई है। दूसरी जर्मन लडकी है, जो अपने देश को, माता-पिता को, भाई-बहन को छोडकर हिन्दुस्तान की सेवा मे आई है। गाधीजी के विचार पढकर, यहा जो छोटा-सा काम चल रहा है, उसे देखने के लिए वह आई है। ईसामसीह का नाम उसने नही छोडा है। उसे छोडने की जरूरत भी नही है। उसे वहा प्रवेश मिला तो मेरे दिल को अत्यत शाति मिली। काल-पुरुष अपना काम कर रहा है, इसका दर्शन मुझे हुआ।

आज विश्व मे शाति और प्रेम-शक्ति बढनी चाहिए। मदिर-प्रवेश की यह बहुत बडी घटना है। इसने शाति और प्रेम को बढावा दिया है। कालपुरुष बहुत विचित्र है। उसके काम करने के ढग बडे विचित्र है। इस साल हमारे पूजनीय नेता मौलाना अबुल कलाम आजाद को वह यहा से ले गया। ऐसे पुरुषो के लिए शोक करना मना है। मेरा खयाल है कि वह ऐसे मनुष्यो मे से थे, जिन्हे अरबी भाषा मे 'नफसुल मुत्मइन' यानी 'समाधान पाये हुए पुरुष' कहते है। वह राजनीति मे काम करते थे अवश्य, लेकिन उनके चित्त मे जो चीज थी, वह अगर किसीको देखनी है, तो उसे कुरान शरीफ के भाष्य मे उनकी प्रस्तावना पढनी चाहिए। अल्फातिहा पर उन्होने जो लिखा है, वह बेजोड है। उसमे उनका हृदय खुल गया है। उससे मालूम होता है कि वह कितने उदार थे, सर्वधर्म-समभावी थे और सामान्य संसार से ऊपर रहने की कोशिश करते थे। ऐसे पुरुष को काल-पुरुष ले गया।

ऐसे ही दूसरे लोगो को भी वह ले गया। लेकिन उनमे से तीन पुरुषो का मुझसे व्यक्तिगत, पर वहुत ज्यादा सबध आया है और उन तीनो ने भूदान-ग्रामदान के सेवा का क्या आदर्श होना चाहिए, यह उपस्थित किया है। इसी साल तीनो चले गये। वावा राघवदासजी, गोपवावू और लक्ष्मीवावू, तीनो घरवार सव छोडकर निरन्तर यात्रा मे थे।

माता पिता, बंधु सखा छाड़ि सब कोई।
असुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई॥

वावा राघवदास अत्यत निर्मल पुरुष थे—बिल्कुल औलिया। उनके हृदय को द्वष या वैर कभी छू नही गया। वह यात्रा करते हुए चले गये। वावाजी ने जव भूदान-यात्रा करने का तय किया, तो उन्हे १५० से अधिक सस्थाओ से इस्तीफा देना पडा था। उत्तर प्रदेश का वच्चा-वच्चा वावाजी को जानता है। ४० साल तक निरन्तर घूमकर उन्होने सेवा की है। आखिर मे वह सव छोडकर भूदान-यात्रा मे लगे थ, उन्हे सिर्फ दो-चार दिन वुखार आया और वह चले गये। श्री गोपवावू भी इसी तरह से काम के लिए कही गये हुए थे। वहा से शाम को वापस लौटे, भगवान के पास मानो सोने के समय ही जाना था, उसी तैयारी मे चद घण्टो मे भगवान के पास पहुच गये।

उनके चद ही दिनो के वाद लक्ष्मीवावू ठीक उसी तरह से चले गये। उस दिन वह १० मील की यात्रा कर चुके थे, दिनभर का काम पूरा कर चुके थे, शाम की प्रार्थना भी हो चुकी थी, फिर सोने के पहले पूर्व-तैयारी मे थे कि चद घटो मे चले गये। ये लोग भी गाधीजी की तरह दिनभर का काम पूरा कर चुके थे। गाधीजी रोजाना जितना कातते थे, उतना कात चुके थे और प्रार्थना के लिए निकले थे। उस दिन प्रार्थना के लिए उनके मन मे कितना भक्तिभाव भरा हुआ था, उसकी कल्पना हम कर सकते है, क्योकि उस दिन किसीसे वातचीत करने मे उन्हे प्रार्थना के लिए १० मिनट देरी हुई थी। प्रार्थना मे वह एक मिनट की देरी नही करते थे। इसलिए उस दिन उनके मन मे उतावली थी कि आज देरी हो रही है। यो परमेश्वर की भावना से भरे हुए और चित्त मे कुछ अपराध की भी भावना लिये हुए वह प्रार्थना के लिए पहुचे और भगवान् ने उन्हे ऊपर से ही उठा लिया। इससे अधिक धन्य मृत्यु क्या हो सकती है!

एक भाई ने मुझसे तत्त्वज्ञान का सवाल पूछा था कि "गीता मे कहा है कि जो भक्त होते है, उनके मन मे किसीके लिए उद्वेग नही होता है। इतना ही नही, वल्कि दूसरो के मन भी उसके लिए भय या उद्वेग नही होता है। गाधीजी अगर पूर्ण भक्त थे तो उनपर इस तरह द्वेष का अस्त्र कैसे लागू हुआ?" मैने जवाव दिया कि गाधीजी व्यक्ति नही थे और वह यदि व्यक्ति थे, तो इतने निर्भय और निर्मल थे कि हमारा वडा भाग्य है कि हमने अपनी आखो से उन्हे देखा और उनके चरणो

मे वैठकर कुछ काम किया। परतु वह साधारण व्यक्ति नही थे, सारे समाज के पापो का वोझ सिर पर ढोनेवाले महापुरुष थे। ईसाई समाज ईसामसीह के वारे मे आजकल कहता है कि उन्होने दुनिया के पापो का प्रायश्चित्त किया। ईसा तो ईसा ही थे। आज वह हमारे लिए देवता-स्वरूप हैं। उनके साथ दूसरे किसी पुरुष की तुलना अपने मन मे भी नही करता हू, लेकिन इतना कहने मे कोई दोष नही है कि जिस तरह दुनिया के पाप की जिम्मेदारी ईसामसीह महसूस करते, वैसे ही महात्मा गाधी सबके पापो की जिम्मेदारी महसूस करते थे। हमे लगता है कि उन्होने हम सब लोगो के पाप अपने सिर पर ढोये, इसीलिए उनका जो अत हुआ, वह अत धन्य है। ये तीनो पुरुष भी गाधीजी की तरह दिनभर का काम पूरा करके भगवान के पास गये। तीनो कहते थे कि इसी प्रकार की मृत्यु आनी चाहिए। इसलिए भगवान ने उन्हे उठा लिया। इसमे उसकी असीम करुणा, असीम कृपा है। यही सोचकर मेरी कमर नही टूटी। मैने सोचा कि इसमे भगवान की करुणा है कि वह भक्तो को ठीक उसी ढग से अपने-आप बुला लेता है, जैसा कि वे चाहते है। यह सोचकर मैने शक्ति महसूस की। आज सुवह रमादेवी मिलने आई थी। उनसे वात करते हुए मैने यही विचार रखे थे और मुझे कहने मे खुशी होती है कि रमादेवी और उनके साथी, उडीसा के भाई-वहन इस मृत्यु के वाद काम करने के लिए और अधिक सन्नद्ध हो गये हैं। वे घर-घर सर्वोदय-पात्र पहुचायेंगे—ऐसा उन्होने सकल्प किया है। उसे वे गोपवावू का स्मारक समझते हैं। मै मानता हू कि उनका इससे वेहतर स्मारक हो नही सकता।

हरकोई विश्व-शाति चाहता है। सारे विश्व को इस वक्त उसकी वहुत वडी तृष्णा है। लेकिन हममे से एक महापुरुष उसके लिए कोशिश कर रहा है। भसाली-भाई के उपवास का आज साठवा दिन है। उन्होने ६६ दिन उपवास करने की वात सोची है। विश्व-शाति के लिए और आणविक अस्त्रो के प्रयोग वद हो, ऐसी भगवत् प्रार्थना के लिए वह उपवास कर रहे हैं। मैने उन्हे पत्र लिखा कि "आप तप कर रहे हैं, लेकिन उसे आप तप नही मानते है, वल्कि भगवान् की प्रार्थना मानते हैं, यही आपके काम का बल है। उससे आपका यह तप वडा वलवान हो जाता है और आशा है कि भगवान इसमे आपको परिपूर्ण शाति देगा।" उनकी तरफ से अभी आये हुए एक भाई ने कहा कि "भसालीभाई कहते थे कि आजतक मैने वहुत से प्रसगो मे वहुत उपवास किये है, लेकिन इन उपवासो मे जितनी शाति और आनद मुझे हासिल हुआ है, उतना उसके पहले कभी भी नही अनुभव हुआ था। मुझे मालूम ही नही हो रहा है कि मै खाता नही हू। उपवास चल ही रहा है और ६६ दिन परमेश्वर की कृपा से निभ जायगे।"—यह वहुत वड़ी चीज है और इससे हम सवका वल वढना चाहिए।

कोई अगर यह पूछे कि इन उपवासो का क्या परिणाम होगा? क्या जिस आशा

से उपवास किये जाते है, वह आशा साकार ? होगी, तो इसका मै जवाव देता हू। यह सवाल हमारे लिए शोभादायक नही है। कौन-सी ऐसी चीज है जो भगवान की प्रार्थना से सफल नही हुई है ? भसालीभाई को जहातक मै जानता हू वह ऐसे चद पुरुषो मे से है, जिन्हे भगवान ने भेजा है। वह बिल्कुल निर्मल, वालकवत् है। इसलिए उनकी यह प्रार्थना किस तरह काम करेगी, हम नही समझ सकते है, परतु वह अवश्य काम करेगी, यह हम समझ सकते है। मै आप सबकी तरफ से उनकी प्रार्थना मे शामिल हू और सर्वोदय-समाज की तरफ से सारी दुनिया को मै कहना चाहता हू कि हम कमजोर है, हममे कोई ताकत नही है, परतु भगवान ने ये आणविक अस्त्र मनुष्य के नाश के लिए नही, वल्कि कल्याणके लिए ही भेजे है। इसलिए भसालीभाई जैसा मनुष्य विश्वशाति के लिए इतना तप करने के लिए तैयार है।

इस साल प्यारेलालजी ने ऐसा काम किया है कि उसके लिए हमे उनका बहुत ऋणी होना चाहिए। 'गाधीजी के अतिम दर्शन' ('लास्ट फेज़') किताव उन्होने दो खण्डो मे प्रकाशित की है। वे दोनो खड एक-से-एक वढकर है। दूसरा खड मै अभी वारीकी से देख रहा हू। प्यारेलालजी ने जो चीज उपस्थित की, वह उनके सिवा दूसरा कोई नही कर सकता था। मै चाहता हू कि वह सारा लिखने मे उनका जो अनुभव हुआ है, उसका कुछ साराश इस सम्मेलन मे सुनाये। गाधीजी के मन मे ट्रस्टीशिप का सिद्धात किस तरह का था, वह आगे क्या करना चाहते थे, इस वारे मे प्यारेलालजी जितना जानते है, उतना और कोई नही जानता है।

आज मेरा दिल भरा हुआ है। सुवह मेरे कुछ मित्र मुझसे मिलने आये थे। वे कह रहे थे कि सम्मेलन मे देश के सामने कई समस्याए है, उनके वारे मे कुछ सोचना होगा। मैने कहा कि मैने अपने मन मे यह सोचा है कि यह सम्मेलन स्नेह-सम्मेलन वने। अगर यह सचमुच मे स्नेह-सम्मेलन हो सके तो हमारा काम वन गया। दुनिया मे वहुत-से सम्मेलन होते है, कुछ स्पर्धा-सम्मेलन, कुछ मत्सर-सम्मेलन, कुछ अविश्वास-सम्मेलन, कुछ सम्मेलन शाति के नाम से होते है, लेकिन अशाति के कारण बनते है। यो तरह-तरह के सम्मेलन होते है, लेकिन हमारा यह सम्मेलन सचमुच स्नेह-सम्मेलन सावित हो जाय तो हम सव खुशी मे नाचेंगे। इस दुनिया मे जिस चीज की कमी है, जिसकी वहुत जरूरत है, वह चीज है स्नेह।

स्नेह का मतलव आसक्ति नही है। स्नेह मेरी व्याख्या के अनुसार है—प्रतिरोधी प्रेम, अनुरोधी प्रेम नही है। अनुरोधी प्रेम मे सामनेवाला जब मुझपर प्रेम करता है, तब मै भी उसपर प्रेम करूगा। यह जो प्रतिक्रिया-रूप प्रेम पैदा होता है, उसमे आत्मा की कोई शक्ति प्रकट नही होती है। उसमे प्रेम ही प्रेम को खीच लेता है। ऐसा प्रेम जानवरो मे भी होता है। गाय और कुत्ता भी पहचान लेते है कि सामनेवाला प्रेम करता है और इसलिए वे प्रेम का जवाव प्रेम मे देते है। यह तो प्रेम का स्वभाव ही है। पर प्रतिरोध-प्रेम मे अगर कोई हमारा वैर करता

है, हमसे द्वेष करता है, तो उसपर भी प्रेम करना होता है। यह जो प्रेम है, वह 'स्नेह' कहलाता है। जो घर्षण मे डाला जाय और सारी दुनिया मे ठडक पैदा करे, ऐसा पराक्रमी प्रेम। द्वेष करनेवाले पर भी जिसका आक्रमण होता है, वह प्रतिरोधी प्रेम कहलाता है। पूछा जा सकता है कि 'क्या सामान्य जीवो के लिए यह सभव है?' मै नम्रतापूर्वक कहना चाहता हू कि यह पूर्णत सभव है। यह इस जमाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। कार्ल मार्क्स ने हमे एक बहुत बडी चीज सिखाई है कि दुनिया मे कुछ गुण और क्रियाएं ऐतिहासिक आवश्यकता से पैदा होती हैं।

प्रतिरोध-प्रेम इस जमाने की माग है। इसके अलावा हमारे सतो की सिखावन है और भारत की हड्डी मे यह चीज पडी है। इसलिए वह यहा क्यो नही पैदा होगी? द्वेष करनेवाले पर हम प्रेम क्यो न करे? वह हमारे हर दोष की पूरी छानबीन करके दुनिया के सामने रखता है। उससे अधिक उपकार न मा कर सकती है, न बाप, न भाई। उससे हमे जो सीखने को मिलता है उतना गुरु से भी नही मिलता है। वह हमे बहुत बड़ा शिक्षण देता है और अतर्मुख बनने की बात सिखाता है। भगवान इस तरह से एक अत्यत उपकारकर्ता के रूप मे प्रकट होगे। फिर भी अगर हम उन्हे नही पहचानेगे तो किस रूप मे पहचानेंगे? हम पर प्यार करनेवाले के रूप मे प्रकट होगे तो हम उन्हे मा, भाई या मित्र समझेगे। लेकिन यदि वह अत्यत उपकारकर्ता के रूप मे प्रकट होकर हमारे दोषो का विश्लेषण करते है तो किस रूप मे पहचानेंगे? चाहे उनमे से कुछ गलत भी हो, तो भी वे हमे अतर्मुख होने के लिए प्रेरित करते हैं। गीता मे 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' आदि जो भक्त के लक्षण आये है, उनमे ये 'अद्वेष्टा' शब्द पर रामानुज ने जो भाष्य लिखा है वह अप्रतिम है। उन्होने कहा है, "ईश्वर प्रेरितानि भूतानि यद्वसति"—जब कोई हमसे द्वेष करता है तो ईश्वर-प्रेरित होकर करता है। भक्त किसीसे द्वेष नही करता है, क्योकि द्वेष करनेवालो मे परमेश्वर की प्रेरणा का आविर्भाव होता है और उसका हमपर बहुत उपकार होता है। मुझे इसका बहुत अनुभव है।

मुझपर अगर किसीने ज्यादा-से-ज्यादा उपकार किया है तो वह है, जिसने मेरी निन्दा की, मेरे दोष प्रकट किये। इसलिए मेरा अपना नियम बन गया है कि कोई मेरी व्यक्तिगत निन्दा करेगा तो उसको मेरी ओर जवाब नही दिया जायगा, क्योंकि मुझे उसमे उपकार का अनुभव आता है। इन सात सालो मे मेरी स्तुति चली, पर इधर आने पर कुछ थोडी निन्दा होने लगी तो मुझे खुशी हुई। येलवाल की परिषद् ने तो हमारे काम पर मोहर लगाई। बडे-बड़े नेताओ ने, जिनकी मैं इज्जत करता हू, जिनके लिए मेरे मन मे बहुत आदर है, इस काम की इज्जत की और स्तुति की। मुझे ईसामसीह का वाक्य याद आया, "तुझे धिक्कार है, जब सब तेरी प्रशसा करते है।" इसलिए मुझे अच्छा लगने लगा कि कुछ टीका, कुछ

निन्दा चली है। अगर हमारा थोडा-सा दोप देखकर किसीने उसे हमारे सामने रखा, तो हमे मानना चाहिए कि उसने वैज्ञानिक का काम किया। वैज्ञानिक खुर्दबीन लेकर बताता है कि आपके पेट के अन्दर जहरीले जन्तु पडे है। वे बिल्कुल छोटे-छोटे होते है, लेकिन खुर्दबीन से बडे बनाकर वह हमे दिखाता है। इस खुर्दबीन का हमपर बडा उपकार है। उसी तरह कोई हमारे छोटे-से दोपो को बडा करके दिखाता तो उसका हमपर बहुत उपकार होता है। इसलिए जब यहापर मुझपर थोडी-सी टीका होने लगी तो यहा मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी इन सात सालो मे कभी नही हुई।

आत्मशक्ति अपने देश की चीज है, यह शुद्ध स्वदेशी चीज है। इस देश मे भगवान ने वेद, उपनिपद्, गीता आदि ग्रन्थ पैदा किये, इस देश मे रामकृष्ण परमहस ने सब धर्मों के समन्वय की साधना की, इस देश मे श्री अरविन्द ने 'अतिमानस' भूमिका का विचार दिया और इस देश मे गाधीजी हुए, जिन्होने हमारे उद्धार के लिए बलिदान दिया। यही इस देश की शक्ति है। अगर हम इस शक्ति को नही पहचानेगे तो हमारे पास दूसरी कौन-सी शक्ति है? आज हम ३०० करोड रुपया हर साल सेना पर खर्च करते है, उसीसे हमारे प्राण कठ मे आये है। इस गरीब देश के लिए यही बडा भारी खर्च मालूम हो रहा है, लेकिन उतना रोजाना खर्च करनेवाले देश पडे हुए है। अमरीका और रूस मे सेना पर जो खर्च किया जाता है उसके आकडे ज्योतिषशास्त्र के आकडो की तरह है। उनके सामने हम क्या है? हम ३०० करोड खर्च करके रूस और अमरीका के खिलाफ लड सकेंगे, ऐसी आशा किसीने नही की। यह तो आपसी डर के कारण खर्च हो रहा है। पाकिस्तान हिन्दुस्तान से डरता है, हिन्दुस्तान पाकिस्तान से। हम ३०० करोड क डर खरीद रहे है, तो पाकिस्तान १०० करोड का डर खरीद रहा है। इससे हम अपने-आपको कुठित कर रहे है। हमारे देश मे एक बडा भारी 'सोर्स' (साधन) है, जिसे 'टैप' (उपयोग) करना होगा।

देश मे एक शक्ति है, उसे बढाना होगा, अन्यथा भारत के पास दूसरी कौन-सी शक्ति है। जहापर जिन्होने अहिंसा के दर्शन किये, वे 'महावीर' कहलाये। हम यह समझे हुए है कि वीर पुरुप वे होते है, जो निर्भय होते है। लेकिन महावीर वे होते है जो न सिर्फ निर्भय होते है, बल्कि सामनेवाले को निर्भय बनाते है। ऐसे स्वय निर्भय होकर दूसरो को निर्भय बनानेवाले 'महावीर' इस देश मे पैदा हुए। कितने ही लोग कहते है कि गुजरात के लोग 'शामूल' होते है, लेकिन 'श्यामल' तो भगवान का रग है। लोग कहते है कि गुजराती बस व्यापार-व्यवहार ही जानते है। लेकिन जरा सोचिये तो कि आपके पास जो दौलत है, वह कौन-सी? उसका भान हमे अभी तक नही हुआ है। गुजरात मे कुल किसान मासाहारी नही है। कुल दुनिया मे हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है, जहा जमातो-की-जमातो ने मास का परित्याग

किया है। और हिन्दुस्तान मे गुजरात ही ऐसा प्रात है, जहापर किसान ने मासहार-परित्याग किया है। उसमे ज्ञान की कितनी ताकत है, उसे हम नही पहचानते हैं। यह ऐसी चीज नही है, जो जबर्दस्ती लादी जा सकती है। यह देश की विशेषता है।

आखिर गाधी आया कहा से ? मक्खन दूध से ही निकलता है। जिस समाज मे अहिंसा की तपस्या हुई, वही से गाधी आया। ऐसी तपस्या इस देश मे जगह-जगह हुई है। यहा सर्वोदय-समाज मे बैठकर हम कुछ ताकत महसूस न करे तो और कहा करेगे ? अमरीका के पास हमसे बारह गुनी अधिक जमीन है और वह भी अच्छी जमीन। हमारे पास मुश्किल से प्रति आदमी पौन एकड जमीन है। अगर हिन्दुस्तान को अमरीका जितना सम्पन्न और बारहगुना अधिक क्षेत्र मिल जाय तो शायद हिन्दुस्तान स्थूल दृष्टि से अमरीका की बराबरी कर सकेगा। इसलिए हमे समझना चाहिए कि हिंसा-शक्ति से हम किसी देश की बराबरी नही करते हैं। परमेश्वर की भारत पर यह बडी कृपा है कि उसने हमारे लिए कोई विकल्प नही रखा है, सिवा इसके कि या तो अहिंसा की शक्ति बढाओ या हिंसा के पीछे पड़कर नाममात्र की स्वतन्त्रता रखो और छाती मे धडकन बनाये रखो। इसके अलावा और कोई चीज यहा नही बन सकती है।

इस हालत मे हमे यहा बैठकर सोचना होगा कि हम करने क्या जा रहे है। हमने कहा था कि हम पक्ष-मुक्त समाज बनानेवाले है। लेकिन हममें से बहुत-से आज भी पक्षो मे पडे हैं। तो क्या हम सब पक्षो से समान वैरभाव रखनेवाले हैं या हम सब पक्षो से ऊचे है, ऐसा अहकार रखनेवाले है ? सब पक्षो से मुक्त हम इसलिए होना चाहते है, क्योकि हम नम्रता से सबकी सेवा करना चाहते हैं। सेवा करनेवाले दूसरे भी होते हैं। सेवा का एक जरिया सत्ता है। अगर हम उस जरिये को निषिद्ध मानते हैं तो फिर हमने स्वराज्य लिया ही क्यो ? इसलिए यह भी चलना चाहिए और ठीक से चलना चाहिए। ठीक से न चले तो उसपर टीका भी होनी चाहिए। सत्ता के जरिये कुछ सेवा जरूर होती है, लेकिन सत्ता के जरिये कुल सेवा नही होती है। कुछ ऐसी बुनियादी सेवा होती है, जो सत्ता के जरिये नही की जा सकती है। ऐसी जो बची सेवा 'रेसीड्युरी सर्विस' (शेष सेवा) है, जो सरकारी यन्त्र से नही हो सकती है, वह हमे करनी चाहिए। इसलिए अपना यह समाज सबकी सेवा करनेवाला होगा। यह अपने देश की शक्ति, जिसे हम जन-शक्ति या लोक-शक्ति कहते है, जिस शक्ति को पढरपुर मे परिपुष्ट किया है, उसे हम विकसित करे और उसे विकसित कैसे कर सकते है, इसके कार्यक्रम के बारे में सोचे। हमे सोचना होगा कि हम किस तरह से अपने देश मे पडी हुई गुप्त शक्ति को प्रकट कर सकते हैं और कोई 'गतिशील कार्यक्रम' ले सकते हैं। मुझ अकेले को यह नही सूझेगा, सबको इसपर सोचना होगा। आज शस्त्र-शक्ति जिस तरह विकसित हुई, उसके पीछे १० हजार साल की तपस्या है। उसपर कितनी ताकत लगी

है, कितने प्रयोग हुए है, कितना पैसा खर्च हुआ है ? उसी तरह हमे अहिंसा के प्रयोग करने होगे, ताकत लगानी होगी, तब हिन्दुस्तान की शक्ति विकसित होगी और तब उसमे से कुछ बन पायगा।

आज शस्त्र-शक्ति विकसित होते-होते इस हद तक पहुची है कि उससे कुछ बनता नही। इसलिए अहिंसा की शक्ति को विकसित करने के प्रयोगो पर समय देना होगा और त्याग करना होगा। इसमे नम्रता सबसे ज्यादा आवश्यक है। भगवान् ने गीता मे ज्ञान के लक्षणो मे प्रथम लक्षण कहा है 'अमानित्वम्।' नम्रता के बिना हृदय खुला नही रहता है। इसलिए हमे नम्रता से ज्ञान पाना चाहिए। बाकी अपने कुल काम हम सरकार पर सौप सकते है। वे काम सरकार से होने चाहिए और ठीक ढग से होने चाहिए। हम भी वे काम करे, लेकिन हमारा मुख्य काम सत्याग्रह-शक्ति को विकसित करना है, जो हमे बापू ने सिखाया था। 'सत्याग्रह' शब्द के उच्चारण से आनन्द होना चाहिए, लेकिन आज उस शब्द के उच्चारण से भय पैदा होता है। यहातक हमने अपने आचरण से उसे नीचे गिरा दिया है। अब हमे उस शक्ति को विकसित करना है। इसीलिए मैंने इस वक्त प्यारेलालजी को सम्मेलन मे आने का निमन्त्रण दिया। मै ढेबरभाई से भी कहता हू कि आप मदद देने आइये। कुछ हमे सूझता है, कुछ ढेबरभाई को सूझेगा, कुछ और किसीको सूझेगा। यहापर जो साहित्यिक बैठे है, उनसे मदद मागूगा। हम तो सबके सामने सिर झुकाकर बोल रहे है। जहा हमने भगवान् के सामने सिर झुकाया, वहा सबके सामने नम्र होकर प्रार्थना कर रहे है। जो काम भगवान् भारत से चाहता है, उसके लिए हमे अत्यन्त नम्र बनना पडेगा।

शान्ति-सेना के बारे मे मै सोचता था। मै एक महाभ्रम मे था कि बापू की आखिरी इच्छा थी शान्ति-सेना की स्थापना, जो पूरी नही हो सकी थी, शान्ति-सेना नहीं बन सकती थी, लेकिन एक दिन मेरा भ्रम दूर हो गया। १० साल तक जो बात मेरे दिमाग मे नही बैठी थी, वह एक दिन मे बैठ गई। इस साल गाधीजी के स्मृति-दिवस पर मैंने कहा कि शान्ति-सेना बन चुकी। उसका प्रथम सेनापति बन चुका, उसका प्रथम सैनिक बन चुका। वह अपना काम करने चला गया। अब हमे उसके पीछे जाना है। गाधीजी शाति-सेना के प्रथम सेनापति थे और प्रथम सैनिक भी थे। सेनापति के नाते उन्होने आदेश दिये और सैनिक के नाते उसका पालन करने चले गये। इसलिए इस भ्रम मे नही रहना चाहिए कि शान्ति-सेना नही बन सकी। हमे समझना चाहिए कि शान्ति-सेना की स्थापना हो चुकी, एक बडा शान्ति-सैनिक बन चुका। अपना काम कर चुका और हमारा मार्गदर्शन कर चुका। यह सब देखने को प्यारेलालजी की किताब देख सकते है।

दसवा सर्वोदय-सम्मेलन,

पढरपुर, ३० मई १९५८

१० : : 'जयहिन्द' से 'जयजगत'

हमारे साथी एक के वाद एक परमेश्वर के पास पहुच रहे है, जिनके साथ हमने काम किया है। किशोरलालभाई, जाजूजी, वावा राघवदास, गोपवावू, लक्ष्मी-बाबू, भारतन, देवदास सारे चले गये। इसलिए सालभर मे जहा दर्शन का आनद मिलता है, वही यह भी पता चलता है कि हममे से कौन जीवित है। कोकण मे रिवाज है, वारिश के वाद मित्र एक-दूसरे से मिलने आते हैं। इसलिए कि वारिश के वाद पता चले, कौन जीवित है और कौन नही है। यो तो ससार की अखड यात्रा चल ही रही है, लोग इस लोक से परलोक जा रहे हैं और नये-नये आ रहे है। इस बीच हमारी भी छोटी-सी यात्रा चल रही है। इस साल दो दफा मै बीमार पडा, इसका मुझे दु ख है। आज अजमेर शहर मे लोगो का मुझ पर प्रेम का वहुत वडा आक्रमण हुआ तो बचपन का स्मरण हो आया और एक-डेढ मील दौडना भी हुआ। इस तरह चलता ही रहता है। मालूम नही कबतक चलेगा? इतना अवश्य मालूम है, जैसा कि गुरु नानक ने कहा है, "हुक्म रजाई चल्लणा, नानक लिखिया नाल।"—उसके हुक्म से ही यह सारा चल रहा है। यही एक विश्वास, यही आशा और यही भरोसा लेकर हम काम कर रहे है। आप लोगो से मिलता हू तो वडा आनद होता है।

यह काम करनेवालो की एक जमात है—ऐसे लोगो की, जो ज्यादा सभ्यता भी नही जानते और उन सभ्यता न जाननेवालो मे शिरोमणि शायद मै ही हू। सारे-के-सारे व्यवहार से मै अपरिचित हू, उसके विषय मे नही जानता। जब मै बापू के पास पहुँचा था, तो एक जगली जानवर ही था उनकी सगति मे जानवरपन तो शायद मिट गया, लेकिन जगलीपन कायम है। उसे वह नही मिटा सके। इसलिए जानता नही, मैत्री कैसी रखी जाती है। फिर भी असंख्य मित्र अकारण प्यार करते है और पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस, चालीस-चालीस वर्षो से साथ है। इस तरह यह अकारण प्रेम करनेवालो की जमात है। इसके अन्दर एक तडपन है, स्नेह है। ऐसे ही हम एक-दूसरे से मिलने आते है। यही हमारे सम्मेलन का मुख्य कार्य है।

आज के आपके अध्यक्ष श्री केलप्पनजी है। हम वडे भाग्यशाली है कि ऐसो का साथ हमे मिलता है। उनका आधार नही होता तो केरल मे वह काम नही होता, जो हम कर सके। शांति-सेना की नई कल्पना हमें केरल मे ही सूझी। अगर वह हमारे साथ न होते, वहा शाति-सेना वनी, वह नही वन सकती थी। उम्र मे हमसे वे चार-पाच साल वडे है, लेकिन शाति-सेना का विचार, ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य का विचार उन्हे इतना आकर्षक मालूम हुआ कि सव छोड़कर वह इस काम मे कूद पडे। जब मै केरल मे था तो ढाईसौ ग्रामदान हुए, वे उन्हीके वदौलत हुए। मेरे केरल के छोडने के बाद ग्रामदान की सख्या दुगुनी हुई। केलप्पनजी ने बहुत

जोर लगाया। एक जमाने मे उन्होने रचनात्मक काम भी बहुत किया है। बहुत सालो से वह काम करते आये है। १९२५ मे उनसे मेरा थोडा परिचय हुआ। वायकम के सत्याग्रह के समय बापू की आज्ञा से मैं वहा गया तो उनसे सम्बन्ध आया था। वह समाजिक और राजनैतिक कार्य भी करते आये थे। वहा के सभी कार्यो मे उन्होने बहुत बडा हिस्सा लिया था, किन्तु राजनैतिक क्षेत्र को छोडना इन दिनो सबसे कठिन त्याग होता है। उन्होने जिंदगी मे बहुत त्याग किया है। आखिर यह भी त्याग किया और मोह से मुक्ति पाकर वह इस आन्दोलन मे कूद पडे। मैं मानता हू कि वह आज उस प्रान्त के शाति के अधार है। उनके पीछे लोगो की छोटी-सी जमात है, किंतु वह ऐसी है कि उसके शाति के लिए मर-मिटने मे कोई शक नही। अभी केरल मे अशाति हुई थी तो वहा शान्ति की स्थापना मे परमेश्वर ने उन्हे सफलता दे दी। ऐसे महान् साथी मिले है, उनसे हमे मार्गदर्शन मिल सकता है। यह हमारा बडा सौभाग्य है।

जहा हम रोज कुछ-न कुछ बोलते ही है, वहा नई बात क्या रखे, सिवा इसके कि मौन की महिमा प्रकट करे? शब्द से भी हम वह महिमा प्रकट कर सकते है।

हम समझते है कि यह साल हमारे लिए आत्म-परीक्षण और निरीक्षण का साल था। १९५७ तक हमने जाहिर किया था कि जो दिशा हमे सूझेगी, उस ओर हम आगे बढते जायगे। हमे कुछ नई बाते सूझी है, उन्हे हमने आपके सामने रखा। जो असफलता मिली है, उसकी पूर्ति के लिए आप काम मे लगे ही है। जहा काम का सम्बन्ध आता है, वहा हमे कुछ-न-कुछ सूझता ही है। एक अवधि तक काम का अनुभव लोगो को आया। अब थोडा चिंतन और ध्यान करना बहुत जरूरी है। इसलिए एक साल से यह हमारे लिए ध्यान-काल चल रहा है। हम निरीक्षण करते है। हमने तो यही कहा था कि यह आरोहण है, आन्दोलन नही। हम एक-एक शिखर चढने की कोशिश कर रहे है। एक-एक शिखर चढते है, बीच-बीच मे ठहरते है और देखते जाते है तो स्पष्ट दर्शन होता है। ऋग्वेद मे कहा है

> यत् सानो सानुं आरुहत्। भूरि अस्पष्ट कर्त्वम्।
> तद् इन्द्रो अर्थं चेतति।

अर्थात्—एक शिखर से दूसरे शिखर पर चढते है तो फिर-फिर से दर्शन होता है। चढने के बाद जरा रुककर देखते है तो पता चलता है कि हमने कौन-सी गलतिया की है, कहा तक आगे बढना है। इन दिनो आलोचको ने भी हमे बहुत मदद पहुचाई है। इस आन्दोलन पर काफी आलोचना हुई, जिससे हमे बहुत लाभ हुआ। हम उन सभी आलोचको का उपकार मानते है और चाहते है कि इसी तरह आन्दोलन पर आलोचना एव चर्चा चले। कुछ दोष-दर्शन भी हम चाहते ही है। वह सारा हमारे काम मे मदद देगा। उस अनुभव से हमे कुछ सूझा भी, जिसे आपके सामने रखता हूं।

समझने की जरूरत है कि अभी दुनिया का कुछ विचार-प्रवाह बदल रहा है।

कुल दुनिया मे, जिसमे हम भी है, वे विचार-प्रवाह जोरो से वह रहे है और हमे प्रेरित भी कर रहे है। अभी एक भाई इग्लैण्ड से आये थे। उन्होने हमसे कहा कि "हम भूदान-आन्दोलन को देखना और उससे कुछ लेना भी चाहते हैं। हम आशा रखते है कि हिन्दुस्तान दुनिया को शाति की राह दिखायेगा।" मैने कहा, "हिन्दुस्तान तो दिखायेगा ही, लेकिन इग्लैण्ड भी दिखा सकता है।" उन्होने पूछा, "इस आशा के लिए आपका क्या आधार है?" हमने कहा, "इग्लैण्ड हिन्दुस्तान पर अपनी मालकियत मानता था, पर अब उसने उसे छोड दिया। इससे इग्लैण्ड की नैतिक शक्ति बढी है, ऐसा हम मानते है। मालकियत छोडने के इसी विचार के आधार पर ग्रामदान का आन्दोलन चल रहा है। इसलिए उसका आरम्भ इग्लैड ने ही किया है। बहुत-से लोग समझते है कि मालकियत-विसर्जन के इस आन्दोलन का आरम्भ १८ अप्रैल १९५१ मे हैदराबाद राज्य मे हुआ। किन्तु हम तो मानते है कि इसका आरम्भ इग्लैण्ड ने १५ अगस्त १९४७ के दिन किया और उससे हमे स्फूर्ति मिली।" यह सुनकर उस भाई को बहुत आनन्द हुआ और कुछ आश्चर्य भी। हमने उससे यह भी कहा कि "हम बहुत आशा रखते है कि इग्लैण्ड जैसा बलवान् देश इतने बडे साम्राज्य की सत्ता छोडने की हिम्मत कर सकता है तो वह यह हिम्मत भी कर सकता है कि हिंसा-शक्ति से सन्यास ले ले और अहिंसा का प्रयोग करे। सेना से मुक्ति पाने का विचार भी ऐसा बलवान् राष्ट्र ग्रहण कर सकता है।" हमने उससे यह भी कहा कि "लदन जैसा स्फूर्तिदायी शहर दूसरा कौन-सा हो सकता है, जहा दुनिया भर के स्वातन्त्र्यप्रेमी लोगो को आश्रय मिला है। मेजिनी को वहा आश्रय मिला है। डॉ० सन् यात सेन वही रहे थे। कार्ल-मार्क्स भी लन्दन मे रहे है। गाधीजी भी वही से प्रेरणा पाकर आये। इस तरह लन्दन को दुनिया के स्वातन्त्र्यप्रेमी लोगो का स्फूर्ति-स्थान मानना पडता है। इसीलिए मै इग्लैण्ड से यह आशा करता हू कि वह सामने आये और शाति का काम उठाये।" यह सुनकर उस भाई को बहुत ही आनन्द हुआ।

मैने आपको यह कहानी इसलिए सुनाई कि मेरे दिल मे क्या चल रहा है, यह आप जाने। मै अपने इस काम को राष्ट्रीय नही, जागतिक आन्दोलन मानता हू। जागतिक पृष्ठभूमि पर मै विचार करता हू कि इसमे कौन से कदम उठाये जाय? इसके लिए हमे सही तरीके ढूढने होगे और वह हम तभी कर सकते है, जबकि खुद को जागतिक परिस्थिति मे रख सके। इसीलिए हम 'जय जगत्' का उद्घोष करते है। राजस्थान मे हम आये तो गाव-गाव के लोग हमे अभिवादन करने के लिए 'जय जगत्, जय जगत्' बोलते है। यह कोई छोटी बात नही कि दस-ग्यारह साल मे हम 'जयहिन्द' से 'जयजगत्' तक पहुच गये है। यह इसलिए कोई छोटी बात नही कि यह एक सकल्प दुनिया मे काम कर रहा है, जो कुल दुनिया को एक करके ही रहेगा।

तव राष्ट्र-राष्ट्र के भेद टूट जायगे। इसके लिए विज्ञान भी उत्सुक है और उसका वल हमारे पीछे है। इन दिनो मे अपने पीछे विज्ञान का जितना वल महसूस करता हू, उतना इससे पहले कभी नही किया था। ग्रामदान और भूदान-विचार के पीछे आत्मज्ञान या वेदान्त का जितना वल है, उतना ही विज्ञान का भी वल है। विज्ञान हमे सकुचित मनोवृत्ति नही रखने देगा। वह इसके खिलाफ ही है। वह आवाहन कर रहा है कि "मानव, या तो मिट जा या एक वन जा, व्यापक वन जा। इसके सिवा तीसरी वात नही। अगर तू मिटना चाहता है तो मैं तुझे मिटा सकता हूं। और अगर व्यापक वनना चाहता है, तो उसमे भी मदद दे सकता हू। उसके लिए वातावरण तैयार है।" जव हम इसपर सोचेगे तो ध्यान मे आयेगा कि हमे अपनेको एक और व्यापक वनाना चाहिए। यह कैसे किया जाय, यह भी आज हमे विज्ञान के कारण सूझ रहा है। यह विचार हमे ऐसी कल्पना मे ला रहा है, जिससे हमे ध्यान मे आयेगा कि हम समन्वय की भूमिका मे काम कर रहे है।

आस्ट्रेलिया से एक भाई हमसे मिलने आये थे। उन्होने पूछा कि "आस्ट्रेलिया के लिए भूदान का क्या सन्देश है?" मैने कहा, "चीन और जापान के लोगो को यह आवाहन करो कि भाइयो, आप लोग हमारे देश मे आइये, हम आपका स्वागत करते है। यह भूमि आपका स्वागत करती है। यहा आकर आप प्रेम से रह सकते है। यहा ज्यादा भूमि पडी है। इसलिए आप यहा खुशी से आइये।" यही भूदान का विश्वमानवता का सदेश है। भूदान विश्वमानव वनाना चाहता है। अव वे दिन लद गये, जव हम अपने-अपने देश का अभिमान रखते और उसीमे मस्त रहते थे। किसी जमाने मे अपने देश का गौरव दूसरे देशो की कुछ न्यूनताओ के साथ करने मे लज्जत और शायद इज्जत भी मालूम होती थी। लेकिन आज तो न उसमे लज्जत है और न इज्जत ही। इस तरह स्पष्ट है कि यह हमारा एक सार्वराष्ट्रीय आन्दोलन है और इसी पृष्ठभूमि मे हमे काम करना है।

हमसे वहुत-से लोग पूछते है कि "कई छोटे-छोटे सवाल भी है—दु ख है, अन्याय है, भूमि के क्षेत्र मे भी वहुत-से अन्याय होते है। फिर छोटे-छोटे सत्याग्रह भी क्यो न चलाये जाय?" हम उनसे कहते है, "वापू के जमाने मे जो सत्याग्रह हो गये, अगर इस जमाने मे उन्हीका अनुवर्तन, वाह्य अनुकरण करे, तो वह ऐसा ही होगा, जैसे राणा प्रताप और शिवाजी का अनुकरण कर किले वनाना। उन दिनो किले देश की रक्षा कर सकते थे, पर आज किले वनाये तो वे वमवाजो को मदद ही देगे। उन्हे वम गिराना वहुत नजदीक हो जायगा, अनुकूल हो जायगा। इसलिए हम वापू के सत्याग्रह का स्थूल अनुकरण, स्थूल अनुवर्तन कैसे कर सकते है?" इसपर लोग यह कहते है कि "गाधीजी तो वहुत पुराने जमाने मे नही हुए, उनका जमाना अभी पुराना नही हुआ है। क्या इतने मे वहुत फर्क पड गया?" मै कहता हू, "भाई! हा, इतने मे वहुत-वहुत फर्क पड़ गया। एक फर्क तो यह कि वह विदेशी

राज्य मे काम करते थे और हम स्वराज्य मे काम कर रहे है। दूसरा फर्क यह कि वह अनियन्त्रित सत्ता मे काम करते थे, जबकि हम लोकशाही मे काम कर रहे है। तीसरा फर्क, जो मेरी दृष्टि से सबसे महत्त्व का फर्क है, यह है कि आज अणु-युग का अवतार हुआ है। ये बाते हम भूल नही सकते । गाधीजी के जमाने मे अणु शुरू हुआ था, पर आज उसका नया दर्शन हो रहा है । विज्ञान रुद्रावतार हो सकता है और वह विष्णु का अवतार भी। इसलिए यह सबसे महत्त्व का विचार है कि लोकशाही, स्वराज्य और विज्ञान के जमाने मे सत्याग्रह का रूप क्या हो? इस पर हम सबको गम्भीरता से सोचना होगा। अगर हम सत्याग्रही नहीं तो कुछ भी नही है। अगर हम कोई है तो सत्याग्रही ही है, याने हमारा और कोई दावा हो ही नही सकता । हमारे मार्गदर्शक इसी बात के तो गुरु थे । उनके पीछे उनके विचार के प्रचार की जिम्मेदारी आप और हमपर आई है और वह और भी बढ गई है। इसका चिन्तन हम सबको करना ही होगा। आज मानव के हाथ मे ऐसी शक्ति आ गई है कि हिंसा करनेवाले एक जगह बैठकर अस्त्र फेक कुल दुनिया का सहार कर सकते है । तब सवाल खडा होता है कि ऐसी स्थिति मे सत्याग्रह का स्वरूप क्या हो? स्पष्ट है कि कोई ऐसी शक्ति सत्याग्रही के हाथ मे चाहिए कि जैसे वे घरबैठे संहार कर सकते हैं, वैसे ही वह भी घरबैठे सारी दुनिया का बचाव कर सके। यह खोज का विषय है । हममे उन हिसको के हृदय मे इस तरह प्रवेश करने की शक्ति होनी चाहिए कि जिन हाथो बम बने, उन्ही हाथो को उन्हे समुद्र मे डुबो देने, नष्ट कर देने की प्रेरणा मिले और वे उन्हे नष्ट कर दे।"

एक अमरीकी भाई मुझसे अमरीका के लिए सदेश मागने आये थे। मै तो इस तरह कभी सदेश नही देता। मैने कहा, "अमरीका को सदेश देने की धृष्टता मै नही करूगा।" तो भी वह भाई कहने लगे कि "आप कुछ बताइय।" इसपर मैने कहा, "आप लोग ये जो तरह-तरह के शस्त्रास्त्र बनाते है, उन्हे खूब बनाये। उसमे कोई कमी न रखे, क्योकि उससे काम दिलाने का सवाल थोडा हल होगा। किंतु आगे जब क्रिसमस का दिन आये तो उस दिन हिम्मत के साथ भगवान् ईसामसीह का नाम लेकर वे सारे शस्त्रास्त्र समुद्र मे डुबो दे। आज तो आपके शस्त्रास्त्र रूस खतम करता है और रूस के शस्त्रास्त्र आप खतम करते है—आपके जलपोत वे डुबोते है और उनके हवाई जहाज आप। किन्तु इस तरह परस्पराव-लम्बन का काम क्यो किया जाय? इसलिए आप स्वावलम्बी बने। अमरीका के हवाई जहाज अमरीका ही डुबो दे और रूस के हवाई जहाज रूस ही खत्म करे। इसकी क्या जरूरत है कि मेरे हवाई जहाज वे तोडे और उनके मै तोडू?" मैने उस भाई से कहा कि "इस तरह अपने हाथो से अस्त्र बनाना और उसे डुबो देना एक खेल हो जायगा। हम दूसरे के शस्त्रो का खण्डन करे और वे हमारे शस्त्रो का खडन करे, इसके बजाय हम ही अपने शस्त्रो का विसर्जन कर दे।"

हमे गणपति की कहानी याद है। वचपन मे हमारे दादा गणपति-उत्सव करते थे। हम चदन घिस-घिसकर अपने हाथो गणपति की मूर्ति वनाते और उसकी पूजा करते थे। हमे उसमे वडा सतोष मालूम होता था। तेरह-चौदह दिन उसकी पूजा और आरती वगैरा होती थी। आखिर जव उस गणपति का तालाव या कुए मे विसर्जन करना पडता था तो हमे उस समय वडा दु ख होता था। खैर, इसमे क्या खूबी होगी, इसका हमारे चित्त पर वहुत असर होता था। 'आवाहन के वाद विसर्जन भी अपने ही हाथो से करना पडता था' इसका अर्थ यही है कि आपने ही उसे भगवान् के तौर पर वनाया। इस तरह हमारा शास्त्र सुझाता है कि भगवान् को वनानेवाले तुम हो। इसलिए सवसे श्रेष्ठ देवता मानव है। गणेश-पूजा की इस प्रक्रिया द्वारा हमारे पूर्वज हमे वताते हैं कि तुम पूजा तो करो, पर यह पहचान लो कि तुमने ही इसे वनाया है, इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले तुम ही हो। तुम्हारी ताकत से ही भगवान् वना है। ऋग्वेद मे एक मन्त्र आता है **अय मे हस्तो भगवान्, अय मे भगवत्तर**, याने मै भगवान हू और भगवान् से भी श्रेष्ठ हू। इससे वेहतर मन्त्र और कौन-सा हो सकता है? जहा पहले वाक्य मे ऋषि कहता है कि मै भगवान् हू, वही दूसरे वाक्य मे कहता है **भगवत्तर** याने भगवान् से श्रेष्ठ हू, क्योकि आखिर भगवान् अव्यक्त है और हम व्यक्त हैं। हमारे हाथो जो सेवा होगी, वह व्यक्त होगी और उसी सेवा के कारण उसका गौरव होगा। उस पूजा से भगवान् का वैभव वढ गया है। यही समझाने के लिए हमारे पूर्वजो ने गणपति-विसर्जन की प्रक्रिया हमे सिखाई है। उसका राज पीछे खुल गया। वह प्रक्रिया आवाहन की प्रक्रिया है। उसमे आवाहन के वाद विसर्जन किया जाता है। इसी-लिए हमने उस अमरीकी भाई को समझाया कि क्रिसमस के दिन अपने-अपने सभी शस्त्रास्त्र डुवो दीजिये। यही हमारा सदेश हे।

भाइयो, होली का त्योहार किसलिए आता है? हमारी सब आसक्तियो की चीजे जलाने के लिए। जरा देखो और सोचो कि सालभर मे हमारे मन मे क्या-क्या आसक्तिया होती है। हमारे मन मे जो आसक्ति है, उसे हम दूसरे को नही दे सकते, क्योकि वह दूसरे को भी विगाडेगी, दान लेनेवाला भी स्वार्थी वनेगा। इसलिए उसे जलाना ही चाहिए। कानून के हक की बात करते हो, मालकियत के कागजो की बात करते हो, तो वे कुल-के-कुल कागज जला दो। उससे वहुत अच्छा होगा, अपने देश मे वहुत वडी ताकत पैदा होगी। होली का त्योहार इसीलिए है।

एक सरकारी मन्त्री आये थे। कुछ वात चल रही थी। कहते थे कि "हमे चिन्तन-मनन के लिए समय नही मिलता।" मैने कहा कि "मनन के लिए समय नही मिलता तो वह मन्त्री कहा रहा? वह तो तन्त्री हो गया।" उन्होने कहा कि "क्या करें, वहुत फाइले होती है, वहुत रेकार्ड होता है, इसलिए समय नही मिलता।" मैने कहा, "रोज रेकार्ड रहता है, तो ठीक, लेकिन होली का भी दिन

होता है या नही ? बहुत ही अच्छा प्रयोग होगा, अगर होली के दिन कुछ फाइले उसमे डाल दी जाय। दुनिया मे कुछ त्योहार ऐसे होते है, जिस दिन हम अपनी आसक्ति जलाते है, तो सच्चे अर्थ मे त्योहार हो जाता है।"

हम कहना चाहते थे कि इस आन्दोलन को केवल एक राष्ट्रीय भूमिका पर मत मानो। जागतिक भूमिका इसके पीछे है, ऐसा मानो, तभी उत्साह आयेगा। समझ मे नही आता है कि कौन-सी ताकत मुझमे है। लोग मुझसे कहते है कि "आप तो बहुत कम खाते है", तो मै उनसे कहता हू, "मै आकाश खाता हू। आठ साल से मेरी यात्रा चल रही है। मेरा आकाश-सेवन चल रहा है। उससे मुझे ताकत मिलती है। इसलिए मरने के समय के पहले मै कभी नही मरूगा।" मुझे तो भास ही नही होता कि मै कुछ काम कर रहा हू। एक बहुत बडी ताकत, एक बहुत बडा विचार मुझे घुमा रहा है, मैं नही घूम रहा हू। आखिर हम और आप है कौन ? बिल्कुल नाचीज ! हमारी कोई हस्ती ही नही है। तामिलनाड मे मै घूम रहा था। माणिक्य वाचकर के भजन गाता था। कम-से-कम तमिल भजन गाने का नाटक तो मै करता ही था। माणिक्य वाचकर के भजन का एक वचन मुझे याद है

नान यारु ? यार आरिर ऐ न्नै

तामिलनाड का सर्वश्रेष्ठ महाकवि माणिक्य वाचकर कह रहा है, "मै कौन हू, मुझे कौन जानता है ? मुझे कोई नही जानता।" यह भजन मैने पढा तो मुझे लगा कि वह मुझे लागू हो सकता है। मुझे इस दुनिया मे कौन जानता है ? मै कौन हू ? मै बिल्कुल नाचीज हू और आप भी कौन है, जिन्होने इतना काम किया है ? अत्यन्त उपेक्षित लोग अगर कोई हो तो ये आप लोग है।

नवबाबू की ही बात देखिये। दो साल लगातार झगडा कर उन्होने सभा से मुक्ति पाई और इस आन्दोलन मे वह कूद पडे। मै उनकी तारीफ तो क्या करू ? इसके पहले भी कई बार मुझमे मिलने का मौका आता था, लेकिन एक शब्द से भी मैंने उन्हे यह कभी नही सुझाया कि आप यह काम सीखिये। व्यक्तिगत कर्तव्य के बारे मे सुझाने का मेरा स्वभाव ही नही है। लेकिन उसके दिल मे आग थी, इसलिए उन्होने वह पद छोडा। अब उनकी तारीफ मै करू तो उसमे शोभा नही, इसलिए मैं चुप रहा। किंतु उनके त्याग की इतनी उपेक्षा हुई कि इतनी गनीमत समझिये कि 'उन्होने मूर्खता की', ऐसा किसीने नही कहा। उन्होने बहुत बडा त्याग किया था, पर उसे कोई त्याग समझकर नही किया। उसमे उन्हे आनन्द महसूस हुआ और आनन्द का काम समझकर ही उन्होने यह निर्णय लिया। आखिर मुझसे रहा नही गया और उनके गाव की एक सभा मे मैंने उसका जिक्र कर ही दिया। मैंने कहा, "माणिक्य वाचकर भी एक राज्य के मुख्य मत्री थे और उन्होने वह त्याग दिया था। ऐसा ही भगवान बुद्ध ने किया। और ऐसा ही काम नवबाबू ने भी किया।"

हमारी एक लडकी अच्छी पढी-लिखी है। पहले प्रोफेसर थी। वह काम छोड-कर मेरे पास आई है। सात-आठ साल से मेरे साथ घूम रही है और काम कर रही है। कुछ ग्रथ भी उसने लिखे हैं। एक रचनात्मक कार्यकर्ता, गाधीवादी बुजुर्ग उसे सलाह दे रहे है कि "अरी लडकी, यह क्या कर रही है ? तू तो अभी जवान है। विनोवा बूढा हो गया । अभी तो तेरी जवानी का काल चल रहा है। जरा सोच। आगे चलकर कमजोर हो जायगी। इसलिए जरा स्थिर जीवन कर ले।" इतनी उपेक्षा, हद दर्जे की ! ऐसी हालत मे भी आप लोगो ने काम किया है। मै जानता हू कि भगवान् काम चला रहा है। भगवान् की ही कृपा है और इसीलिए यश-अपयश की तुलना आप मत कीजिये और काम करते जाइये।

कुछ लोग कहते थे कि "आपने इतना काम किया है, इतने ग्रामदान प्राप्त किये हैं, लेकिन इसके आगे का काम करने के लिए आप फेल हो गये।" मैने कहा, "मेरे फेल होने से आप पास होते हो तो मै पचास दफा फेल होने के लिए तैयार हू। मुझे वडी खुशी होगी। मेरे फेल होने से आप पास होते है, यह वोलने मे क्या आपको इज्जत मालूम होती है ? क्या यह आपको शोभा देता है ? क्या मेरे घर की लडकी की शादी थी ?" इस तरह जव मै सिंह-गर्जना करता हू तो मेरे सामने कोई नही टिकता। मेरा दर्शन होते ही और मेरी गर्जना सुनते ही लोग चुप हो जाते हैं।

भूदान मे चालीस लाख एकड जमीन मिली है और आठ लाख से ज्यादा वटी है। उसमे अच्छी फसल पैदा होती है। वाकी जमीन वाटना वाकी है। उसमे मदद की जरूरत है, वहुत मेहनत का काम है, जो लोग कर रहे हैं। उसमे कुछ ऐसी भी जमीन है, जिसे 'रिक्लेम' करना पडेगा। कल ही जयप्रकाशजी कह रहे थे कि "विहार मे इस जमीन के लिए सरकार ने वडी कजूसी से तीस लाख रुपया मजूर किया।" वहा के मत्री कह रहे थे कि "यहा कितने कम खर्च मे अच्छी-से-अच्छी फसल होती है, जवकि इस जमीन के लिए इतना अधिक खर्च करना पड रहा है।" सोचने की वात है, सरकार सिर्फ दूसरे राष्ट्रो के भय से सेना पर करोडो खर्च करती है। उसकी 'वेसिक एज्यूकेशन' (वुनियादी शिक्षा) कितनी महगी है। इन खर्चो मे कमी क्यो नही की जाती ? ध्यान रहे कि मै किसी पर निर्भर नही हू, लेकिन कम-से-कम इस काम के लिए करोड रुपये तो मिलने ही चाहिए थे। आप लोगो ने ही गलती की कि कई लाख एकड पडी जमीन के लिए कुछ ही लाख मागे और सरकार ने भी उसमे से कुछ ही लाख दिये। यह तो ऐसा ही किस्सा हुआ कि किसी भिखारी को कुवेर का दर्शन हुआ तो उसने उससे शाक के लिए चार

बडी स्कीम होती है। इसलिए आप लोगो ने दस करोड की माग क्यो नही की ?

मै कहना यह चाहता हू कि इस आन्दोलन को तराजू मे डालकर नापना नही है। हमे यह नही देखना है कि हमने कितने ग्रामदान प्राप्त किये है, कितनी जमीन प्राप्त की है। हा, जागतिक दृष्टि से सोचना है। तब आप इस तरह सत्यागह की बात नही करेगे। विज्ञान-युग मे छोटे सत्याग्रह नही होते। सत्य तो बडा ही होता है, जो सबका ध्यान खीच सकता है। हमे सबका ध्यान खीचने का अभ्यास करना चाहिए। विज्ञान-युग ने हम-आपपर सत्याग्रह का शास्त्र विकसित करने की जिम्मेवारी डाली है। इसलिए हमे सोच-समझकर ऐसी युक्ति खोजनी चाहिए, जिससे सामनेवाला अन्दर देखे और उसके हृदय मे धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र शुरू हो। क्रिकेट का खेल खेलनेवाले कहते है कि अगर ग्राउड परिचित हो, तो खेलने मे अनुकूलता होती है और अगर वह अपरिचित हो तो अच्छे खिलाडी होने पर भी तकलीफ होती है। इसलिए किस ग्राउड पर खेले, इसीका महत्त्व है। इसी तरह हम किस ग्राउड पर लडे, यही सोचने की बात है। इन दिनो यही माना जाता है कि लडाई शत्रु के क्षेत्र मे ही होनी चाहिए, ताकि हार होगी तो उसका नुकसान होगा और जीत होगी तो भी उसीका नुकसान होगा। इसी तरह मै कहता हू कि हम सत्याग्रह की लडाई सामनेवाले के हृदय-क्षेत्र मे लडे। उसे अन्दर से यह महसूस हो कि मै गलती कर रहा हू। अगर हमे ऐसी कोई युक्ति सूझे कि अन्याय करनेवाले मनुष्य के हृदय मे धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र की लडाई छिड जाय और वह यह सोचे कि मै गलती कर रहा हू, तभी वह सत्याग्रह होगा।

सेट पाल की बडी मशहूर कहानी है, जिसने ईसाइयत को खूब फैलाया। वह पहले कोई महापडित था और ईसाइयत के विरोध मे था। ईसा के शिष्य तो बिल्कुल ही सीधे-सादे थे। कोई मच्छीमार था तो कोई बुनकर। मच्छीमार को ईसा ने कहा, "Come and follow me and I will make you fishers of men" (तुम मेरे पीछे आओ, मै तुम्हे मच्छीमार नही, मनुष्यमार बनाऊगा।) वह अपना जाल छोडकर ईसा के पीछे गया। ईसा के शिष्य एक के पीछे एक मारे जाते थे, सताये जाते थे। यह पाल ही, जो पहले 'साल' था, उन्हे बहुत सताता था। एक बार ईसा के अनुयायी कही जा रहे थे और उनको पाल सतानेवाला था, पर उस पहली ही रात मे नीद नही आई और सपने मे भगवान् आकर बोले, "Saul, Saul! why do you persecute me ?" (मुझे क्यो सताते हो ?) साल ने कहा, "तुझे तो मै नही सता रहा हू। तुझे कब सताया है ?" तब ईसा बोले, "तू मेरे लडके को सताता है तो मुझे ही सताता है।" यह वाक्य उसने सुना और दूसरे दिन उसका परिवर्तन हुआ। वह साल का पाल होकर ईसा का सर्वश्रेष्ठ ऐसा शिष्य बना, जिसके दिल मे भगवान् का प्रवेश हुआ। इसी तरह सामनेवाले के हृदय मे ही हमारा प्रवेश होना चाहिए। जो ऐटम बम और हाइड्रोजन बम

वनाता है, उसकी योजना करता है, उसके हृदय मे ही लडाई शुरू हो कि "अरे, मैं यह ठीक नही कर रहा हू ।"

मनु ने कहा है कि "अपनी असफलताओ से तुम अपनेको अपमानित मत करो।" मैं आपसे कहना चाहता हू कि अगर हमे असफलता भी मिली हो, तो वह अत्यन्त उज्ज्वल है। अगर नही मिली हो तो वह उज्ज्वल है ही। इसलिए हम अपनेको कभी अपमानित न करे। हम यह समझे कि हमारा काम हम नही कर रहे है। हम तो नाचीज है। वह हमे चला रहा है, हिला रहा है, बुला रहा है, घुमा रहा है। ऐसी भावना लेकर ही हम काम करे। हम आपको यकीन दिलाना चाहते हैं कि यह जमात खम्मीर वनेगी और दुनिया के जन-समूह को परिवर्तित करेगी, इसमे कोई सदेह नही है। यह शक्ति हमारी नही, भगवान् हमसे यह काम करा रहा है। यह उसकी लीला है, वह नाचीज और कमजोर औजारो से काम करना चाहता है। ऐसी भावना, ऐसा विश्वास लेकर आप काम कीजिये, परीक्षण कीजिये, खूब निरीक्षण कीजिये, गलतिया सुधारिये और यह ध्यान मे रखिये कि वावजूद इन सव गलतियो के भगवान् का एक पवित्र हाथ हमारे सिर पर है। यह श्रद्धा आप रखिये।

ग्यारहवा सर्वोदय-सम्मेलन
अजमेर, २७ फरवरी १९५९

खण्ड २

१ : : सर्वोदय की विचारधारा

आज इस अवसर पर मुझे एक विशेष ही आनन्द की अनुभूति हो रही है। आप सब वैष्णव-जन होने की इच्छा रखनेवाले हैं और वैसी कोशिश करनेवाले हैं। आप लोगो की इस सगति को मैं अपना भाग्य मानता हू। यहा हम लोग कुछ चर्चा करेंगे और उसमे से कुछ नतीजे भी निकालेंगे, लेकिन मेरे लिए उन सब चर्चाओं से और नतीजो से भी विशेष लाभदायी बात यह है कि हम सब साथ मिल रहे हैं। आज सुबह मित्रो मे चर्चा हो रही थी कि हम हर साल एक सम्मेलन करे। सम्मेलन किसलिए ? मैंने सुझाया—"सेवको के आपस के सम्पर्क के लिए"—ये शब्द जोडे जाय।

यह सूचना स्वीकार करली गई और उसमे सुधार के तौर पर ये शब्द और बढाये गए—"विचार-विनिमय के लिए।" जब इकट्ठे होते हैं तो विचार-विनिमय तो हम करेंगे ही, इसलिए मेरे मन मे सम्पर्क शब्द ही काफी था, क्योकि शब्दो से जो विचार-विनिमय हम करते हैं, उससे भी अधिक गहरा विचार-विनिमय, मन से, मौन से, एक हवा मे बैठने से, एक श्रद्धा की अनुभूति मे, एक मत्र का मानसिक मनन करने मे, कर सकते हैं। हम सबने यहा एकत्र होकर अभी काता। यह दृश्य इन दिनो दुर्लभ-सा हो गया है। मैं उसका अत्यत प्यासा हू। इसलिए जब मैं इस उपासना मे सब भाई-बहनो के साथ शामिल होता हू तो चित्त मे एक ऐसी अवस्था का अनुभव करता हू, जिसको शायद समाधि कहना अनुचित न होगा। हमे एक मार्ग-दर्शन मिला था, अगर हम उस मार्ग-दर्शन मे चलने की फिर से प्रतिज्ञा करते हैं तो हमारे लिए बहुत है। इसीसे हमारा पुण्य-पुज बढेगा, शक्ति बढेगी।

सर्वोदय-समाज का हमारा यह सगठन एक ढीला-ढाला सगठन कहा जाता है। शब्द हमेशा विचार को ठीक बतलाता है, ऐसी बात नही है। अगर इसे सगठन कहना है तो मैं इसे सहज सगठन कहना चाहूगा। बेहतर तो यही है कि हम अपने मन मे समझे कि यह असगठन है। यह रचना नही है, बल्कि सहज सम्पर्क है। इसपर लोग आक्षेप करते हैं कि ढीले सगठन से क्या लाभ होगा ? मेरे खयाल मे यह आक्षेप सही भी है। हम अगर एक यत्र चलाना चाहते हैं तो उस यत्र को तग होना चाहिए। यदि घर्षण के डर से हम उसे ढीला रखें तो वह यंत्र काम नही देगा। यत्र चलाना है तो उसे तग रखा जावे और यह ध्यान रखकर कि उसमे

घर्षण होगा, उसमे स्नेह के लिए तेल डाला जाय। घर्षण के डर मे यत्र ढीला रखेगे, तो न घर्षण होगा, न तेल की जरूरत पडेगी, लेकिन साथ-साथ उस यत्र से कुछ काम भी नही होगा। "मास्टर मारे नहीं ने भणावे नहीं"—मास्टर न मारे न पढावे, ऐसी बात हो जावेगी। सर्वोदय-समाज के लिए किसी तरह की सघटना की कल्पना नही है, लेकिन इसका अर्थ यह नही कि हमारा काम विखरा हुआ होना चाहिए। हम जो काम करना चाहते है उसके लिए हमारे पास कोई सगठन नही है, ऐसी बात नही, बल्कि हमारे पास जो सस्थाए है और जो अलग-अलग काम करती है उन सबका सगठन हम करने जा रहे है, उसमे से ही 'सर्व सेवा सघ' पैदा हो रहा है। वह हमारे कार्य का यत्र होगा।

यह जो सर्वोदय-समाज है वह सह-विचार का, सह-चिन्तन का, तत्त्व-सकीर्तन का, नाम-जप का साधन हो, ऐसा हम चाहते है। वह यत्र है ही नही। वह अनियत्रित विचार है, जो हम विश्व मे फैलाना चाहते है। और जिसे सारे विश्व मे फैलना है, वह सदेह नही हो सकता, विदेह ही हो सकता है। इसलिए हम उसके लिए देह नही बना रहे है, अगर हम उसे सदेह बनावेगे तो काम जरूर होगा, लेकिन वह विश्व-व्यापी नही होगा। इसलिए एक तरफ तो काम करने के लिए हम पूर्ण रूप से सुसज्ज, सुसगठित, चुस्त यत्र बनाने जा रहे है और दूसरी तरफ विश्वव्यापी ज्ञान-प्रसार के लिए एक विदेह रचना कर रहे है।

पिछले साल जब हम एकत्र हुए थे तब एक आदेश दिया गया था, जिसको मानकर मैने परिव्रज्या शुरु कर दी, याने घूमना शुरु कर दिया। पिछले साल जो वातावरण था वह बहुत तग था और हम जानते है कि सब लोगो की एकाग्र वृत्ति उस ओर थी। उसके सम्बन्ध मे अगर हम कुछ कर सकते है तो जरूर करना चाहिए, ऐसा सब लोगो को लगा। मेरे मन मे बापू की मृत्यु के बाद घूमने का विचार स्थिर हो ही गया था। यद्यपि वह विचार कई साल पहले भी मेरे सामने आया था। मौका मिलेगा तब घूमना शुरू करूगा, ऐसा सोचता था। उस समय क्षेत्र-सन्यासी की वृत्ति से काम करता रहा। लोग मुझे बाहर घूमने को कहते थे, बोलने के लिए कहते थे, लिखने के लिए कहते थे। वैसे मै कुछ बोल लेता था, कुछ लिख भी लेता था, लेकिन बहुत ही कम, क्योकि स्थिर काम करना मैने अपना धर्म समझा था। बापू की मृत्यु के बाद घूमने का धर्म भी सामने आया। पिछले साल के सम्मेलन ने वैसा आदेश दिया और मै दिल्ली गया। वहा जो थोडा काम हुआ, उसका विस्तार से मै जिक्र नही कर सकूगा। इतना जरूर कहूगा कि हम बहुत-कुछ नही कर सके है। लेकिन उसके लिए मुझे असन्तोष भी नही है। इतना ही हो सका कि जो परिस्थिति तग थी और श्रद्धा का अभाव-सा हो गया था उसकी जगह कुछ श्रद्धा शरणार्थियो और दूसरो मे पैदा हुई है।

इस काम को करते हुए जो अनुभव आये, वह काम का एक छोटा-सा हिस्सा

है। परन्तु लोगो मे फैली हुई साम्प्रदायिक भावना का निराकरण करने का मुझे जो मौका मिला वह उस काम का बडा हिस्सा है। सहज ही मौके आते गये और मुसलमानो मे काम करने का अवसर मुझे मिला। उन्होने अत्यन्त प्रेम से और उत्सुकता से मेरा स्वागत किया, मानो वे मेरा इन्तजार ही कर रहे थे। दस साल पहले मुझे विचार सूझा कि मै अरबी मे कुरान का अभ्यास करू, तभी से शायद इसके लिए भगवान ने मेरी तैयारी की होगी। मैने देखा कि मुसलमानो ने मुझे उनमे से एक माना।

सबसे महत्त्व की चीज, जो इस समय बहुतो की अपेक्षा से भिन्न हो सकती है, वह है—खादी। जहा जाता हू वहा स्वागत मे हार मिलते है, गुजरात को छोडकर जहा बहुत सूत मिला, बाकी सब जगह तो फूल की मालाए ही मिली। इसपर से आप समझ जायगे कि परिस्थिति कैसी है। मेरी हालत तो उस अन्धे जैसी है जिसका वर्णन तुलसीदासजी ने अपने एक भजन मे किया है। एक मनुष्य था जो बारिश के दिनो मे, श्रावण के महीने मे, अधा हुआ। अधा होने के पहले उसे सारी सृष्टि हरी-भरी दिखाई देती थी, अब क्योकि वह अधा हो गया है, सारी सृष्टि उसके लिए लोप हो गई है और उसे हरा-ही-हरा रग सूझता है। तुलसीदासजी ने यही कहा कि मेरी दशा भी उस अधे की तरह हो गई है। मुझे परमेश्वर के नाम के सिवा अब कुछ सूझता ही नही। आश्रम मे मै बरसो रहा तो वहा खादी-ही-खादी देखता था, दूसरी चीज नजर मे नही आती थी। अब बाहर निकला हू तो वहा खादी नही देख रहा हू। इस अभाव मे दूसरी सारी बातें फीकी लगती है। सभव है, यह उस सावन के अंधे जैसी स्थिति हो, लेकिन मैं अपनेको केवल अधा ही नही मानता। हमारे सर्वोदय के विचार मे खादी को जो स्थान है, वह दूसरी किसी चीज को नही। काका कालेलकर ने आज सुबह कहा, "आज नही तो कल, यद्यपि आज वैसे कहने की हिम्मत नही आई है, हिन्दुस्तान को ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया को खादी अपनानी है।" यह वाक्य मुझे ऋषि-वचन जैसा लगा। ऋषि भविष्य की बात देखता है। हमारे दूसरे काम भी अच्छे है और उन्हे करना चाहिए, लेकिन वे हमारी विचारधारा के प्रतिनिधि नही कहे जा सकते, क्योकि उनके खिलाफ कोई विरुद्ध विचार खडा नही है। मिसाल के तौर पर कुष्ठ-रोगियो की सेवा लीजिये। सब मानते है कि कुष्ठ-रोगियों की सेवा होनी चाहिए। वह नही करना चाहिए या दूसरे तरीके से वह सवाल हल हो सकता है, ऐसा कहनेवाला कोई विरोधी विचार कुष्ठ-सेवा के लिए नही खडा है। ग्राम्य सफाई की बात हम आज करते है, वह काम भी जरूर करना चाहिए, लेकिन उसके विरोध मे कोई विचार खडा नही है, इसे सब मजूर करते हैं। वैसी बात खादी की नहीं है। खादी के विरोध में एक विचारधारा खडी है और खद्दर उस विचार-धारा के खिलाफ एक बगावत है। सारी दुनिया यन्त्र-विद्या में विश्वास करती है।

वैज्ञानिक इसे यन्त्र-युग कहते है। ऐसी परिस्थिति मे जब हम खद्दर की बात करते है तो समझना चाहिए कि दुनिया मे जो विचारधारा आज चल रही है, उसके खिलाफ हमारा यह बगावत का झण्डा है। यो तो हमारा राष्ट्रीय झण्डा भी खादी का बनाया गया है और कुछ दूसरे ही रूप मे क्यो न हो, हमने उसमे चरखे को स्थान दिया है, फिर भी हम उसे भूल रहे है। यह ध्यान मे रहे कि हम दूसरी चाहे हजार बाते करे, लेकिन खद्दर मे अगर कामयाब नही होते है तो गाधीजी के विचारो का प्रतिनिधित्व करने का दावा छोड देते है और हार कबूल करते है। खद्दर मे हार कबूल करे तो दूसरी सेवा भी हम छोड दे, ऐसा नही है। वह तो हम करे ही। लेकिन वह सारी सेवा हमारे विचारो की दृष्टि से गौण हो जाती है, इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नही है। मै यह नही कहना चाहता कि खद्दर छोडने पर हम असत्य या हिसा का आचरण करते है, फिर भी अगर हम खादी को व्यावहारिक मानते है तो जिस सामाजिक अहिसा का हम विचार कर रहे है उसमे खतरा देखता हू। इस सम्बन्ध मे मैने बहुत विचार किया है और यद्यपि मै जानता हू कि यह चर्खा-सघ की सभा नही है, लेकिन जो बाते मै आपके सामने कहूगा, उन्हे आप मुनासिब ही समझेगे।

तीस साल के बाद भी मै कातना नही जानता हू, ऐसा तो नही कहा जायगा, यद्यपि मै खुद को उत्तम कातनेवाला नही समझता हू। मेरा सूत मिल की बराबरी नही करता। ऐसा कच्चा सूत अधिक दाम देकर हम बुनवा तो सकेगे, लेकिन वह चीज व्यापक नही होगी, उसमे बुनाई महगी पडेगी और बुननेवाला भी खुशी से नही बुनेगा। इस स्थिति मे लोग अगर खादी का नही अपनाते है तो दोष लोगो का नही है। खादी को तीस साल तक मौका मिला है। अब भी अगर हम बुनकर को कह दे कि कच्चा सूत बुने तो चलनेवाला नही है। एक जमाना था कि जब आश्रम मे पाजन होती थी, तब हम सब दौडकर उसमे सम्मिलित होते थे, मानो कोई लडाई हो। पाजन मे जो धागे टूटते थे उनकी सख्या हम गिनते थे। मुझे याद है कि वह सख्या कई हजारो तक पहुच जाती थी। यह १९२० की बात है। वही अगर हम १९४९ मे देखते है तो समझना चाहिए वह काम चलनेवाला नही है। इसलिए मै इस नतीजे पर आया हू कि सूत को दुबटना चाहिए, जिससे सूत मजबूत बनेगा और हम खुद भी उसे बुन सकेगे। खुद कातते है, वैसे ही हम खुद बुन भी ले। ऐसा होगा, तब यह काम आगे बढेगा। दुबटे सूत को बहुत-से लोग तो घर मे ही बुन सकेगे, जो लोग नही बुन सकेगे वे दाम देकर बुनवा लेगे। वह उनको सस्ता भी पडेगा। यह एक बात मै आपके सामने रखना चाहता था। मेरी आपसे अर्ज है कि आप किसी भी काम मे क्यो न पडे हो, आप अपने आस-पास खद्दर का वातावरण अवश्य रखिये। अगर वैसा वातावरण नही है तो गाधी-विचार की दृष्टि से सारा काम खास कीमत नही रखता है।

दूसरी वात है— सर्वोदय-विचार पर परिपूर्ण अमल। उसका समग्र अमल कव होगा, यह तो परिस्थिति पर निर्भर है, लेकिन आज सामाजिक क्षेत्र मे जो एक चीज हम कर सकते है, वह है छुआछूत का निवारण। वह अवतक हम नही कर पाये है। यह अत्यत दु ख और शर्म की वात है। वैसे मै दा साल तक भगी का काम करता रहा, लेकिन वह तो देहात का भगी का काम था, जो शहर के भगी के काम की अपेक्षा बहुत आसान है। शहर का भगी-काम मनुष्य के लायक ही नही है।

अप्पासाहव को आप जानते है। जेल मे भगी का काम मिले, इसलिए वहा उन्होने सत्याग्रह किया था। लेकिन वह अपना अनुभव मुझे वताते थे कि शहर के भगी का काम वह करने लगे तो दो-चार दिन मे ही हार गये। ऐसा काम जिस मनुष्य को हम देते है, वह उसे अछूत कहकर ही करवा सकते है, क्योकि उनका दूसरे धधो मे प्रवेश नही है। इस गुलामी से हमे इन्हे मुक्त करना ही पडेगा। उसके लिए हम सवको भगी वनना चाहिए, या उस काम को ऐसा स्वरूप देना चाहिए, जिससे उसे हर कोई कर सके।

अप्पासाहव ने आज मुझसे कहा कि इसे सर्वोदय के वदले अत्योदय कहे तो अच्छा हो, क्योकि हमारे भगी भाई सवमे आखिर के दर्जे के है। वास्तव मे सर्वोदय शब्द का मूल अत्योदय की कल्पना मे हे। रस्किन के 'अन टु दिस लास्ट' के अपने अनुवाद को वापू ने 'सर्वोदय' नाम दिया है। जो सवसे नीचे की श्रेणी के है, उनका भी उदय सर्वोदय मे है। सारी दुनिया का उदय जव होगा तव होगा, लेकिन भगी का उदय तो होना ही चाहिए। शब्द तो 'सर्वोदय' ही रखना है, क्योकि 'सर्वोदय' मे अत्योदय आ जाता हे। केवल अत्योदय शब्द मे यह भाव आता हे कि वाकी के लोगो का उदय हो चुका है, लेकिन ऐसा नही हे। इस कम्वख्त दुनिया मे उदय किसीका नही है, सवका अस्त ही है। किसीके घर मे चूल्हा जलता ही नही हे, और किसीके घर के चूल्हे मे रोटिया जल जाती है। दोनो के चूल्हो का अस्त हुआ है और दोनो को खाना नही मिल रहा है। समाज के पैसेवाले लोगो के जीवन का परिपूर्ण अस्त कवका हो चुका है। और जो दरिद्री है, उनका तो अस्त ही हे। तुलसीदासजी का एक भजन मुझे यहा याद आता है। उन्होने भगवान से कहा है कि—"प्रीति की रीति आप ही जानते है। आप वडे की वडाई दूर करते है और छोटे की छोटाई दूर करते है। यही आपकी प्रीति की रीति हे।" वडो की वडाई कायम रखना, उनपर प्रीति रखना नही है। अधिक धनवालो की वुद्धि जड-धन की सगति से जड और निस्तेज वन जाती हे। जो जड वन गये है उनका और जिन्हे खाने का नही मिलता है उनका, दोनो का उदय होना वाकी है।

तीसरा विचार अपरिग्रह का है। भगीपन को मिटाना है, वैसे ही परिग्रह को भी मिटाना है। वह अपरिग्रह-व्रत से ही हो सकता है। श्री राजेद्रप्रसादजी ने सुवह

कहा कि कुछ लोगो का विचार अपरिग्रह का है तो कुछ लोगो का विचार अपहरण का है। अपहरणवादी कहते हैं कि अपने विचार का कुछ तो प्रयोग एक देश मे हमने करके बताया है, आपका अपरिग्रह विचार चलेगा इसमे हमारी श्रद्धा नहीं है।

वे क्या कहते है, इसे हम छोड दे। लेकिन हमारे देश की हालत ऐसी है कि अगर हम अपरिग्रह-व्रत पर अमल न करे तो सघर्ष नही टल सकता। मैने अजमेर मे देखा कि मारवाडियो और सिंधी शरणार्थियो के बीच द्वेप-भावना भरी है। अब यह कम हो रही है, क्योकि सिंधी व्यापारी वहा से हट रहे है। मैने वहा कहा था कि हिंदुस्तान मे कभी हिंदू-मुसलमानो के बीच, तो कभी ब्राह्मणेतरो के बीच, तो कभी सिंधी और मारवाडियो के बीच झगडे होते ही रहेगे, जबतक हिंदुस्तान मे आज की दुर्दशा कायम रहेगी। जबतक अन्न की उत्पत्ति नही बढेगी, द्वेष का यह जहर किसी-न-किसी रूप मे बना रहेगा। झगडे मिटेगे नही, हिसा टलेगी नही। मै गणित का प्रेमी रहा, इसलिए गणित की भाषा मे, लेकिन कुछ सख्त शब्दो मे, मैने कहा कि अगर हिन्दुस्तान मे थोडा सुख का अनुभव लोग लेना चाहते है तो दस करोड को कत्ल कर देना चाहिए, तभी बची हुई सामग्री मे आधिभौतिक सुख मिलेगा।

मतलब, शारीरिक श्रम के साथ अपरिग्रह-व्रत और अपरिग्रह-व्रत के साथ शरीर-श्रम दोनो एक-दूसरे के साथ आते है। एक ही चीज के ये दो पहलू है। एक साल अपरिग्रह की बात हो रहा थी, तब यह पूछा गया था कि किसकी कितनी जरूरत है, यह कौन तय करे ? मैने कहा था जिसकी जरूरत हो, वह ही तय करे। हमारे पास धन नही है, इतने से हम अपरिग्रही नही बन जाते। हमारे पास दूसरा भी अपरिग्रह पडा है। पैसे नही तो ऐसी पुस्तके पडी है, जिनकी कभी एकाध बार ही जरूरत पडती है, बाकी हमेशा बन्द ही रहती है। यह एक तरह का परिग्रह ही है। इस तरह हमे अपने जीवन का शोध करना चाहिए।

परिग्रह का दूसरा भी एक पहलू है। हम यह मान लेते है कि खुद के लिए हम परिग्रह न करे, लेकिन सस्थाओ के लिए कर सकते है। हिसावादी अपने लिए हिसा नही करना चाहता है, लेकिन समाज और राष्ट्र के लिए हिसा करने मे पाप नही समझता। हम भी सस्था के लिए परिग्रह क्षम्य मानते है। मै एक और मिसाल दू। चर्खा-सघ का पैसा बैक मे पडा रहता है, जिसका व्याज उन्हे मिलता है। सोचने की बात है कि व्याज कहा से मिलता है ? वह पैसा दूसरे धधो मे लगाया जाता है, इसलिए व्याज मिलता है। चरखे के लिए दिया हुआ इअर-मार्क पैसा गो-सेवा जैसे अच्छे काम मे नही लगाया जा सकता, यह मर्यादा हम मानते है। लेकिन बैको द्वारा दूसरे धधो मे यह लगाया जा सकता है, लगाया जा रहा है, यह एक महान् आपत्ति है। यह धन-लोभ ही है, चाहे सस्था के नाम से ही क्यो न हो। इसी तरह

हमने कस्तूरबा-कोष मे फंड इकट्ठा किया है और अब गाधीजी के स्मारक मे फड इकट्ठा किया जा रहा है। इतने पैसे की जरूरत ही क्यो होनी चाहिए ! और अगर पैसे की जरूरत है और इकट्ठा किया गया है तो साल-दो-साल मे वह खत्म करना चाहिए। पर यह बनता नही और बैंक मे पैसा रखकर व्याज लेने की बात छूटती नही, उसमे हम दोष नही देखते। कारण, हम रहते ही ऐसे समाज मे है, जहा व्याज लेना मूर्खता माना जाता है। गीता मे 'त्यक्त सर्व परिग्रह' कहा है—अर्थात् सब परिग्रह छोडो। अगर परोपकार के लिए भी परिग्रह का मोह रखते है तो वे सारे दोष पैदा होते है, जो एक सासारिक के काम मे पैदा होते हैं।

पहला सर्वोदय-सम्मेलन
राऊ, ६ मार्च १९४९

२ : : अहिंसा का रास्ता

आज हम चार दिन मिलजुल कर प्रेमसलाप करते हुए, विचारो का विनिमय करते हुए, साथ-साथ सामुदायिक कार्य करते हुए और एकत्र रहे। यह एक बडा भारी जीवन-लाभ हम सबको हुआ। साढे सातसौ के करीब सेवकगण हिन्दुस्तान भर के यहा आये। यहा आने से उनको किसी तरह का भौतिक लाभ मिलनेवाला नही था। इस सस्था के समाज के सेवक बनने के कारण किसीको भी कोई अधिकार प्राप्त नही होता है। फिर भी इतने सारे लोग यहा आये यह छोटी बात नही। अगर इस सस्था के या सम्मेलन के साथ कोई सत्ता, या सत्ता की आकाक्षा या उसकी छाया भी जुडी हुई होती तो इस सम्मेलन की कोई खास कीमत नही थी। लेकिन सब तरह की सत्ताओ से अलिप्त रहने की इच्छा रखने-वाली जमात ऐसे जमाने मे इकट्ठा होती है कि जो जमाना सत्तालोलुप माना गया, यह बात काफी महत्त्व रखती है।

लोगो ने तीन-तीन मिनिट व्याख्यान दिये। यहापर उन व्याख्यानो की कीमत इसलिए नही कि उनमे कोई खास लज्जत थी, या उनके बोलने का कोई ढग था, बल्कि इसलिए कीमत थी कि उन लोगो के बोलने के पीछे कुछ-न-कुछ काम रहा है। यानी, यह सारी काम करनेवाली जमात है। ऐसो के जो शब्द होते है, उनका नाप, उनकी कीमत का अकन, उनके पीछे जो ध्येय है, उससे छोटा है। मैने बहुत-सारे व्याख्यान एकाग्रता से सुने और उनमे से बहुत-कुछ चिन्तन के लिए मसाला मुझे मिल गया। हम लोगो का यहापर सभा-सचालन का यही तरीका रहा कि हम कुछ विषयो की चर्चा करते है। वैसे तार्किक चितन से अगर किसी प्रश्न की छाले निकाला करे, तब तो अनत छाले होती है। लेकिन काम करनेवाले

तार्किक चिन्तन नही करते है, अनुभव के आधार पर चिंतन करते है। उस हालत मे उनको किसी सवाल के जो पहलू सूझते है, वे यहा रखते जाते है। उसीपर ही साधक-बाधक चर्चा होती है और फिर उस चर्चा को हम वही छोड देते है। यह एक ऐसा अजब तरीका है सभा-सचालन का, और केवल नया होने के कारण उसमे कुछ दिलचस्पी मालूम हो सकती है। लेकिन कइयो को शका रहा करती है कि आखिर हम कोई प्रस्ताव नही करते तो इसका, इस चर्चा का, क्या नतीजा आता है।

सिकन्दर बादशाह की कहानी है कि उसका एक पदार्थ-सग्रहालय था, जिसमे कई महापुरुषो के पुतले खडे किये थे और हरएक का नाम नीचे लिख रहा था। एक दिन सिकन्दर के यहा एक मेहमान आया। उसको सिकन्दर सारा ऐतिहासिक सग्रहालय दिखाने के लिए ले गया। हरएक मूर्ति बताता गया और उसका वर्णन, जो नीचे लिखा था, सुनाता गया। उसे देखने और सुनने के बाद मेहमान पूछता है कि "इतने पराक्रमी लोगो मे आपकी मूर्ति तो कही दीखती नही है। इसका कारण क्या है?" सिकन्दर ने कहा, "मेरी मूर्ति खडी की जाय और फिर लोग आकर पूछे कि यह किसकी मूर्ति है? नाम लिखा रहेगा नीचे तो पूछेगे कि सिकन्दर कौन था? इसके बजाय बेहतर है कि यहा मेरी मूर्ति न हो और लोग पूछे कि यहा सिकन्दर की मूर्ति क्यो नही है, यह मै अधिक पसद करूगा?" तो कोई चर्चा हम करे, अत मे प्रस्ताव करे और उस प्रस्ताव का दुनिया मे कोई अमल न हो, जैसे कि बहुत-से प्रस्तावो का होता है, उसकी बजाय बेहतर है कि हम चर्चा करके इस चीज को छोड दे और हरएक मनुष्य को अपने-अपने स्थान पर जाकर उसमे से जिसको जैसे सूझेगा वैसे आगे बढे, तो हरेक की बुद्धि-शक्ति का प्रयोग उसमे होगा और कुल मिलाकर बहुत अच्छा अमल दीख पडेगा। यह बेहतर है, ऐसा समझ करके हमने यह तरीका चुन लिया है। इसमे असमाधान के लिए गुजाइश नही है, बल्कि तृप्ति के लिए गुजाइश है।

इस बार यहापर प्रादेशिक सभाए अलग-अलग कराई गई, जिनसे मुझे बहुत लाभ हुआ। रोज की दो सभाए होती रही। इस तरह सात सभाए हो चुकी। आज रात को एक आखिरी सभा होगी और सारे हिन्दुस्तान के जितने कार्यकर्ता यहा आये उनसे कुछ-न-कुछ परिचय मेरा हो जायगा। उन लोगो के सामने जो भी चीज शुरू रखनी थी, उस-उस प्रात की विशेषता देखते हुए वह उन लोगो के सामने दिल खोलकर रख दी। मै मानता हू कि वे चीजे, जो मैने रखी है, लोगो के दिलो तक पहुच गई और मै उम्मीद रखता हू कि यहा से जाकर उन चीजो से बहुत-सी चीजो को वे अपने जीवन मे एकरस कर लेगे। इससे मुझे जो लाभ हुआ है वह यह हुआ कि हरेक प्रातवालो के साथ मै एकरस हो सका हू। रूप मे नाम बेहतर है। नाम से भी प्रेम बेहतर है। लेकिन देहधारी अवस्था मे, और जबकि

हम सारे हिंदुस्तान की एक विशेष प्रकार की सेवा करना चाहते है और हिंदुस्तान को ही नही, ईश्वर के सारे विश्व को विशिष्ट समाज मे परिवर्तित करना चाहते है, तब प्रत्यक्ष सबध भी कुछ लाजमी हो जाता है। इस वास्ते यह कदम मैने उठाया है और उसका मुझे बहुत लाभ हुआ।

चार दिन मे यहा रहा। पैदल चलकर आया। उससे जो भी थकान आई थी, सारी यहा के मित्रो के दर्शन से दूर हो गई और इसके आगे मैने सोचा है कि अगर ईश्वर की इच्छा होती तो कम्यूनिस्ट लोगो ने जहा काफी काम किया है, और कुछ ऊधम भी मचाया—ऐसा कहते है, उस सारे मुल्क मे पैदल घूम लू, ऐसा एक-दो महीने का कार्यक्रम रखा जा रहा है। मेरी ख्वाहिश है कि सरकार इसमे मुझे पूरी मदद दे। मै सरकार से मदद यही चाहता हू कि कम्यूनिस्ट लोग मुझसे खुले दिल से बेरोक-टोक मिल सके। याने जो मिलने के लिए आ जाय उनपर किसी तरह की दृष्टि नही रखनी चाहिए। उनको कोई सकोच या भय महसूस नही होना चाहिए। इतना अगर सरकार की ओर से हो जाय तो मेरी यात्रा न सिर्फ मेरे लिए बल्कि अपने देश के लिए काफी लाभदायी होगी, ऐसी मुझे उम्मीद है। तो यह तो आगे मैने जो सोचा है, आपके सामने रखा।

जो विशेष बाते आप लोगो के सामने मुझे रखनी थी, वे सारी मैने अपने प्राथमिक व्याख्यान मे रख दी है। फिर भी इस दो-एक मिनिट मे उनको दोहरा लू। उनको याद करने के लिए एक छोटा-सा श्लोकार्ध मैने बनाया है, जिसमे उन चीजों का नाम-निर्देश है। "अत.शुद्धि बहिर्शुद्धिः श्रमः शातिः समर्पणम्"—ये पाच चीजे है। अत शुद्धि—अपने हृदय की शुद्धि, याने अपने व्यवहार की शुद्धि। इसका कार्यक्रम आप लोगो के सामने रखा है। कोई कहता है कि यह कार्यक्रम कुछ अधिक सख्त है, थोडा ढीला होना चाहिए, या मर्यादित होना चाहिए। कोई कहता है कि उतना मूलगामी नही है, यह तो शाखाग्राही पाडित्य है। मूल का छेद होना चाहिए। इस तरह दो बाजू से इस पर आक्षेप आ रहा है तो उसकी मध्य स्थिति अभी के हमारे काम के लिए पर्याप्त हो सकती है। यह है अत शुद्धि का सामाजिक कार्यक्रम।

मैने जिसको 'बहि शुद्धि' नाम दिया है वह सार्वजनिक सफाई, हर गाव मे होनी चाहिए।

फिर तीसरी बात-श्रम याने, परिश्रम-निष्ठा बढाना। सिर्फ परिश्रम ही नही, बल्कि उसकी निष्ठा भी बढाना। परिश्रम तो लाचार होकर क्यो न हो, सारी दुनिया किसी-न-किसी सूरत मे कर रही है। लेकिन निष्ठापूर्वक श्रम करने की बात है। तो श्रम और श्रम-निष्ठा हमे बढानी है, यह तीसरी बात है। क्रम तो श्लोक के लिए जैसे बैठ गया वैसे बिठा दिया। मेरे व्याख्यान मे क्रम कुछ दूसरा था।

फिर 'शाति' शब्द से मेरा मतलब 'शाति-सेना' है। उसके वारे मे आप लोगो ने काफी सुना है। अपनी जगह आप उस कार्य को करियेगा। आपमे से हरेक सिपाही है और सरदार भी है। जितने रचनात्मक-काम करनेवाले है वे सारे शाति-सेना के सैनिक है और उस दृष्टि से अपनी तरफ वे देखे और उस दृष्टि से अपना कार्यक्रम रखें, तो जगह-जगह शाति-सेना खडी हो सकती है और फिर अपना सारा जीवन उसके अहकार के साथ समर्पण कर देना है। उसकी एक छोटी-सी निशानी के तौर पर हम लोगो ने सूत कातने की एक गुडी मागी है, जिसका कार्यक्रम आप लोगो ने वना लिया।

अव इस समय जो एकाध शब्द कहने की इच्छा होती है वह कह दू। लोगो ने सवाल कई किये और वे वहुत अच्छे सवाल है। सारे काम के है। कोई शाब्दिक सवाल नही पूछा गया। लेकिन उन सव सवालो की चर्चा यहा करना, या उनका कोई उत्तर देने की कोशिश भी करना, मेरे लिए अशक्य है। ऐसे सवालो की चर्चा हम 'सर्वोदय' मे किया करेगे। अभी उन सवालो को मैने देख लिया है। इस समय उनके उत्तर पाने की आप आशा न करे। इतना कहकर एक ही चीज आखिर मे आप लोगो के सामने रख देना चाहता हू।

दुनिया-भर के इतिहास मे निरतर एक चीज हो रही है कि एक देश गिरता है और एक देश उठता है और एक के पतन के साथ एक का उत्थान होता है। इस तरह निरतर होता रहा है। और जव कोई देश गिरा है तो उसके लिए सबने सहानुभूति रखी है और जव उसने अपनी स्वतत्रता के लिए लडाई लडी और वह कुछ यशस्वी हुआ तो सव लोगो ने उसका गौरव गाया। लेकिन गौरव गाने के चद वर्षो के वाद देखा कि वही देश दूसरे देशो पर वक्र दृष्टि रख रहा है, जो स्वतत्रता के गीत गाता था। वचपन मे हमको याद है कि इटली कैसे स्वतत्र हुआ और जापान ने कैसे स्वतत्रता के लिए लडाई लडी और कैसे उसने एशिया की शान वढाई, ऐसे गीत हम गाते थे। लेकिन चद वर्षों के वाद हमने देखा कि वही जापान साम्राज्यवादी वन गया और देखते-देखते जिनकी हमने स्तुति की थी, उनके प्रति नफरत पैदा हुई और दूसरे देश, जिनपर उनका आक्रमण था, उनके साथ सहानुभूति पैदा हुई। चीन के लिए सहानुभूति पैदा हुई। अव हम नही जानते कि कहातक चीन हमारी सहानुभूति के लायक वना रहेगा। यह सारा क्या तमाशा हो रहा है? जो स्वतत्रता के लिए तडपता है और परतत्रता का दुख भोग चुका है वह जहा उसको स्वतत्रता आई वहा दूसरो पर आक्रमण करने की सोचता है। इसके मानी क्या है? इसके सीधे मानी यह है कि स्वतत्रता की यह जो कोशिश थी वह वास्तव मे स्वतत्रता की कोशिश नही थी, वल्कि एक ऐहिक उत्कर्ष की लालसा-मात्र थी और ऐहिक उत्कर्ष की लालसा की कोई सीमा नही होती है और वह आकाक्षा, वह पिपासा प्रतिक्षण वढती जाती है। आखिर उसपर आक्रमण

होकर वह टूट जाती है। तब वह दूसरो को सताने का प्रयत्न करती है। इस तरह सारा होता है। लेकिन जब कोई देश गिर चुका है और उठने की कोशिश करता है तो उस हालत मे उसकी ऐहिक उत्कर्ष की अभिलाषा का स्वातत्र्य-प्राप्ति की अभिलाषा का रूप हो जाता है। हमे सोचना चाहिए कि क्या हमारा भी ऐसा ही कुछ नही होगा ? यह देखना चाहिए, नही तो देखते-देखते स्वतत्रता के गीत जिन्होने गाये और अहिसा के राग जिन्होने अलापे, वे आरभ मे बचाव के लिए आक्रमण करके बाद मे विश्वविजय के लिए निकल सकते है।

आप यह न समझे कि अभी ये दिन दूर है। एक देश के चढने और उतरने मे जितना समय पहले के जमाने मे लगता था, उतना अब नही लगनेवाला। पुराने जमाने मे जो चीज सौ-सौ साल मे होती थी, वह अब दस-पाच साल मे हो सकती है। इतना काल का वेग बढा है कि देखते-देखते हिंदुस्तान एक फासिस्ट रेजीम (शासन) बन सकता है—अगर हम सावधान न रहे। तो यह हम सब लोगो के लिए एक चिंता का विषय है। मै यह नही सूचित करने जा रहा हू कि अभी हमारी सरकार जिस ढग से काम कर रही है, उस ढग मे मै कोई दोष देख रहा हू। या हम कोई एक सरकार भी स्थापित करेगे। ऐसी बात नही है। वह सब हम लोगो के शिक्षण-शास्त्र मे, समाज-शास्त्र मे, पडा है। एक माता या बाप भी अपने बच्चे पर अपनी इच्छा-शक्ति चलनी चाहिए, ऐसी आशा करता है और जहा उसकी इच्छा के मुताबिक वह लडका या लडकी नही चलती तो उसको धमकाता है या पीटता है। जहा एक माता, जिसके दिल मे बच्चे के लिए प्रेम ही है, द्वेष नही है, उस लडके के कल्याण के लिए ही क्यो न हो उसको पीटती है, वह उसको साम्राज्यशाही, पूजीशाही और दूसरी जो अनेक शाहिया है, उन सबका शिक्षण देती है। याने देह को अपना रूप समझो, उसको कोई सतोष दे तो उससे सतुष्ट हो जाओ और तकलीफ दे तो उससे डरो, इस तरह का शिक्षण वह माता अपने बच्चे को दे देती है। उसके मूल मे बस यही बात है—यह तसल्ली चाहिए कि वह लडका अपनी इच्छा के अनुकूल चलना चाहिए। तो हम लोगो को परमेश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवान, मेरी इच्छा मुझपर ही चले, उस इच्छा का बोझ दुनिया मे और किसीपर न लादा जाय। वह इच्छा जिसे पसद आये वह उसके मुताबिक चले। वह उसकी मर्जी की बात है और हमारी खुशी की बात है। लेकिन किसी भी कारण, वह कारण चाहे नैतिक भी क्यो न हो, हमारी इच्छा दूसरे किसी-के सिर पर न लादी जाय, बिना समझे उसका अमल दुनिया मे कही न हो, ऐसी भगवान से हमे प्रार्थना करनी चाहिए। जबतक यह प्रार्थना हमको नही सूझती और हमको यह लगता है कि जल्दी-से-जल्दी चाहे लोग समझे या न समझे, लेकिन फलानी चीज हो ही जानी चाहिए, तब समझ लेना चाहिए कि हमारे विचार मे हिंसा भरी है और साम्राज्यवाद भरा है। महायुद्ध के बीज उसमे बोये हुए है,

ऐसा समझना चाहिए।

जब कभी लोग जनता को शिक्षण देने मे हार जाते है तो वे कहते है कि शिक्षण देते-देते कितना समय लग जायगा, उससे बेहतर है कि एक व्यवस्था करो और उसको लोगो पर कायम करो। इससे लोग उसके अनुसार चलने लग जायगे और शिक्षण देने का काम हम आहिस्ता-आहिस्ता कर लेगे। तो शिक्षण देने मे हम हार खाते है और उसके बदले शस्त्रास्त्र बनाने मे उत्साह रखते है। कहते है, कितने लोगो को शिक्षण दे ? पाच लाख गावो मे कौन जाय ? कौन लोगो को समझावे ? उनके जीवन मे परिवर्तन कब होगा ? कब वे समझेगे ? इससे बेहतर है कि कोई व्यवस्था की जाय। उसके पीछे दड तो रहेगा। 'दड धर्मविदुर्बुधाः,' यानी, दड धर्म है, ऐसा ज्ञानी कहते है। तो ज्ञानियो का आधार हमको मिल गया। फिर उस व्यवस्था से सब लोग शात हो जायगे और सुखी हो जायगे।

यह सुनकर मुझे अपने बचपन की एक बात याद आती है। मेरी मा को जो मिलता उससे कहा करती थी कि विन्या की स्मरणशक्ति बहुत तेज है। सध्या उसको सिखाई तो तीन दिन मे सीख गया। कई मर्तबा यह स्तुति मैने सुन ली। आखिर एक दिन पूछा, "मा, तू मेरी स्तुति किया करती है, वह ठीक है। लेकिन उसका उत्तरार्द्ध तुझे कहा मालूम है ?" तो उसने पूछा, "क्या उत्तरार्द्ध है ?" मैने कहा कि विन्या तीन दिन मे सन्ध्या सीखा जरूर, लेकिन दो ही दिन मे भूल गया। तो व्यवस्था से काम तो हो जाता है, ऐसा आभास आता है, लेकिन क्योकि वह व्यवस्था लोगो को शिक्षण देकर नही बनाई गई थी, इसलिए उस व्यवस्था से लोगो मे असतोष पैदा होता है और नई व्यवस्था होनी चाहिए, ऐसा लोग कहने लगते है। यह जो नई व्यवस्था की माग है वह नित्य हुआ करती है। तो थोडे दिनो मे व्यवस्था हो जाती है, वैसे थोडे ही दिनो मे अव्यवस्था का आरम्भ हो जाता है और नई व्यवस्था की आवश्यकता मालूम होती है।

इसलिए बेहतर है कि ऐसे मोह मे हम न रहे केवल व्यवस्था करके कोई चीज हमे हासिल नही होगी और हम शात हो जायगे और बाद मे शिक्षण देते रहेगे, ऐसी आशा न करे बल्कि शिक्षण देने की ही हिम्मत रखे। जबतक लोगो को शिक्षण मिलता है, तबतक धीरज रखे, तो हमारा काम जल्द-से-जल्द हो जायगा। चाहे दीखने मे यह दीखे कि इसमे पचास साल लग गये, लेकिन वही कम-से कम समय होगा, जो ऐसी समस्याओ के सुलझाने के लिए लग सकता था। मतलब इसका यह है कि हरेक मनुष्य को कोई चीज बिना समझे-बूझे नही करनी है। केवल हमारी मुरव्वत के कारण, या हमारे आदर के लिए, या हमारी आज्ञा के वश होकर, या किसी दड के भय के कारण, या ऐसे ही किसी दबाव के कारण लोग अच्छी चीजे भी क्यो न हो, करे तो हमे खुशी नही होनी चाहिए। अच्छी चीज भी समझ-बूझकर ही की जाय और जैसे गीता के अत मे भगवान

ने अर्जुन से कह दिया कि भाई 'यथेच्छसि तथा कुरु'—तू सोच ले और सारा सोचकर जैसा तुझे लगे वैसा आचरण कर, वही हमारा विश्वास होना चाहिए। किसी तरह के दबाव मे हमारा विश्वास जरा भी नही होना चाहिए। तब हम वह राज्य ला सकेगे जो अहिंसा का राज्य होगा और उसके आने के बाद स्थायी शान्ति की आशा हम कर सकते है, क्योकि दूसरे मार्ग से अगर हम जायगे तो हम स्वतन्त्रता के अभिलाषी है, ऐसा जहा आभास आयेगा वहा दूसरे ही क्षण हम साम्राज्यवादी है, ऐसा स्पष्ट दर्शन हमे होगा।

तीसरा सर्वोदय-सम्मेलन,
शिवरामपल्ली, ११ अप्रैल, १९५१

३ : : शांति-सैनिकों की आवश्यकता

मेरी दशा कुछ विचित्र है। मै सभा-सम्मेलनो मे बहुत कम जाता हू। 'गाधी-सेवा-सघ' के पहले अधिवेशन मे गया, बाद के अधिवेशन मे नही गया। कल प्रार्थना में हमने रवि ठाकुर का एक गीत सुना—"एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।" उस गीत मे जो भावना है, वह मेरे जीवन का आधार है। लेकिन मैने अकेले चलनेवाले को कभी अभागा नही माना, भाग्य-वान ही माना है। इतना ही फर्क है। मेरा मन इसी तरह काम करता है। हृदय से मै सबके साथ चलता हू। सबके साथ समवेदना, सहानुभूति और स्पर्श मे रखता हू। यही मेरा पथ या चलने का रास्ता है। सबके साथ इस तरह के निरतर स्पर्श का मेरा हृदय साक्षी रहता है। इसलिए जब सबसे मिलने का मौका आता है तो उसमे मुझे आनद होता है। लेकिन सम्मेलनो की मुश्किलो की मुझे कल्पना नही है। पर एक बार वहा चले जाने पर वहा से जल्दी लौटने की उतावली नही होती, क्योकि मेरा मानस देहाती है। देहाती लोग हर काम धीरज से करते है। रेल आने से पहले घटा भर स्टेशन पर जाकर बैठते है और रेल आने पर आराम से उसमे बैठते है। इसी तरह मेरा भी मानस काम करता है। आजकल तो मै पैदल ही घूम रहा हू। इसलिए कही से जल्दी-जल्दी भागना मुझे ठीक नही लगता। इतमीनान से काम करता हू।

यहा आपने दो-तीन दिन बाल-गोपालो की बाते भी सुनी। एक भाई ने कहा कि यहापर किस तरह बोला जाय, इसके विषय मे कुछ नियन्त्रण होना चाहिए। मैने कहा कि समय का नियन्त्रण तो रहता ही है, इसके अलावा कोई बेजा शब्द, जिसमे हिंसा का भाव होता हो, निकले तो उसे रोका जाता है। इसके सिवा और

कोई नियत्रण वक्ताग्रो पर रखना सर्वोदय-सम्मेलन के अनुकूल नही होगा। साल भर मे एक दफा लोग यहा आते है। उन सबकी बाते हमे सुननी चाहिए। मैने सबके भाषण ध्यान से सुने। मैने तो इन तीन दिन के व्याख्यानो से बहुत-कुछ पाया है, क्योकि मेरे लिए दूसरा कोई साधन नही, जिससे मै यहा आये हुए लोगो के मानस को समझ सकू। बाल-गोपालो के शब्दो मे साहित्यिक शैली का पालिश नही होता। कृत्रिम शिष्टाचार का नाहक सयम नही होता। उनकी बोली तोतली बोली कहलाती है। उनके कथन मे भावनाओ का सहज प्रकाशन होता है। इस सम्मेलन मे ऐसी कोई बात किसीके मुह से नही निकली, जिसके लिए हमे खेद करना पडे। यह मेरे हृदय की अनुभूति है, जिसे मै आपके सामने रख रहा हू।

अब यहा जो विचार प्रकट किये गए है, उनके सम्बन्ध मे बुनियादी बाते मैने कल और परसो दो दिन कही है। आज यह अतिम समारोप का कथन है। इसलिए उपसहार के रूप मे कुछ कह देना चाहता हू।

इन तीन दिनो की चर्चा मे कई बार यह कहा गया कि हमे शाति-सेना का कार्य करना चाहिए। हमने अबतक क्या किया इसके सबध मे जब हम सोचते है तो यह कहा जाता है कि हमने कुछ भी नही किया। ऐसा विचार यहाँ बहुत दफा बोला गया है। लेकिन मैने तो शाति-सेना के सैनिक के नाते ही साल भर काम किया। तेलगाना मे मैने लोगो से कहा कि मै शाति-सैनिक के नाते यहा आया हू। आज भी मै शाति-सैनिक के नाते घूम रहा हू। आखिर शाति-सेना का काम किस तरह होगा? उसका सगठन दूसरी सेनाओ की तरह नही होता। शाति-सैनिको को ऐसे काम मे लग जाना चाहिए, जिससे अशाति का उद्भवन हो। अशाति के बीजो को नष्ट करने के प्रयत्न मे उन्हे निरन्तर रहना चाहिए। जनता के निकट सम्पर्क मे आना चाहिए।

चौथा सर्वोदय-सम्मेलन,
सेवापुरी, १५ अप्रैल १९५२

४ : : नीतिधर्म की प्रेरणा

गये साल हम लोगो ने जो काम किया, उसके विषय मे उस-उस प्रदेशवालो के साथ मैने चर्चा कर ली। उस चर्चा के दौरान मे कई मर्तबा कार्यकर्ताओ को जागृत करने के लिए कभी-कभी कठोर वचनो का मैने उपयोग किया था। लोगो ने वह सब प्रीतिपूर्वक सहन कर लिया। लेकिन अभी उसके लिए मै सब लोगो से क्षमा माग लेता हू। मुझे कहना चाहिए कि गये साल जो काम हुआ वह यद्यपि

अधिक हो सकता था, अगर काम मे हम कुछ व्यवस्था रखते, तो भी जो हुआ, वह काफी हुआ है, ऐसा कह सकते है और असमाधान के लिए कोई कारण नही है। कल जो प्रस्ताव पढा गया, उसमे सात-आठ लाख एकड जमीन गये-साल इकट्ठा हुई, उसका गौरवपूर्ण उल्लेख है। मेरे मन मे भी है कि जो काम हुआ, उसके करने मे जिन लोगो ने हाथ बटाया, उनके लिए यह गौरव की वात है।

अव अगले साल हम आगे वढना चाहते है और जितना हमने निश्चय किया है, उतना पूरा करना चाहते है। वह काम वहुत कठिन तो नही है। इस साल हमको ग्यारह महीने मिले, अगले साल तेरह महीने मिलेंगे। और अव योजना अच्छी हुई है, लोग भी जागृत हो गये है तो उतना काम हो ही जायगा, ऐसी मै उम्मीद करता हू। लेकिन अपना काम उससे अधिक व्यापक है। उद्देश्य ऊचा है। उस दृष्टि से हमको आत्म-निरीक्षण करना चाहिए और उसके योग्य बनना चाहिए। तो जो कुछ दोप दीख पडते है, उनका निवारण हमे करना चाहिए। हम जव अपने स्थान के दोष वताते है तो दूसरो के साथ तुलना करके हम अपनेको ऊचा या नीचा नही रखना चाहते, वल्कि स्वतत्र रीति से अपना ही निरीक्षण करते है। जो दोष अपने मे है, वे ही दूसरो मे होगे तो उससे हमारा कोई समाधान नही हो सकता। इसलिए तुलना की दृष्टि हम नही रखते, बल्कि स्वतत्र रीति से अपना निरीक्षण करना चाहते है।

कल हमने देखा कि एक भाई बगाली भाषा का प्रश्न यहा रखना चाहते थे। कुछ आवेश मे वह बोल गये। तो यहा के लोगो के दिलो मे सब्र नही रहा और उसको 'बैठ जाओ', 'बैठ जाओ' कहने लगे। अगर लोग सब्र रखते तो उसके हृदय मे भावना उठती—"इस सभा मे हमारा पक्ष रखने के लिए मौका मिला, इसके लिए मै कृतज्ञ हू।" वे समझते थे कि इस भापा के उद्देश्य दूसरे है। कई काम यहा पडे है तो उनकी वात के लिए, जो कि स्थानीय है, प्रवेश अगर मिल जाता है तो एक विशेष वात होती है और वैसा उन्होने कबूल भी किया। अगर उनके भाषण को हम सहन कर लेते और शात रहते तो एक मनुष्य को हम जीत सकते। लेकिन इससे उलटा हुआ। उनका दिल दुखा। यद्यपि बोलने का मौका उनको आखिर मिल गया, फिर भी जो चोट उनके दिल को पहुची, वह उतने से दुरुस्त नही हुई। तोडना आसान होता है, जोडना कठिन होता है। और वह जो प्रदर्शन हुआ, वह सामुदायिक हुआ। कोई एकाध व्यक्ति एकाध व्यक्ति को रोकता हे, या उसके वारे मे आलोचना करता है तो वह व्यक्तिगत मामला हो सकता था। पर यहा तो समुदाय के अनेक व्यक्ति एकदम बोल उठे। वह दृश्य दुखदायी था। अगर वह एक क्षणिक वात हुई, ऐसा ही मुझे लगता तो उसकी मै विशेष चिंता नही करता। लेकिन वह एक आकस्मिक बात नही है। वह एक दुर्गुण ही हमारे मे है। उसको हम असहिष्णुता नाम दे देते है, जैसा धीरेन्द्रभाई ने दिया भी है।

लेकिन उससे भी अधिक गहरा दोष इसमे है। एक तरह से हम अपनेको पुण्यात्मा समझते है, सर्वोदय की भावना रखते है, सर्वोदय-सेवक है हम! यहा तक होता है कि लोग अपने पत्रो पर अपना सर्वोदय सेवक-नम्बर लिख रखते है। एक भाई का पत्र आया था। उसमे ऊपर 'सर्वोदय-नबर' और नीचे 'सर्वोदय-सेवक' छपा हुआ था। यह बात निर्दोष भी हो सकती है, लेकिन मुझे जो अनुभव आया, उसपर से मै समझ गया हू कि सर्वोदय-सेवक होना या जो विचार हम रखते है, वैसे रखना—चाहे उनपर हम अमल कर सकते हो या न हो—यही एक बडा पुण्य-कर्म हम करते है और उससे हम कुछ ऊचे बन जाते है, ऐसा खयाल हम लोगो के दिल मे होना सभव है। अगर इस तरह आत्म-प्रवचना हम करे तो हमारे लिए वह हानिकारक होगा। हमे तो अति नम्र होना चाहिए और समझना चाहिए कि हम सेवक है और दुनिया हमारी सेव्य है। तो सेवक का नाता नम्र नाता है, उससे भिन्न अगर हम अपनेको ऊचे विचारवाले मानने लगे तो जैसे एक जमाने मे ब्राह्मण हो गये, ज्ञान-परायण भी वे थे, लेकिन उसका अभिमान उनको हो गया और अपनेको वे ऊचा मानने लगे, वैसी हमारी हालत होगी। यह एक दोष है और मै चाहता हू कि हम अपने अन्दर उसका शोधन करे और अधिक-से-अधिक नम्र होने की कोशिश करें।

दूसरी हममे जो खामिया है—उनको दोष तो क्या कहे, कमी कहना चाहिए—वे यह कि हममे से बहुत-से बहिर्दृष्टि से सोचते है, गहराई मे नही जाते और विचारो का अध्ययन नही करते। यह मेरा आक्षेप बरसो से रहा है और मैने देखा है कि हमारे कार्यकर्ता, जो कि रात-दिन काम मे लगे है, वे भी विचारो का अध्ययन नही करते है। मै केवल शास्त्रीय अध्ययन की बात नही कर रहा हू, बल्कि जो काम हम करते है, उसके मूल मे कुछ विचार है और वे काफी गहरे है, उसपर अगर हम नही सोचते है, उसका चिंतन और अध्ययन नही करते है तो आखिर हमारी स्फूर्ति का क्षय होता है। दिन-ब-दिन स्फूर्ति जीर्ण होती है। पर इस तरफ कार्य-कर्ताओ का ध्यान बहुत कम गया है। जब गाधीजी थे, तब भी यही हालत थी। मैने एक कार्यकर्ता से पूछा कि "भाई, गाधीजी ने अभी एक लेख लिखा है। वह आपने पढा है?" उन्होने जवाब दिया, "नही पढा है।" मैने उनसे कहा, "वह पढने लायक था।" वह कहने लगे, "पढने लायक तो वह होगा ही, क्योकि गाधीजी जो लिखते है, वह पढने लायक ही होता है। पर हम उनका काम कर रहे है और काम ही तो उनके कहने का सार है। वह तो हम कर ही रहे है। अब हमको काम मे से उतनी फुरसत नही होगी तो हम पढ नही सकते।" मैने कहा, "अगर कार्यकर्ताओ को पढाने की जरूरत नही थी तो गाधीजी को लिखने की जरूरत ही क्या थी? तो वह भी कर्मपरायण व्यक्ति है और तिसपर भी हर हफ्ते कुछ-न-कुछ लिखते जाते है। हमको समझना चाहिए, उसमे नई बाते और नया प्रकाश

मिल सकता है। तो हमको वह पढना चाहिए।

कुछ लोग गाधीजी के वचनो का ही प्रमाण देते है और गाधीजी ने कभी-कभी कहा भी है कि 'लोग पढते बहुत है, लेकिन उनको काम करना चाहिए।' पर उसका अर्थ इतना ही है कि जो नाहक पढते है, व्यर्थ के चिंतन मे अपना समय बिताते है, उनके विरुद्ध वह कथन है। परन्तु जो कार्यकर्ता है, वे दरअसल ज्ञान के हकदार है। वे ही पढने के और चिंतन के अधिकारी है। जो काम नही करते, वे ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी नही, वे ज्ञान की चर्चा किया करे। और वास्तव मे जो ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी है, क्योकि वे कर्मपरायण है, अपना हक छोडे और ज्ञान की कीमत न करे तो उनसे कर्म निस्तेज बनता है। यह अनुभव हमारे ध्यान मे आया है। हम बोलते जाते है, लिखते जाते है; लेकिन मैंने देखा कि दो वर्षों के दरमियान जो बात मैंने पच्चीसो बार कही होगी और जिसके बारे मे लिखा भी होगा, फिर भी वह बार-बार दोहरानी पडती है। खैर, मै थक तो नही जाता, मेरे लिए तो वह जप ही होता है।

वस्तुस्थिति ऐसी है कि जितनी चिंतन की आवश्यकता किसी भक्तिमार्गी को हो सकती है, उससे अधिक हमको है, क्योकि भक्तिमार्गी अपनी व्यक्तिगत शुद्धि करके सतोष मान लेता है और अपेक्षा रखता है कि उससे जितनी दुनिया की सेवा होगी, उतनी होगी, पर हम उससे सतुष्ट नही रहते है, बल्कि व्यक्तिगत शुद्धि का काम भी हम अपनी सेवा से कर लेते है। तो जब हमारी बाहर की सेवा और अन्दर की चित्तशुद्धि की वृत्ति, दोनो को हम एकरूप मानते है तो हमारे ऊपर बहुत जिम्मेदारी आती है कि हम बहुत गहराई मे जाकर चिंतन करे। कोई भक्ति-मार्गी सत्पुरुष ऐसा दावा नही करता था कि मेरे आसपास अगर मेरे विचार का प्रभाव नही दीखता तो मुझमे ही कोई न्यूनता है और उसके लिए प्रायश्चित्त आदि करना चाहिए। वे समझते थे कि आसपास के लोगो के भी स्वतत्र कर्म होते है और इसलिए उनकी चित्तशुद्धि की कोई जिम्मेदारी हमपर नही है। सहज भाव से एक-दूसरे का परिणाम एक-दूसरे पर होगा, लेकिन हम समाज और व्यक्ति मे ऐसा फरक नही करते और अपनी चित्त-शुद्धि की कसौटी ही यह मानते है कि आसपास के वातावरण और परिस्थिति पर क्या परिणाम हुआ है। हम अपेक्षा रखते है, अगर हम सत्यवादी और सत्यनिष्ठ है तो, हमारे आसपास के लोगो मे निर्भयता और सत्यनिष्ठा होनी चाहिए। हमसे कोई चीज वे छिपाये, ऐसा नही होना चाहिए। और, अगर कोई चीज आसपास का मनुष्य छिपा लेता है तो हम यह मान लेते है हमारी सत्यनिष्ठा मे, सत्योपासना मे कमी है। तो अपनी चित्त-वृत्ति की कसौटी आसपास के वातावरण पर से करने की वृत्ति जो रखते है, उन-पर बहुत गहराई मे जाने की जिम्मेदारी है।

एक दिन बापू कह रहे थे कि "मुझमे सत्य की कमी है।" उसका कारण वह

बताने लगे कि "फला मनुष्य इतने दिन तक मेरे पास रहा, लेकिन फला चीज मुझसे उसने छिपाई। मेरे सामने कहने की उसको हिम्मत नही हुई, दुनिया मे जाकर तो कही है। दूसरे लोग जान भी गये है, लेकिन मेरे सामने वह चीज नही कही है। अगर मै सत्यनिष्ठ होता तो उस मनुष्य को पहले मेरे पास आकर कहने की इच्छा होती और दूसरो को कहने मे उसको सकोच होता। अपना पाप या दोष, जो भी हुआ हे, वह जैसे लडका मा के पास जाकर कह सकता है, वैसे मेरे पास आकर वह कहता। लेकिन हुआ उलटा। दुनिया मे मित्रो के सामने उसने वह बात कही है, लेकिन कई बरस हुए, अभी तक मेरे सामने उसने बात नही कही। इसका अर्थ यह है कि मुझमे सत्य नही हे। अगर सत्य होता तो सामनेवाले को सत्य बोलने की हिम्मत होनी ही चाहिए। मेरे नजदीक रहनेवालो मे अगर वह हिम्मत नही आई तो वह मेरी सत्य की कमी है।" मै सुन रहा था। बहुत चर्चा हुई, उसका वर्णन यहा मै नही करूगा, लेकिन जो दृष्टि उन्होने रखी, उसमे सत्य का एक अश हे। सत्य का पूरा अश उसमे नही है। दूसरी बाजू भी उसमे है और मैने थोडे मे कहा भी था कि जो परस्पर परिणाम होता हे, मनुष्य की वृत्ति और आसपास की परिस्थिति का जो सबध आता है, वह 'अहल्या-राम-न्याय' से होता है। यह मैने एक नया न्याय बनाया है।

अहल्या-राम न्याय का सार यह है कि रामचन्द्रजी अपनी यात्रा मे एक आश्रम मे आये और वहां के एक पत्थर को उनके चरणो का स्पर्श हुआ तो उसका उद्धार हुआ और उसमे से अहल्या प्रकट हुई। ऐसी कहानी है। तो यह महिमा किसकी ? रामचन्द्रजी की या अहल्या की ? यो उनका चरणस्पर्श लाखो पत्थरो को हुआ, लेकिन उसमे से कोई अहल्या नही निकली। इसीलिए वह केवल राम के चरण-स्पर्श की जिम्मेदारी नही है। अगर हम यह कहे कि वह गुण उस पत्थर का था, जिसमे अहल्या सुप्त पडी थी तो हजारो लोगो के पावो का स्पर्श उसको हुआ, फिर भी उसका उद्धार नही हुआ और रामचन्द्रजी के चरण के स्पर्श से ही उसका उद्धार हुआ। तो इसकी पूरी जिम्मेदारी अहल्या पर भी नही है। इस तरह कुछ गुण रामचन्द्रजी का और कुछ गुण अहल्या का, दोनो के गुण मिलकर एक बात बनी है। तो केवल एक पर जिम्मेदारी हम डालते हे तो पूरा न्याय नही होता और पूरा सत्य उसमे नही आता। यह बात बापू को मैने कही थी। और भी बहुत चर्चा चली, उसमे अभी मै नही पडता, लेकिन उन्होने जो बात कही कि अगर हम सत्यनिष्ठ है तो उसका असर आसपास के वातावरण पर होना चाहिए, यह अपेक्षा मिथ्या नही है।

लेकिन ऐसी अपेक्षा भक्तिमार्गी सत्पुरुष नही रखते है। वे कहते है कि दुनिया ईश्वर की इच्छा से चलती है, इसलिए यह जरूरी नही हे कि मेरे स्पर्श मे शेर अपना शेरपन छोडे, गाय अपना गायपन छोडे। एक भक्त ने तो मुझे कहा कि

ईश्वर के होते हुए भी दुनिया मे अगर बदमाश रह सकते है तो मेरे रहते हुए दुनिया मे बदमाश रहे तो कौन-सी आश्चर्य की बात है ? मै कौन ईश्वर से बडा हू कि मेरी सगति से बदमाश सुधर सके, जबकि सर्वत्र ईश्वर-विराजमान होते हुए भी, उसकी सगति मे नही सुधर रहे है। यह भक्तिमार्ग की दलील है। इसमे परम नम्रता है, अहकार का पूर्ण अभाव है और उस दृष्टि से सत्य का एक अश उसमे है।

लेकिन हम सत्याग्रही के नाते यो मानते है कि हमारी चित्तवृत्ति अगर शुद्ध है तो आसपास के वातावरण पर भी उसका परिणाम होना चाहिए। और इस कल्पना का आधार लेकर हमने सत्याग्रह की योजना की है। सत्याग्रह के तत्त्व-ज्ञान मे यह एक मूल विचार पडा है। अगर इस विचार को हम मानते है तो हमपर बहुत जिम्मेदारी आती है। जीवन की गहराइयो मे हमको जाना चाहिए और भक्त जितनी गहराई मे पहुचे थे, उससे अधिक गहराई मे हमको जाना चाहिए। वैसा नही हो रहा और अगर विचार की गहराई मे हम नही पहुचते तो मै कहना चाहता हू कि यह एक ऐसी भूमि है कि हमारा आचार टिकनेवाला नही है। जहातक हमारा खुद का ताल्लुक है, वहा हमारा आचार टिकेगा, क्योकि हम आग्रह से उसको टिकाना चाहेगे, लेकिन यह हिदुस्तान एक तत्त्व-ज्ञान की भूमि है और यहा हर चीज के गहरे विचारो मे जाने की लोगो की आदत है।

बुद्ध-धर्म ने यह प्रयोग करके देखा। वे कुछ आचारो तक सीमित रहे, कुछ सामाजिक सुधारो तक सीमित रहे और तत्त्व-ज्ञान की गहराई मे नही गये, नतीजा उसका यह हुआ कि बौद्ध धर्म का कुछ कल्याणकारी स्पर्श हिदुस्तान को जो मिला सो मिला, लेकिन वह हिदुस्तान मे टिका नही, क्योकि विचारो की गहराई मे जाकर मूल तत्व-ज्ञान मे पहुचना चाहिए, वह बौद्ध धर्म ने नही किया। मेरा कहना है कि यह भूमि ही ऐसी है कि विचार की गहराई मे गये बगैर कोई भी जीवन का व्यवहार टिक नही सकता। हम देखते है कि गीता मे एक सादा-सा सवाल लडाई पर से निकला और उसपर से कितनी गहराई मे वह गये, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विचार का पृथक्करण किया, प्रकृति-पुरुष का विचार क्या लाये, आत्म-स्वरूप का वर्णन क्या किया, हजार बाते उसमे वह लाये और आखिर नतीजा यह हुआ कि मोह-निवृत्ति हुई। अब इतनी गहराई मे, एक सादे-से सवाल पर से जाना क्यो होता है, यह समझ मे नही आयेगा, अगर हिंदुस्तान की जो भूमिका है, उसको हम न समझे। तो हम विचार की गहराई मे नही जाते, यह एक कमी हमारे मे है। वह हमको नही रखनी चाहिए, अगर हम चाहते है कि एक बडा काम हमसे बने।

अब तीसरे दोष का उल्लेख करता हू। हम लोगो मे शक्ति कम नही है और लोगो की हमारे ऊपर आशा भी बहुत है। उसपर भी यह हो रहा है कि हमारे सारे काम बिल्कुल अलग-अलग से हो रहे है और किसीके काम का किसीको पता तक नही, ऐसी भी हालत है। उसका नतीजा यह हुआ कि प्रत्यक्ष कोई

रूप प्रकट नही होता है। अगर हम तेल-ही-तेल इकट्ठा करे और एक शख्स के पास तेल की वोतले पडी है, दूसरे शख्स के पास माचिस का भडार पडा है, तीसरे के पास लालटेन वहुत-से पडे है, फिर भी जवतक उनका योग नही होता तबतक प्रकाश नही होता, अन्धकार कायम रहता है। तो ऐसा हमारा हो रहा है।

कताई-मडल स्थापित होते है तो कातते है। बेचारे हफ्ते मे एक बार इकट्ठा होते है, कुछ काम करते है और घर पर चले जाते है। उनका कोई प्रचार दुनिया मे नही होता। उनकी खुद की स्फूर्ति दिन-व-दिन कम होती है। पचास मडल स्थापित हुए, उनमे से पच्चीस गिर गये। वाकी के पच्चीस कुछ काम करते है, लेकिन उनका पता दूसरो को नही होता। ग्रामोद्योग-सघ को इसकी फिक्र नही कि कताई-मडल कहा स्थापित हुए। फेहरिस्त तो उनकी आती है, लेकिन यह देखने की जिम्मेदारी उनपर नही हे। अब ग्रामोद्योग की वात अगर नही चलती है तो उसके वारे मे चौकन्ना रहने की जिम्मेदारी चरखा-सघ पर नही है। इस तरह हमारा सारा चल रहा है। यह गलत है। उसमे शक्ति नही है, यह सब जानते है। फिर भी चार-पाच साल हुए, वह चल ही रहा है। तो मुझे इस समय लगा कि जब हम बडा काम करने जा रहे है और सारी शक्ति उसमे केन्द्रित किये वगैर काम होनेवाला नही है तो फिर से उस विषय की ओर मैने लोगो का ध्यान खीचा।

जयप्रकाशजी ने भी एक दफा जिक्र किया कि सब रचनात्मक सघो का एक सघ बन जाय तो अच्छा रहेगा। ये सब अलग-अलग रह जाते है तो उसमे से ताकत निर्माण नही होगी। यह इशारा एक सुहृद और मित्र के नाते उन्होने किया और मुझे कहने मे खुशी होती है कि उसके वारे मे गम्भीरता से सोचा जा रहा है। सर्व-सेवा-सघ एकरूप बनेगा और जो मुख्य-मुख्य सघ है, वे उसमे विलीन होगे। मै तो मानता हू कि यह दोप छोटे-छोटे कार्यकर्ताओ का नही है, जो मुख्य कार्यकर्ता है, उन्हीका है, क्योकि उन्होने जो एक रास्ता वताया उसीपर दूसरे जाते है। अगर रास्ता ऐसा वताया होता कि जहा भी कोई काम शुरू होता है, वह सर्व-सेवा-सघ का ही होता है और सर्व-दृष्टि से ही वह काम होगा, याने सर्व-सेवा वह होगी तो कही सिर्फ कताई-मडल स्थापित नही होगा, बल्कि सर्व-सेवा-केन्द्र ही होगा। उसमे कताई भी चलेगी, ग्राम-उद्योग भी चलेगा, नई तालीम चलेगी, हरिजन-सेवा चलेगी, अर्थात् जो कार्यकर्ता वहा होगा, उसकी शक्ति और वृत्ति के अनुसार किसी काम पर अधिक जोर पडेगा, किसीपर कम पडेगा। वह वहा का कार्यकर्ता वहा की परिस्थिति, माग आदि पर निर्भर रहेगा। फिर भी जो केन्द्र खुलेगा, वह सर्व-सेवा-केन्द्र खुलेगा। यह विचार किया जा रहा है और वह दोप मिट जायगा, ऐसा मुझे लगता है। लेकिन मुझे लगा कि इस ओर कार्यकर्ताओ का ध्यान खीचू और वे सर्वागी दृष्टि रखकर मिल-जुलकर काम पूरा करे, तो अच्छा रहेगा, नही तो जो आज चलता है, वह चन्द दिनो तक चलेगा और

बाद मे सारा-का-सारा खत्म हो जायगा।

इसके अलावा आखिर मे और एक बात। बहुत निरीक्षण करके मैं इस नतीजे पर आया हू कि रोज सुबह-शाम जो प्रार्थना करते है, वह गहरी नही है। मैने बहुत सस्थाओ मे देखा है कि एक सदाचार या शिष्टाचार के तौर पर वह चलती है। सदाचार अच्छा है, लेकिन केवल सदाचार के तौर पर वह चलेगी तो उसमे वह अनुभव नही आयेगा, जो सच्चे दिल से की हुई प्रार्थना से आता है। बापू ने इस बारे मे अपने जीवन से और मरण से हमको बहुत शिक्षण दिया है। आखिर मे वह गये तब प्रार्थना के उत्साह मे थे और प्रार्थनामय होकर उन्होने देह-परित्याग किया और जहा वह गोली उनके शरीर पर लगी, वहा उन्होने परमेश्वर का नाम लिया। यह कोई छोटी बात नही है। वह निरन्तर जागृत रहते थे और दो दफा जो प्रार्थना करते थे, वह केवल सदाचार के तौर पर नही, बल्कि अपना हृदय उसमे रखते थे। वह तो कहते थे कि हर सास के साथ मेरी प्रार्थना चला करती है। और वह केवल अहकार नही था, या कल्पना नही थी, बल्कि उनके जीवन की वह एक मुख्य वस्तु थी। तो हम जो प्रार्थना करते है, वह शिष्टाचार तो होता हैं, लेकिन उसकी गहराई मे हम नही जाते। यही देखियेगा। यहा हमने खाने के लिए कितना इन्तजाम किया। सारा तालीमी सघ, आशादेवी और बिहार के सारे लोग उसमे लगे, तब हमको खाना मिला। इतना आयोजन हमने खाने के लिए किया। लेकिन प्रार्थना के लिए हमने कितना आयोजन किया होगा? कितना चितन किया होगा? हमने प्रार्थना तो की, लेकिन उसके लिए हमको बहुत करना पड़ा है, ऐसा नही है।

प्रार्थना ऐसी वस्तु है कि उसके लिए बाहर का कोई खास काम करना भी नही पडता है। जो करना पडता है, वह अन्दर से है और वह एक क्षण मे हो जाता है। उसके लिए ज्यादा समय भी नही देना पडता। उतना अगर हम करे तो उससे हमे बल मिलेगा। और जैसे-जैसे हम एक-एक कठिन काम उठाने जा रहे है, वैसे-वैसे सिवा परमेश्वर के आधार के, उनकी पूर्ति के लिए हममे क्या ताकत होगी, हम नही देखते। अगर ईश्वर का आधार सच्चे दिल से हम नही रखते तो यह हो नही सकता कि सत्यादि धर्मो पर हम अविचल कायम रहे।

शकररावजी ने कल जिक्र किया था कि "हम जो काम करते हैं, वह इहलोक के लिए, याने यहा के प्रत्यक्ष अनुभव के लिए करते हैं। पुराने जमाने मे जो यात्रा और यज्ञ इत्यादि होते थे, उसमे वे परलोक का खयाल करते थे।" तो हमारे काम मे और उनके काम मे, यह फर्क है। यह फर्क तो उन्होने ठीक बताया, लेकिन सोचने की बात है कि परलोक का नाम भी क्यो लिया जाता है? इसलिए लिया जाता है कि जब एक व्यक्ति को हम कहते है कि मुझे सत्य पर अविचल रहना चाहिए और उससे मुझे नुकसान नही होगा बल्कि लाभ होगा तो उसके जवाब मे वह

कहता है कि फला मौके पर वह सत्य बोलता है तो उसका नाश होता है और असत्य बोलता है तो बच जाता है। अब आप उसको क्या कहेगे ? उस हालत मे भी असत्य नही बोलना चाहिए। इस तरह अविचल सत्यनिष्ठा, अविचल निज-निष्ठा जो मानना चाहते है, वे उसके लिए आधार क्या बतायेगे ? तो जिन्होने एक दूसरे ढग से सोचा था, उन्होने परलोक का आधार बताया कि भाई, असत्य बोलोगे तो चाहे इस दुनिया मे लाभ होता-सा दीखेगा लेकिन वह परलोक ही स्थायी है, यह दुनिया तो चन्द दिनो की है। तो चन्द दिनो का लाभ देखकर स्थायी का लाभ नही छोडना चाहिए। वह एक बाल-भाषा थी, बाल-भाषा याने अविकसित भाषा। अगर विकसित भाषा मे बोलना है तो यह कहना चाहिए कि अगर हम असत्य बोलते है तो अत समाधान नही हो सकता और अत समाधान की कल्पना समझना या समझाना जहा कठिन हो जाता है वहा परलोक की याने मृत्यु के बाद जीवन की भाषा काम मे लाई जाती है। तो चाहे आप अत समाधान का आधार रखो, चाहे परलोक की जिदगी का नाम लो, हर हालत मे सत्यादि नीति-धर्मों पर अविचल कायम रहना है, यह मुख्य वस्तु है और इसकी सिद्धि के लिए और प्रेरणा के तौर पर परलोक का या आत्मकल्याण का या अत समाधान का नाम लिया जा सकता है। तो जिसकी भूमिका पर जितना विचार हुआ होगा, उसके अनुसार वह सत्य का उपयोग करेगा। अत हम जरूर समझते है कि सत्यादि नीति-धर्म के अविचलित पालन के लिए अत समाधान से बढकर दूसरी कोई प्रेरणा अच्छी नही हो सकती। पर जिन्होने परलोक आदि का आधार लिया था, उन्होने कोई गलत काम नही किया था, क्योकि उनका ट्रेन् अविचलित सत्य-निष्ठा कायम रहे, यही था। यह तो मैने सहज एक बात प्रसग से कही। लेकिन कहना यह है कि अगर हम अपने धर्मों पर अविचलित रहना चाहते है और उससे दुनिया मे हँसी होती हुई दीख पडे तो भी उसको छोडना नही चाहते तो हमे गहरे आधार की जरूरत रहेगी। इसमे ईश्वर की प्रार्थना जो मदद दे सकती है, वह और किसी तरह से नही मिल सकती। मै चाहता हू कि हमारे सारे कामो का आधार हम परमेश्वर-निष्ठा मे रखे और जो प्रार्थना हम करते है, उसमे अधिक जान हम डाले, अपना दिल उसमे रखे।

अब आखिर दो ही शब्द कहने है। अगले साल जो हम करने जा रहे है, उसके लिए कम-से-कम साल भर पूरा समय देनेवाले लोग चाहिए। जो लोग तैयार होगे, वे अपना नाम सर्व-सेवा-सघ के पास रखे तो उनको महीना दो-महीना तालीम देने की व्यवस्था की जायगी। उनकी सेवा का भी उपयोग किया जायगा। जो आना चाहते है, वे अपना नाम दे दे।

पाचवा सर्वोदय-सम्मेलन,
चाडिल, ९ मार्च १९५३

५ : : धर्म-रहस्य

ॐ शाति शाति शाति ।

इस साल सेवक बहुत आये, जितनी कि यहा के इन्तजाम करनेवालो ने आशा नही रखी थी। और कडी धूप मे, इतनी तादाद मे सब प्रान्तो से लोग आये, यह एक बहुत ही आशादायक घटना है और इसका कुछ अर्थ है। सर्वोदय-समाज मे हमने, जिसे अनुशासन कहते है, नही रखा और इसका कोई खास विधि-विधान भी नही है। यहा आने से लोगो को अपने लिए कोई निजी स्वार्थ प्राप्तव्य है, ऐसी भी बात नही है। यहा आने से कोई भौतिक वस्तु उनको हासिल होनेवाली है या ऋद्धि-सिद्धि, ताकत, सत्ता प्राप्त होगी, वैसी भी कोई सभावना नही है। इसपर भी लोग आते है, बडी शाति से सुनते है, विना नियमो के और विना विधि-विधान के नियमित वर्ताव करते है और जो सकल्प किये जाते है उनके प्रस्तावो का रूप न देते हुए भी उसपर अमल करते है, यह छोटी बात नही है। अन्यत्र प्रस्ताव किये भी जाते है और उनपर अमल कराना पडता है—मुश्किल से। अनुशासन भी कराना पडता है। कृत्रिम उपायो का भी अवलम्बन करना पडता है और इतना सब होने पर भी, प्रस्ताव पर अमल न हो पाये, ऐसा भी बनता है—उन सस्थाओ मे, जहा पर अनुशासन पर जोर है। पर यहा कोई अनुशासन न होने पर भी, और प्रस्ताव का कोई बंधन न होने पर भी पच्चीस लाख एकड का जो संकल्प किया गया, उसकी पूर्ति कैसे हुई ? लोगो ने काम किया, तब तो हुई। करीब ढाई लाख दानपत्र हिंदुस्तान भर से मिले। जो जमीन का आकडा है, उसकी उतनी कीमत नही, जितनी उन दान-पत्रो की संख्या की कीमत है। ढाई लाख दान-पत्र मिले है तो इसका अर्थ होता है कि इतने लोगो के हृदय मे प्रवेश हो सका। किसीने तो मेहनत की होगी ? कोई कष्ट उठाया होगा—कार्यकर्ताओ ने। सकल्प-सिद्धि के वास्ते कोई हलचल की होगी तभी तो यह हुआ।

तो यह एक बडी ही आशादायक वस्तु है और उससे मन मे निश्चय हो सकता है कि जिसे हम शासनमुक्त समाज कहते है, वह कभी लाया जा सकता है। शासनामुक्त समाज, जहा स्वयशासन हो—अत शासन हो। दु.शासन हो, यह तो कोई नही चाहता, पर दूसरो का चलाया हुआ सुशासन भी न हो, स्वशासन ही हो, ऐसा कोई समाज कभी वन भी सकता है, इसकी आशा की झलक, सर्वोदय-समाज मे जिस ढग से काम हो रहा है, उस ढग से हो सकती है, ऐसा मेरा दावा है। यह बहुत ही बडी चीज है। मुझे मालूम नही कि इस तरह का कोई दूसरा समाज भी कही है। अगर मै सुनूगा कि है तो मुझे बडी खुशी होगी और आश्चर्य भी नही होगा, क्योकि दुनिया भर मे समानधर्मी पुरुष होने ही चाहिए। पर जहा-तक मै जानता हू, ऐसे बहुत-कुछ समाज दुनिया मे मौजूद नही है। यह समाज

उस दिशा मे जा रहा है और काफी सफलता हासिल हो रही है।

इसलिए आज जो प्रस्ताव आपके सामने पढा गया—सर्व-सेवा-सघ का, उसमे शासन से मुक्ति पाने की जो घोषणा की है, वह कोरी कल्पना नही, बल्कि उसका अमल हो सकेगा, ऐसा प्रतीत होता है। वह एक बहुत ही शुभ चिह्न है। आपने देखा कि कल से यहा तो हवा ही बदल गई। इतनी गर्मी मे ठडक पैदा हुई। किसीको कोई गर्मी का भान हुआ होगा, ऐसा मैने महसूस नही किया। जहा हृदय शीतल होता है, वहा बाहर की गर्मी को कौन पूछता है? शीत-उष्ण समान मानने की बात हम सुनते है, सत्पुरुषो के बारे मे। वह इसी तरह से बनता है। हृदय मे जब कोई लगन पैदा होती है तो उस एकाग्रता मे बाहरी सुख-दु ख खत्म हो जाते है। मैने कहा कि कल से हवा बदल गई, यानी उसमे एक बिजली का सचार हुआ, जीवनदान देने से। और जब यह बात जयप्रकाशबाबू ने बडे प्रेम से विनय से, सद्भाव से हम लोगो के सामने रखी तो मै तो पिघल गया और सुबह उठते ही मै सोचने लगा कि मुझे भी इसमे कुछ करना चाहिए। तो मैने पत्र लिख दिया कि "भूदान-यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसात्मक क्राति के लिए मेरा जीवन समर्पण।"

इसमे कोई नई बात तो मैने नही की। परतु हमारा एक पूरा साध्य मैने शब्दो मे रख दिया। दार्शनिको को बिना शब्द-सिद्धि के जैसे समाधान नही होता, वैसी ही मेरी हालत है। तो ठीक शब्द सोचने मे कुछ समय गया और इसमे जो चद शब्द ही रखे है, उनपर भाष्य लिखा जा सकता है। उन शब्दो मे अपनी प्रतिज्ञा आप लोगो के सामने मैने दुहराई। उसमे मेरे लिए कोई नई चीज तो नही थी, ऐसा एक तरह से कहा जायगा। लेकिन उसमे बहुत ही नई चीज थी, जिसका इशारा कल हमारे मित्र आचार्य कृपालानी ने उस सभा मे किया—शाम की सभा मे। उनकी एक प्रकृति है, बोलने का एक तरीका है। उपनिषद् बोल लेते है, लेकिन पता नही लगता कि कैसे क्या कहा! लोगो को लगता है कि विनोद ही हुआ। किसीको मालूम हुआ होगा कि मजाक हुआ। लेकिन नही, उन्होने बडे ही सूचक ढग से—मै कहता हू कि अहिंसात्मक ढंग से—सुझाया कि भाई, जीवनदान तो करते हो, लेकिन गदी चीज तो नही अर्पण करोगे, इसका खयाल रखो। शुद्ध वस्तु अर्पण करनी होती है, तब तो जीवनदान का विचार अच्छा है। पर जीवन-दान का जो विचार करेगा और सकल्प करेगा, वह कचरे का तो दान नही कर सकता। इस वास्ते उस सकल्प का अर्थ जीवन-शुद्धि का ही सकल्प होता है। यह उन्होने कल बडे ही सुदर ढग से सूचित किया, कुछ लोगो को यहातक लगा कि एक मजाक ही हुआ। बात ऐसी नही थी। वह एक हृदय की बात समझने की होती है। जो साहित्यिक होते है, कला-रसिक होते है, वे ऐसे ढग से बात रखते है कि कोई उपदेश दिया तो किसीको वैसा आभास भी न आ पाये और फिर भी

उपदेशपूर्ति तो हो जाय।

हमने आज जो यह प्रतिज्ञा की आप लोगो के सामने, और आप लोगो ने हमारे सामने, इस तरह एक-दूसरे को साक्षी रखकर जीवन-अर्पण की जो प्रतिज्ञा की है, वह जीवन शुद्धि की भी प्रतिज्ञा है और यह हमारे लिए कोई विशेष बात हो जाती है। हमने अपना जीवन तो लगाया है, इस काम मे, और इसी तरह के दूसरे सार्वजनिक कामो मे, ऐसा ही कहा जायेगा। मेरे लिए तो जरूर कहा ही जायगा कि सिवा सार्वजनिक सेवा के मैने कोई काम किया ही नही है। तिसपर भी भूदान-यज्ञ-आदोलन जैसा एक विल्कुल ही बुनियादी और बेसिक, काया पलटने का जिसमे माद्दा है, ऐसे आदोलन के लिए जब हम जीवनदान करते है तो अभी तक जितना चित्त-शुद्धि का खयाल हमने रखा था, उससे बहुत ज्यादा चित्त-शुद्धि का खयाल रखने की जरूरत होती है और इसीलिए इसमे हमारे लिए नई चीज है। इसमे लाखो लोगो से सबध आयेगा। भगवान् शकराचार्य ने इसपर लिखा है। वह सन्यासी थे तो भिक्षा की बात करते थे और भिक्षा मे जो मिलेगा वही खाना चाहिए, ऐसा कहते थे। वह उसकी खूबी बताते थे कि कोई भिक्षा न दे तो उससे सुख होता है या दु ख, और कोई भिक्षा दे तो चित्त पर क्या असर होता है, यह भिक्षा मागनेवाले को रोज देखने को मिलता है और इस वास्ते वह एक बडी साधना होती है। अच्छी भिक्षा मिली तो क्या भावना हुई, रद्दी भिक्षा मिली तो क्या भावना हुई? कुछ भी भिक्षा न मिली तो क्या भावना हुई? आदर के साथ मिली तो क्या भावना हुई और अनादर के साथ मिली तो क्या भावना हुई? यानी रोज का खाना एक लबोरेटरी का प्रयोग ही हुआ—वह भिक्षा मागना। चित्त पर क्या असर होता है, यह देखने का मौका उस भिक्षा से मिलता है। इस तरह का विश्लेषण करके उन्होने कहा है कि सन्यासी का यह बडा शुभदायक कार्य-क्रम है। उसी भिक्षा का कार्य-क्रम हमारे पास है। जायेगे जमीन मागने तो कोई देता है, कोई गाली भी सुनाता है, कोई आदर करता है कोई अनादर करता है; कोई कम देता है, कोई ज्यादा देता है, कोई ठगने की नीयत भी रखता है, ऐसी पचास प्रकार की भावनाए, वासनाए, कल्पनाए प्रकृति मे होती है। लेकिन ये सारी आत्मा मे नही होती इतना अगर दृढ निश्चय हमारे मन मे रहा तो हम ऐसे अनुभवो के बावजूद शात रहेगे, अविचल रहेगे। हमारी वाणी से कोई बेजा बात नही निकलेगी, अविनय का शब्द नहीं निकलेगा। लेकिन जरा अगर यह खयाल हुआ कि यह आत्मा नही, बल्कि सामनेवाला जो बोल रहा है, उसका शरीर, उसकी वाणी, उसका मन यही वह है, ऐसी अगर भावना, ऐसा यदि विचार रहा तो अगर उसने कोई अच्छी बात कही तो सतोष एव हर्ष, और बुरी बात कही तो दु ख, विषाद, क्रोध इत्यादि भावनाए पैदा होगी। पर रोज भिक्षा मागने का जिन्होने यह धधा शुरू कर दिया, उनको इस चीज का रोज अनुभव यदि आयेगा, तो आत्मपरीक्षण के

लिए रोज ही मौका मिलेगा। हमारे लिए बडा ही उपयोगी कार्यक्रम है और ऐसे कार्यक्रम मे शोधन की बहुत ही जरूरत रहेगी। जिस दृष्टि से जिन्होने आज जीवन-दान दिया, यद्यपि उनमे से कुछ लोग ऐसे जरूर थे कि जो पहले ही से काम करते थे और वरसो से काम करते थे और कुछ नये भी हैं, लेकिन जो पुराने भी थे, उनके लिए भी वह प्रतिज्ञा नई प्रतिज्ञा हो जाती है, अगर इस दृष्टि से हम इसको देखें।

अब, एक बात और। जब हम यह कहते है कि भूदान-यज्ञ मे कार्यकर्ता अपनी सारी ताकत लगाये तो वहुत-से कार्यकर्ता, जो पहले से इसका रचनात्मक 'काम करते होते है, कहते हैं कि "हम जिस काम मे हैं, वह भी पुण्य-कार्य है और वह हमारा कर्तव्य भी है। वरसो से हम वह करते आये है। उनको हम कैसे छोड सकते है? उसको सम्हालते हुए जितना हो सकता है, उतना करना ही हमारा धर्म होगा। माना कि भूदान-यज्ञ एक श्रेष्ठ कार्य है—उस कार्य की तुलना मे, जो आज कार्य हम कर रहे है, लेकिन फिर भी गीता क्या कहती है? स्वधर्म गौण है, यह समझ-कर क्या उसे छोडा जा सकता है? और पर-धर्म श्रेष्ठ है, यह समझ करके क्या उसे कवूल किया जा सकता है? तो इस वास्ते धर्म-निर्णय मे श्रेष्ठ-कनिष्ठ का विचार नही कर सकते, और जो काम हम करते है, वह सम्हालते हुए ही यदि इस काम को करेंगे तो क्या हर्ज है?"

ऐसे लोगो को मैं समझाता हूं कि भाइयो, धर्म-विचार की एक मर्यादा है, एक हद है। भगवान् श्रीकृष्ण ज़िंदगी-भर शत्रुओ से लडे। वह पराक्रमशील थे, दिग्गज योद्धा थे। लेकिन एक समय आया, जब उन्होने ज़ाहिर कर दिया कि 'अब मेरी मर्यादा हो गई। इसके आगे मैं शस्त्र-धारण नही करूगा।' आप लोग जानते है कि 'मैं नि शस्त्र होकर जो भी मदद हो सकती है, करूगा', ऐसी प्रतिज्ञा करके वे पाडवो की मदद मे गये। उसके आगे जिंदगी-भर—और काफी लबी जिदगी उनकी रही—उन्होने शस्त्र का इस्तेमाल नही किया, फिर भी महाभारत मे प्रसग आया और एक मौके पर उनको शस्त्र उठाना पडा, प्रतिज्ञा का अक्षरार्थ तोडना पडा, इत्यादि। उसमे मुझे अभी नही पडना है। लेकिन सतत शस्त्र चलानेवाले ने एक दिन कह दिया कि इसके आगे मैं नही चलाऊगा तो उन्होने कर्मयोग छोडा नही, वल्कि कर्मयोग को वह ऊची सतह पर ले गये।

हमको भी समझना चाहिए कि जिसे हम पुण्य-कार्य कहते है और धर्म कहते है, वह एक हद तक साधक होता है और उसके आगे वह बाधक हो जाता है। इसीलिए तत्त्वज्ञानियो को कहना पडा कि—"धर्मोपि इह मुमुक्षो पापमुत"—धर्म ही—जो मुमुक्षु है,-छूटना चाहता है, उसके लिए पाप हो जाता है। तो यह जरा समझने की वात है कि कुछ हद तक एक काम को विकसित करने के वाद, उस काम के जरिये उस मनुष्य का विकास होना बन्द हो जाता है।

गणित का एक प्रोफेसर पच्चीस साल गणित सिखाता रहा। दो-चार साल तो खैर, उसके सिखाने की कला सीखने मे गये होगे। लेकिन मैने ऐसा प्रोफेसर देखा है--गणित का; जो बहुत ही उत्तम सिखाता था। व्याख्यान सुन्दर देता था गणित पर, लेकिन सुन्दर व्याख्यान देते-देते नीद भी लेता था, ले सकता है। वह प्रोफेसर आखिर पकड़ा गया। यानी मैने एक ऐसा प्रश्न बीच मे पूछा कि वह एकदम चौक गया और कहने लगा--हँसते-हँसते कि "देख, तूने जो यह सवाल पूछा है, यह 'आउट ऑव दि वे' है और इसलिए इसका जवाब मै आज नही दे सकता, कल दूगा। आज मै सिखाता हू तो उसके साथ थोडी-सी नीद भी मै ले लेता हू।" इसका उस वक्त मुझे इतना भान नही था। लेकिन बीच मे, मुसाफरी मे, अपने कन्धे पर मै थोडा बोझ रखता था। पुरानी बात है, इस वक्त की नही है। चलता था तो चलते-चलते जो कन्धे पर बोझ रखा रहता, उसीको तकिया समझकर अगर सिर को उसका आधार दे दिया तो चलते-चलते ही मुझे नीद आती थी। अर्थात् रास्ता अच्छा होना चाहिए, नही तो ठोकर लगेगी। *इस तरह एक काम मे मनुष्य जब प्रवीण हो जाता है तो उस काम के जरिये* उसका विकास होना बन्द होता है।

इसलिए शास्त्रकार किसीको चैन नही लेने देते। ब्रह्मचारी को, गुरु के घर जाने के पहले, पिता के घर मे समाधान ही था। तो उन्होने कहा कि गुरु के घर जाओ। फिर कुछ थोडी मेहनत और तपस्या वहा शुरू हुई, लेकिन गुरु के घर मे भी कुछ आराम मिलता है। कुछ बरसो के बाद आदत पड जाती है, वेदाध्ययन आदि की, और उस जीवन मे भी सुख होता है। तो फौरन शास्त्रकार कहता है कि अरे, अब तो जीवन सुखी हो चला। इस वास्ते तू अब गृहस्थ बन जा और जिम्मेदारी उठा ले। जिम्मेवारी उठाना तब उसको जरा कठिन लगता है। उसके आरम्भ मे बहुत तकलीफ होती है। पर चन्द दिनो के बाद उसमे भी उसको सुख मिलता है, कुछ व्यवस्था हो जाती है। मनुष्य अपनेको जमा लेता है। आखिर वहा भी सुखी जीवन हो जाता है उसका। तो शास्त्रकार कहते हे कि अब तू घर छोड। जहा उन्होने देखा कि इसको थोडी चैन मिलने लगी है तो फिर वे बेचैन हो जाते है और कहते है, जाओ, वन मे जाओ। अच्छा, वन मे गया तो जरा तकलीफ भी हुई, पर विकास शुरू हो गया बुद्धि का, कि कैसे वन मे जीवन बिताना इत्यादि। लेकिन वन मे भी दो-चार, पाच-छ साल रहने के बाद आराम हो जाता है। कई प्रकार की सेवा वहा मिल जाती है और जीवन सुखी बनने लगता है। पर जहा जीवन फिर सुखी बनने लगा कि शास्त्रकार ने तुरन्त कहा, "अब तू बूढा भी हो गया है तो चलना शुरू कर दे, अब तुझे ठहरना नही है।" इस तरह वे मनुष्य को निस्तेज नही बनने देते। यह शास्त्रकारो की निष्ठुरता नही है।

इन दिनो हमको लगता है कि कोई बूढा हुआ तो घर मे उसकी सेवा जरूर

होनी चाहिए। लडको को उसकी सेवा करनी चाहिए, उसको सेवा लेने का हक है। वह घर मे बैठे-बैठे बेटो से सेवा ले। पेशन तो मिलती है—चाहे सरकार के जरिये न मिले, लडको के जरिये मिलनी चाहिए, ऐसी आशा इन दिनो हम करते है और पिता-माता को हम दया-पात्र समझते है। लेकिन हमारे शास्त्रकार पिता-माता को दया-पात्र नही होने देते। वे कहते है कि तुमने तो अपने बच्चो की सेवा की। अब उन बच्चो के बच्चे हो गये। तो तुम्हारे बच्चे अब तुम्हारी सेवा करेगे या अपने निज के बच्चो की वे सेवा करेगे ? इस वास्ते तुम यहा से हट जाओ। तुम्हारा यह काम नही की बनी-बनाई सेवा लडको से लो और सुखी जीवन बिताओ। यह तुम्हारा काम नही है। जो आत्मीयता दो-चार लडको से तुम्हारी बन गई, वह तो एक प्रयोग हुआ। पहले तो स्वार्थ केवल शरीर मे था। लेकिन शरीर के बाहर जाकर त्याग करने का अभ्यास तुमको हुआ—लडको के निमित्त से। अब जरा व्यापक क्षेत्र मे जाओ और दुनिया भर मे जितने लोग है, वे सब अपने कुटुम्ब के है, ऐसा समझ करके बर्ताव शुरू कर दो। लडको की सेवा लेकर बिस्तर मे मरना, यह धर्म नही है। इस तरह शास्त्रकार अत्यन्त निष्ठुरता से कहते है, लेकिन उस निष्ठुरता मे जो सदयता है, वह बडी मधुर है। हमारी तेजोहानि करनेवाली जो दया होती हे. वही बदतर है। जिससे हमारी तेजोहानि न हो, ऐसी कठोर वाणी कोई हमको बोलता है तो मै उसका उपकार मानता हू और उसके हृदय की दया का भान ही मुझे होता है।

इस वास्ते जिन कामो मे दस-दस, बीस-बीस साल हमने बिताये, उन कामो का लोभ और मोह रख करके अगर उसीके अन्दर सतत, आजीवन और आमरण रहना है, ऐसी हम कल्पना करते है तो मेरे मन मे निश्चय है कि हम अनासक्ति को पहचानते नही।

नित्य-कर्तव्य से एक ऊचा कर्तव्य भी होता है। आज सुबह मै चर्चा कर रहा था। लक्ष्मण से राम ने कहा कि तेरा धर्म है, पिता की सेवा करना। मुझे वनवास जाना है। तू भी जायगा तो पिता को ज्यादा दु ख होगा। उनकी सेवा मे रहना तेरा धर्म है। अगर लक्ष्मण कबूल कर लेता राम की उस बात को और वाल्मीकि उसी तरह की रामायण लिख डालते कि लक्ष्मणजी दशरथ और कैकेयी-कौशल्या की सेवा मे रहे और बडी अच्छी सेवा उन्होने की तो हममे ऐसा कौन बहादुर था, जो इसमे नुक्स बताता ? हम भी ऐसा ही कहते कि हा भाई, ठीक है। रामचन्द्रजी के साथ जाने के मोह का उसने सवरण किया और माता-पिता की सेवा मे वह सलग्न रहा। एक बडा ही उत्तम आदर्श उसने उपस्थित किया, इस तरह से कहते। लेकिन जब यह सारी धर्म की बात रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण के सामने रखी तो उसने यह नही कहा कि आपने कोई बेजा बात मुझसे कही हे। उसने कहा, "आपने तो बडी ऊचे धर्म की बात मुझसे कही है। लेकिन मै तो प्रभु का शिशु हू, प्रभु-स्नेह से प्रति-

पालित। मै तो एक बच्चा हू। आपने तो बडा नीति-धर्म कहा और **'निगम नीति के ते अधिकारी।'** मै तो अधिकारी नही हू। जो होगे 'निगम नीति के अधिकारी', वे तो जरूर आपके कहने के मुताबिक करेगे। लेकिन मै बच्चा हू। मै क्या जानू यह सारा धर्म ? मै तो जानता हू आपकी सेवा-मात्र। इस वास्ते मुझसे यहापर वह स्वधर्माचरण नही होगा, जो मुझे आप सिखा रहे है।" यो कह करके उन्होने बात को काट डाला और रामचन्द्र को कबूल करना पडा कि लक्ष्मण को आने देना ठीक है। इसका मतलब है कि धर्म छोटे-छोटे होते है और एक परम धर्म भी होता है, और उस परम धर्म के साथ अपने छोटे धर्म की तुलना करने का भी मौका नही मिलता। जहा ऐसा हो कि दोनो सादे धर्म है, एक ऊचा है और एक नीचा है तो वह धर्म ऊचा है, इस वास्ते अपना नीचा धर्म छोडे तो वह काम गलत माना जायगा—जहा कि सादे धर्मों की तुलना है। पर एक स्वधर्म के साथ जहा परम धर्म की तुलना आती है, वहा वह विचार नही टिकता और सब-कुछ छोडना पडता है। इसलिए खास करके गाधीवालो के लिए मै कह रहा हू कि उन्होने न मालूम कहा से कर्तव्य-भावना का एक बडा ही बोझ अपने सिर पर उठा लिया है। मै समझता हू कि यह कर्तव्य-भावना नैतिक मनुष्यो के मन का एक रोग है और ऊची उडान उससे रुक जाती है। यह एक बात ध्यान मे रखने की है।

लेकिन इसपर से वही सवाल पूछा जाता है, जो यहा सर्व-सेवा-सघ की बैठक मे भी पूछा गया था कि एक तो आप हमपर जिम्मेदारी डालेगे कि खादी का काम करो, वह करना चाहिए, ग्रामोद्योग भी चलने ही चाहिए इत्यादि-इत्यादि। हम सस्थाए चलाते है तो हमारी प्रशसा भी होती है कि आपने तो बडा अच्छा किया, वहा दिल्ली मे प्रदर्शन बहुत अच्छा किया। यह प्रशसा तब होती है न कि जब हम वह काम करते है ? अब इधर यदि यह आवश्यक हो कि सारे काम छोडकर भूदान-यज्ञ मे लग जाय तो दो आज्ञाए आप हमको कैसे करते है, कैसे देते है ? कोई एक बात कहिये, ऐसा एक सवाल उठा था। यह बडा ही सोचने लायक सवाल है। मैने उसका उत्तर दिया कि मै नही चाहता कि हमारी सस्थाओ के लोग, जो काम कर रहे है और जो मुफीद काम है तथा भूदान-यज्ञ के लिए पोषक है, उस काम को वे छोड दे और भूदान-यज्ञ मे आवे। यह तो मै नही कह रहा हू, लेकिन मै यह भी नही कहता कि जिस ढग से आज वह काम चल रहा है, उस ढग से वह काम चलाते ही चले जाय और भूदान-यज्ञ मानो कुछ हुआ या न हुआ, समान ही है, ऐसी ऐंठ मे रहे। यह भी गलत होगा।

मै चाहता हू कि उनका काम करने का तरीका ही ऐसा हो, जिससे भूदान-यज्ञ मे और अनेक कामो मे एकरसता आ जाय। मै एक मिसाल दू। बिहार मे मै कभी-कभी देखता हू कि हरिजन-सेवा का काम चलता है। मुझे मालूम नही कि हरिजन-सेवा-सघ की तरफ से वह चलता है या और भी कोई चलाते है। जो भी

चलाते हो, वे यह कहते है कि हरिजनो को फी या स्कॉलरशिप दिलाओ, कॉलेज मे भेजो, आदि। ऐसा जब मै देखता हू तो मै कहता हू कि अरे भाई, यह तो बिल्कुल पुरानी चीज़ हो गई। यह तालीम तो जर्जर हो गई है, अब बिल्कुल फटने पर आई है। इसमे क्या पढाया जाय? इस तालीम मे कोई सार ही नही। जो बिल्कुल नीरस हो गई हे, उसमे उन बच्चो को भी क्यो भेजें? पहले विचार था कि जो हम करते है, उनको भी वह करने दो। और इस तरह से आरम्भ हुआ। परतु अब पच्चीस साल के बाद भी वही स्कॉलरशिप, वही कॉलेज और वही उत्तेजन! और इसीको हम हरिजन-सेवा समझें! मै तो समझता हू कि यह हरिजन-सेवा नही है, बल्कि हरिजनो की गाठ पक्की बनाने का रास्ता है। बन रही है दुनिया नई, नया जमाना भी बन रहा है। इस वास्ते हरिजनो मे और दूसरो मे कोई भेद नही होना चाहिए। यहा पर, बिहार मे मैने देखा है कि कुछ सरकार की तरफ से भी उत्तेजन दिया जाता है, हरिजनो को। उनके खास छात्रालय होते है, खास बोर्डिंग भी। एक बोर्डिंग मे मुझे बुलाया, उन लोगो ने देखने के वास्ते, और कहा कि कुछ कहिये। तो मैने कहा कि ऐसे बोर्डिंग हरगिज नही चलने चाहिए। वह जमाना गया। अलग बोर्डिंग बना करके उनको तालीम देने का जमाना गया। अब तो हरेक छात्रालय मे और हरेक स्कूल मे हरिजनो को पूरा प्रवेश मिलना चाहिए। दिन तो बदले, लेकिन फिर भी हम और हमारा दिमाग यदि नही बदलता है और वही पुरानी चीज़ हम चलाया करते है तो इससे काम नही बनेगा। भूदान-यज्ञ ने जो मांगे देश से की हैं, हमारे सामने उनका उत्तर देने की तैयारी सस्थाओ मे भी होनी चाहिए, तभी वे सस्थाए ठीक ढग से चलेंगी और उन सस्थाओ के कामो मे और भूदान-यज्ञ मे कोई फर्क नही गिना जायगा।

हमने यह जो काम शुरू किया, उसका आरभ ही हरिजनो से हुआ। हरिजनो ने जमीन मागी। उनको देने के लिए ही पहली माग की गई। दान मिला। वह हरिजनो ही मे बटा और फौरन नियम बनाया गया कि जितनी जमीन मिलेगी, उसका एक-तिहाई हिस्सा हरिजनो को दिया जायगा, जो कि भूमिहीन होगे। इतना होने पर भी हरिजन-सेवा करनेवाले कार्यकर्ताओ को मै बहुत ही उदासीन देखता हू—भूदान के लिए, मानो कोई चीज ही नही हो रही है। और फिर जब बटवारे की बात आ जाती है तो एक भाई ने हमको लिखा कि हम सुनते है कि उत्तर-प्रदेश मे कोई बटवारा शुरू हो रहा है। शीघ्र ही हिंदुस्तान भर मे भी बटवारा होगा, ऐसा खबर आपके भाषण मे हमने पढा। हम आशा करते है कि उसमे हरिजनो के लिए कुछ रखा होगा, उनका भी स्मरण हुआ होगा। ऐसी आशा रखनेवाला एक पत्र उन्होने भेजा। उस मनुष्य को इतना ज्ञान नही कि भूदान-यज्ञ का आदोलन ही जब किस तरह हुआ, उसमे हरिजनो पर किस तरह से आशा रखी गई, उनको आर्थिक गुलामी से मुक्ति देने का विचार

उसमे किस तरह काम करता है, आदि-आदि। यहातक हुआ है कि कई जगह हमसे दान देनेवाले ने कहा कि हम आपको अच्छी-से-अच्छी जमीन दान देते है—पच्चीस एकड, लेकिन एक ही शर्त है कि कृपा करके हरिजनो को यह न दीजियेगा। अब कोई लोभी मनुष्य होता तो कहता, हा, भई, ठीक है, क्योकि हमने यह तो जाहिर नही किया है कि हरेक का जो दान मिलेगा, उसका तिहाई हिस्सा हरिजनो को देगे ! ऐसा तो नही कहा है। कहा इतना ही है कि कुल प्राप्त जमीन का तिहाई हिस्सा देगे। तो किसी शख्स की पच्चीस एकड जमीन नही देगे हम हरिजन को। दूसरो को वह देंगे। कोई लोभी शख्स होता तो इसी तरह करता। पर हमने कहा कि नही, आपका यह दान हम इस तरह नही ले सकते। आप अगर बिना शर्त के दान दे सकते है, तो लेगे। हरिजनो को भी जमीन दी जायगी, मुसलमानो को भी दी जायगी, सबको दी जायगी। जो भी भूमिहीन होगे—लायक, उनको दी जाएगी। हरिजनो को तिहाई हिस्सा तो जरूर देना है। इस वास्ते इस शर्त पर हम दान कबूल नही कर सकते। ऐसे तीन-चार प्रसग आये, यह मुझे याद है। इस तरह सारा चला। लेकिन वह भाईसाहब हरिजन-कार्य मे इतने मस्त और इतने एकाग्र रहे कि यह सारा उनको पता ही नही चला। अब मैं अपने मन मे पूछता हू कि क्या हरिजन-सेवा करने का यह ढग है ?

ऐसी कई बाते मैं सुझा सकता हू, पर उससे विस्तार होगा। उसकी जरूरत भी नही है। समझ लीजिये कि परम धर्म के आचरण के लिए अपने स्वधर्म को उस ढाचे मे ढालना होता है, और जो स्वधर्म उस ढाचे मे न ढाला जाय, उसको छोडना होता है।

ये दो बाते मैने आपके सामने रखी। स्वधर्म का परधर्म से जब मुकाबला होता है तो ऊच-नीच नही देखना होता है और स्वधर्म से ही चिपके रहना होता है। लेकिन स्वधर्म का जब परम धर्म से मुकाबला होता है तो उस परम धर्म के ढाचे मे स्वधर्म को ढालना पडता है। यदि ऐसा न ढाला जाय, न ढाला जा सके, तो उस स्वधर्म को छोडना पड़ता है। यह धर्म-रहस्य आप लोगो के सामने मैने रख दिया है।

आखिर मे एक बात और कह देना चाहता हू। कल कृपालानीजी ने एक व्याख्यान आम सभा में दिया और कुछ बाते आप लोगो के सामने रखी। वे मुझे अच्छी लगी। वे बाते उन्होने मेरे सामने भी कही थी, एकात चर्चा मे। मैने कहा, हा, ये बाते कहिये आप लोगो के सामने। उन्होने प्रेम से वह बाते वहा कही। जब कभी वह मुझसे मिलने आते है, तब कुछ आशका उनके मन मे रहती है कि इनके और हमारे विचार मे कही कुछ फर्क होगा शायद। पर हर दफा वह पाते है कि कोई खास फर्क नही है। तब थोडा आश्चर्य उनको होता है और सतुष्ट होकर वह वापस जाते है। आखिर बात यह है कि जिस गंगोत्री का उन्होने पान किया,

उसी गगोत्री का मैंने पान किया। ऐसी हालत मे फर्क ही क्या हो सकता है? पर हा, बात रखने का एक तरीका होता है। सतरे मे कुछ खटाई ज्यादा होती है, नीबू मे और भी ज्यादा खटाई होती है और कोई फल मीठा-ही-मीठा होता है। किसीमे थोडा-बहुत कडुवापन भी होता है। ऐसी ही रुचि होती है। तो मनुष्यो के 'एक्सप्रेशन' मे, विचार-प्रकाशन मे, कुछ फर्क हो सकता है और जितना विचार-प्रकाशन मे फर्क होता है उतना थोडा सोचने मे भी होता है।

तो जो बाते उन्होने कही, वे मजूर है, यह आप लोगो के सामने मैं कह देना चाहता हू। (तालिया)। यह तो समझने की बात है। आप तालिया मत बजाइये। अपने आनद को अपने मन मे ही रखियेगा। एक बात मैं कह देना चाहता हू कि जिस ढग मे वह बात रखते है, उस ढग मे मैं अगर बात रखू तो गलत काम होगा। इस वास्ते मैं एक दूसरे ढग से चीज को रखता हू। उनकी एक विशेषता मैं बहुत महसूस करता हू, जो दूसरे कम लोगो मे है। वह यह कि उनके हृदय मे तीव्रता है। यानी जिसे हम 'अरजसी' कहते है, वह है। अग्नि है हृदय मे। अग्नि होना बहुत ही जरूरी है, पर दिमाग मे अग्नि नही होनी चाहिए। दिमाग ठडा रहे, हृदय गरम रहे तो बडी ताकत पैदा होती है। तो उन्होने बात यह रखी कि भूदान-यज्ञ एक सिरा है। एक सिरे से आपने आरम्भ किया। लेकिन अगर यह ठीक ढग मे चलाया जाय और उसमे दृष्टि पूरी रहे, समग्र दृष्टि रहे तो उसके परिणामस्वरूप सत्ता मे भी परिवर्तन होना ही चाहिए। यह उन्होने कहा और यह विचार वह है, जो मैंने मजूर किया है।

पर अब कोई कहेगा कि छ मे चार मिलाओ, इतना बस नही है, उसीमे मे दस पैदा करने चाहिए तो मैं इतना ही कहूगा कि दस पैदा करने की तो कोई स्वतन्त्र युक्ति ही नही है। छ मे चार मिलाने की क्रिया आप कर लेते है तो परिणामस्वरूप जो दस है, वे हो ही जाते है। वह कोई अलग करने की बात नही रहती। लेकिन यह एक विचार है। थोडा भेद है इन विचारो मे। विरोध तो मैं नही कहूगा, लेकिन भेद है। भेद यह है कि हमको कुछ काम यह करना पडेगा और कुछ काम वह करना पडेगा। यानी सत्ता भी अपने हाथ मे लेनी होगी और उसके लिए भी आज से कुछ-न-कुछ तैयारी उस दृष्टि से करनी होगी, जिस तरह की एक भावना रहती है। मैं मानता हू कि सत्ता मेरे हाथ मे रहने की कोई जरूरत नही है, सत्ता मेरे कहे मे रहे तो बस है। हाथ मे सत्ता लेने की तकलीफ उठाने की कोई जरूरत नही। यही थोडा भेद है।

आज आपने सुना, आशीर्वाद-वचन राजेंद्रबाबू का। उन्होने कहा कि जो यह कार्य हुआ, उसका कुछ-न-कुछ असर हो रहा है। कहा हो रहा है? राज्यकर्ता समाज पर उसका असर हो रहा है। किन-किन चीजो का क्या परिणाम हुआ है, उसका विश्लेषण करने मे कुछ सार नही रहता। फिर भी मानना पडेगा कि

खादी की तरफ जो अधिक झुकाव हुआ है, ग्रामोद्योगो की जो अधिक आवश्यकता मालूम होती है, नई तालीम जरूर लाना चाहिए, इस तरह का जो भास हो रहा है, अनएम्प्लायमेट, अडरएम्प्लायमेट का कुछ-न-कुछ करना ही पडेगा, ऐसी जो बाते शुरू हुई है, यह जो परिणाम हुआ है, मै नही कहता कि यह पर्याप्त परिणाम है, कोई नही कहेगा कि यह पर्याप्त परिणाम है; परन्तु यह जो परिणाम हुआ है, वह किस चीज का है, यह अगर देखा जाय तो मानना पडेगा कि यह जो भूदान-यज्ञ का काम चला है, उससे जो जन-शक्ति निर्माण हुई है, उसका यह परिणाम है। माने इसके यह नही है कि इसमे दूसरे कोई फैक्टर्स नही है। दूसरी किन्ही चीजो का इसमे कोई असर नही है, यह तो नही । कई कारणो से एक कार्य बनता है। लेकिन यह एक बडा कारण उसमे है। सत्ता के बाहर रहकर भी अगर जन-शक्ति निर्माण करते है तो सत्ता हाथ मे लेने की तकलीफ उठाये बिना और चुनाव आदि के झझट-झगडे मे पडे बिना और अपने समय का उस तरह से क्षय किये बिना राज्य-सत्ता पर अकुश रखा जा सकता है, ऐसा मेरा दावा है।

भाइयो, यही, इतना ही, फर्क है। मै पार्लमेट मे जाऊ और वहा कोई बिल आये तो उसका खडन-मडन करू तो मेरी आवाज सीधे सरकारी मिनिस्टरो के कानो तक पहुचेगी और उससे एक परिणाम होगा, यह मै मान सकता हू। लेकिन मेरा कहना है कि इस तरह पार्लमेट मे या असेम्बली मे कैदी होकर और पॅरोल पर छूटकर दो-चार महीने घूमने का जो मौका मिलेगा, उतने समय मे देश का दूसरा काम करके जो वजन मेरे शब्दो को मिलेगा, उससे ज्यादा वजन मेरे शब्दो को तब मिलेगा, जब मै उन स्थानो मे गिरफ्तार न होऊ, वहा कैदी न बनू और बारह-के-बारह महीने जनशक्ति निर्माण करने मे लगा दू और राज्य के विविध प्रश्नो के विषय मे मेरा जो अभिप्राय बनता है, वह निस्पृहता से, नम्रता से और निश्चय से अगर बताऊ तो मै नही समझता कि पार्लमेट के व्याख्यान का जितना परिणाम होगा, उससे उसका कुछ कम परिणाम होगा।

यह आप लोगो के सोचने की बात है। और अगर इतना फर्क आप समझ ले तो उनके और मेरे कथन मे कोई विरोध नही आयगा और हम दोनो का हृदय एक है, इसका आपको भान होगा। मै उनको भी आह्वान करता हू। मै जानता हू कि हरेक की अपनी-अपनी पद्धति होती है। वह कभी-कभी कहते है कि आप जाते है भीख मागने और परमेश्वर का नाम लेते है। यह अच्छा भी है, क्योकि आप वैसा अनुभव करते है, श्रद्धा भी रखते है। लेकिन मै तो ईश्वर के नाम से नही चल सकता। मै तो सामाजिक मूल्य और आर्थिक परिवर्तन की भाषा मे कह सकता हू। तो मै कहता हू कि एक ही वस्तु केवल एक ही भाषा मे कहने मे लाभ होता है, ऐसी बात तो नही है। विविध भाषाओ मे कहनेवाले विविध लोग अगर हुए तो उस चीज को बहुत अधिक बल मिलता है। तो यह कोई जरूरी

नही है कि कृपालानीजी को भूदान-यज्ञ काम मे कूद पडने के लिए परमेश्वर के साक्षात्कार की ही आवश्यकता है, बल्कि उनको जो अर्थशास्त्र का साक्षात्कार हुआ है, वह काफी है और उस तरह से इसपर प्रकाश पडेगा तो उससे भी कम बल नही मिलेगा।

मै जानता हू कि उनकी इस काम के साथ पूरी सहानुभूति है। मै यह भी जानता हू कि उन्होने अपने शिष्यो को इस काम के लिए पूरी आजादी दे दी है, बल्कि उपदेश भी दिया है कि यह काम करो। मुझे यह भी मालूम है कि उन्होने बडे अच्छे शब्दो मे इसका सत्कार किया है, इसपर लेख लिखे है। सब किया है। लेकिन उनकी पार्टी के जिन लोगो पर उनका कुछ वजन है, उन लोगो को अगर वह इस श्रद्धा से प्रेरित कर सकेंगे कि भाई, भूदान-यज्ञ मे काम करोगे, जन-शक्ति-निर्माण मे लगोगे और चुनाव-चिंतन नही करते रहोगे तो कुछ खोओगे नही, बल्कि जरूर शक्ति पाओगे और जो राज्य-क्रान्ति हम चाहते है, वह बिना तकलीफ के हो जायगी, इस ढग से हो जायगी कि पता भी नही चलेगा। इस तरह अगर श्रद्धा उनमे पैदा हो जाय और वह अपने अनुगामियो मे श्रद्धा पैदा कर सके और वे इस काम मे जोरो से लग जाय और इसी तरह से काग्रेसवाले भी अगर लग जाय, तो मै समझता हू कि यह समस्या बहुत ही जल्द हल होगी और उसके परिणामस्वरूप राजनीति पर अत्यन्त उत्तम असर होगा और राजनीति का लोकनीति मे परिवर्तन होगा।

छठा सर्वोदय-सम्मेलन
बोध-गया, २० अप्रैल १९५४

६ : : अहिंसा का सार्वभौम आवाहन

आज, कल और परसो कई चर्चाए यहा हुई, कई सवाल निकले और मेरे पास कई लिखित शकाए भी आ पहुची। लेकिन उन सब सवालो के और शकाओ के बारे मे अभी बोलने की प्रेरणा नही होती। आज मुख्य आवाहन का जो प्रस्ताव 'सर्व-सेवा-सघ' ने देश के सामने रखा है, उसीको ध्यान मे रखकर हमारा कर्त्तव्य हम सोचे। उस दिशा मे कुछ चिंतन, प्रकट चिंतन, मै आपके सामने रखना चाहता हू।

अपना मानव-समाज जब से अस्तित्व मे है—कोई नही जानता कि कब से-तबसे उसमे प्रेम के साथ झगडे भी चलते ही रहे है। उस कदीम जमाने मे, जो कि मानव-समाज का आरम्भ-काल माना जाता है, स्वैर हिंसाए चलती थी और उन हिंसाओ का निपटारा या उसका प्रतिशोध वैसी ही स्वैर हिंसाओ से किया

जाता था। उसमे से आखिर समाज की हालत कुछ विगडती गई और कुछ सुधरती गई। अन्त मे यह एक युक्ति समाज को सूझी कि स्वैर हिंसा के बदले व्यवस्थित हिंसा की जाय तो वह स्वैर हिंसा रुक जायगी। परिणाम-स्वरूप, जिसे हम दड-शक्ति कहते है और शासन भी कहते है, उसका आरम्भ हुआ। व्यवस्थित हिंसा अर्थात् दड-शक्ति पहले-पहल करागर साबित हुई। उसने स्वैर हिंसा को रोका और चद दिनो तक वह सीमित अवस्था मे रही, लाभदायी साबित हुई। इसलिए मानव ने उसे धर्म का अश समझा। सस्कृत मे हमको ऐसा भी वाक्य स्मृति मे मिलता है कि **"दड धर्मं विदुर्बुधः"**—बुध जनो ने दड को धर्म समझा, अर्थात् उस जमाने के बुध जनो ने। परन्तु यह दड-शक्ति, जिसमे व्यवस्थित हिंसा थी और आरम्भ मे सीमित हिंसा थी, फिर सीमित नही रह पाई और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी सीमा विस्तृत होती चली गई। व्यवस्थित तो रही वह। व्यवस्थित नही रहती तो शासन न कर पाती, दड-शक्ति न कहलाती। इस वास्ते व्यवस्थित तो वह रही, लेकिन सीमित न रहते हुए विस्तृत होती गई, फैलती गई, चौडी होती गई। होते-होते आज उसने अतिहिंसा का रूप ले लिया है। व्यवस्थित और सीमित हिंसा अर्थात् दड-शक्ति का रूपान्तर अतिहिंसा मे आज हुआ है। तो आज मानव भयभीत है और शायद इस समय सारा मानव-समाज जितना भयभीत है उतना मानव के इतिहास मे वह कभी नही रहा होगा. ऐसा कहने मे किसी तरह से कल्पना-गौरव नही होगा, क्योकि जहातक हम जानते है, इतने व्यापक प्रमाण मे मानव कही फैला ही नही था। दुनिया मे इतनी व्यापक शक्तिया शायद उसको हासिल नही हुई थी। इस वास्ते मानव की आज जो भयभीत हालत है, उसकी बराबरी मे प्राकृतिक कारणो से कही भय पैदा हुआ हो तो अलग बात है।

बडे भूकम्प और प्रलय इत्यादि हुए, परन्तु मानव को मानव की हिंसा से आज जो अति भय प्राप्त हुआ है, वैसा इसके पहले कभी उसको अनुभव हुआ होगा, वैसा दीखता नही है। भयभीत मानव अब कुछ विचार करने लगा है और सोचने लगा है कि यह अतिहिंसा की जो अतिरिक्तता है, वह तोडी जाय और फिर से सीमिति व्यवस्थित हिंसा कायम की जाय। ऐसी कोशिश अब हो रही है।

यद्यपि सारे वैज्ञानिक नही तो भी कुछ वैज्ञानिक जहा यह कहने लगे है कि इस आणविक शक्ति को रोका जाय और जहा राजाजी जैसे महर्षि यह उद्गार प्रकट कर रहे है कि उसको रोकना चाहिए, तो यहा मानव का एक प्रयत्न स्पष्ट दीखता है। वह चाहता है कि इसकी अतिरिक्तता नष्ट की जाय और जैसे बीच के जमाने मे वह सीमित और व्यवस्थित रही—दड-शक्ति के रूप मे—वैसी ही वह रह जाय। परन्तु प्रगति का क्रम देखते हुए जो मानस-शास्त्र को समझते है, वे इस बात को जरा सोचने पर महसूस करेगे कि इस प्रगति का चक्कर कभी पीछे नही आ सकता। वह कही आगे ही जा सकता है। स्वैर हिंसा दड-शक्ति में परिणत हुई,

सीमित व्यवस्थित हिंसा उत्तरोत्तर विस्तृत ही होती गई और अब वह अतिहिंसा के रूप मे प्रकट हुई है तो उसको अब इसके आगे ही जाना है, इसके पीछे वह नही आ सकती। यत्र मे ऐसी शक्ति नही है। सामूहिक मानव-मानस-यत्र ऐसा नही है कि उसको कोई एक व्यक्ति रोक सके और पीछे ले जा सके, क्योकि वह सामूहिक मानव के मानस का यत्र बन गया है। और जिस गति से वह आगे बढा है, उसी गति से उसको और आगे बढना है। अब क्या होना बाकी है ? अर्थात् या तो उसको अपना रूप अब अहिंसा मे विसर्जित करना है, या उससे भी विकराल रूप धारण करके, मनुष्य-समाज की समाप्ति करके, कृतकार्य होना है। इन दो मे से कोई एक तो उसको करना ही है, यह समझना जरूरी है।

इस वास्ते भयभीत मानव का यह जो प्रयत्न है कि केवल उसका अतिरेक रोका जाय तो यह सम्भव नही है। यह बात अगर ध्यान मे आयगी तो इसके आगे दो ही परिणतिया उसकी हो सकती हैं। एक मे मानव का पूर्ण विनाश होगा और दूसरे मे मानव को पूर्ण विश्राम का मौका मिलेगा। अगर अहिंसा आती है तो हमको जरा बल महसूस करना चाहिए। जिनका मानवता मे विश्वास है, उनको भी अपने मे जरा ताकत महसूस करनी चाहिए।

अभी टडनजी ने रायफल क्लब के बारे मे कहा था। कुछ बचाव भी उसका उन्होने कर लिया था। उसमे भी काफी सार है, रहस्य है कि जब आदमी निर्वीर्य बनता है, तब उस हालत मे वह थोडा-सा साहस करने लगता है। पर अगर उस हिम्मत को बारीकी से सोचे तो वह भय का ही रूप होता है। उसमे जो निर्भयता होती है, वह वीर्यवान् निर्भयता नही होती है या वह उत्तम निर्भयता नही होती। वह डरनेवाली निर्भयता होती है। उसमे कुछ साहस या हिम्मत होती है, इस तरह उसका कुछ बचाव अभी तक किया गया और अभी और किया जा सकता है। मगर यह बात हम मान ले तो ऐसी छोटी-छोटी हिंसाए अपना रौब अब जमा सकेगी, यह सम्भव नही है। अगर समाज पर अब किसीकी सत्ता चलेगी तो या तो उसका पूर्ण सहार करनेवाली अतिहिंसा की ही सत्ता चलेगी, या फिर वह विसर्जित होकर अहिंसा मे परिणत होगी।

हमे अब वह पुरानी कल्पना छोडकर मध्य-युगीन जमाने मे जिन गुणो का लोगो ने सम्मान किया, उन्ही गुणो मे सीमित रहने के बजाय जरा हिम्मत करके अपने मे थोडा बल महसूस करना चाहिए और इस अतिहिंसा को समाप्त करके पूर्ण अहिंसा की तैयारी करनी चाहिए। दूसरी भाषा मे इसका मतलब होता है कि दड-मुक्त, शासन-मुक्त समाज की जो बात हम करते है, उसके लिए बुद्धि तैयार रखनी चाहिए और उसके लिए हृदय मे प्राण भरना चाहिए।

यह मेरी निष्ठा आज की नही है, काफी अनुभव से मुझमे वह स्थिर हुई है। वर्षों से मै यह मानता हू। परतु मुझे लगता था कि इसमे कुछ समय लगेगा। दड-

मुक्त समाज बनाने मे, शासन-मुक्त समाज बनाने मे, काफी वक्त लगेगा, ऐसा मुझे लगता था। लेकिन जबसे अतिहिंसा का यह स्वरूप प्रकट हो गया है, तबसे मुझमे बडा भारी उत्साह आया है और उम्मीद हो गई है कि दड-मुक्त समाज अब जल्दी लाया जा सकेगा। और यह उम्मीद अगर आपको मै समझा सकू और उसका स्पर्श आपके हृदय को हो जाय तो हम सबका रूपान्तर परिशुद्ध, परिनिष्ठ, आत्ममय मानवता मे हो जायगा। तो वह जो मेरी उम्मीद है, वह बहुत बढ गई और इस वास्ते जब कभी एटम और हाइड्रोजन बम की बात चलती है तो मुझे लगता है कि एक ईश्वरी प्रेरणा हो रही है और सारी समाज-रचना अब मेरे हाथ मे आनेवाली है। वह जोरो के साथ हमारी तरफ आ रही है। वह कहती है—पुकार करके कि अहिंसा देवी, तू आ जा और इस शक्ति को बचा ले। तो अब हमारे लिए सोचने की बात है कि हमारा काम इसके आगे हमारे लिए आसान ही है। यह ध्यान मे आना चाहिए कि कालचक्र ही इसको आसान बनाता जा रहा है और उस दृष्टि से हिम्मत करके हमको आगे की सारी योजना करनी चाहिए। शासन-मुक्त समाज के लिए ही अब तैयारी हो रही है।

इन दो सालो के अन्दर पाच करोड एकड भूमि प्राप्त होगी या नही होगी, और इस समस्या के सुझाव का दर्शन होगा या नही होगा, ऐसी उलझन मे हममे से कुछ लोग पडे है, ऐसा मुझे कभी-कभी लगता है। पर यह उलझन मुझे छू भी नही रही है, बल्कि मुझे तो लगता है कि १९५७ मे शासन-मुक्त समाज की स्थापना सारी दुनिया मे ही क्यो न हो? यह केवल एक कल्पना नही है, बल्कि अगर हम ठीक हिम्मत बाधे, जरा इस दृष्टि से सोचे, गहराई मे जाय तो ज्ञात होगा कि मानवता को आखिर हम मिटाना तो नही चाहते। मानव कितना भी मूर्ख बना हो, पर आखिर वह इतना मूर्ख तो नही बनेगा कि स्वजाति का ही नाश करने के लिए प्रवृत्त हो। यह सभव नही है। हम कोई ईश्वर की इच्छा नही जानते परन्तु जो दीख रहा है—वह जो सारा तमाशा है, उसपर से ऐसा नही दीखता है कि मानवता की समाप्ति की कोई योजना हो रही है। और यह किसपर सें पहचाना जाता है? ईश्वर अभी प्रलय नही चाहता, मानव के हाथ से मानव का नाश नही चाहता, यह किसपर से मालूम पडता है? वह इसीपर से मालूम होता है कि ऐसी प्रेरणा हमको हो रही है। अगर ऐसा नही होता तो भगवान हम सबको बेवकूफ बनाता और आप और हम यहा बैठकर दड-मुक्त-समाज, शासन-मुक्त समाज-रचना की बात नही कर सकते थे। भगवान को जब प्रलय करना था तो यादवो को क्या सूझा? एक-एक ने शराब पीकर हाथ मे लट्ठ लिया और मारने लगे एक-दूसरे को। आखिर भगवान ने कहा कि चलो भाई, मै भी तुम लोगो मे अलग क्यो रहू? इस वास्ते प्रहार कर दिया और चले गये। सबका सहार वहा से हो गया, ऐसा कहते है। अगर भगवान दर-असल नही चाहता होता तो दड-मुक्त, शासन-मुक्त

समाज बनाने की प्रेरणा मुझे क्यो होती ? हम सब यहा इकट्ठे क्यो होते ? इसके लिए हम एकत्र हो ही नही सकते थे। कोई अगर ऐसा अहकार रखे कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध हम एक काम करने जा रहे है और ईश्वर तो प्रलय चाहता हुआ दीखता है, कम्बख्त, लेकिन हमने तय किया है कि हम प्रलय नही होने देगे। ऐसा हम ईश्वर की मर्जी के खिलाफ जाकर कुछ करने जा रहे है तो यह असम्भव है। इस वास्ते समझना चाहिए कि जब हमको आपको ऐसी प्रेरणा हो रही है तो ईश्वर इस वक्त प्रलय नही चाहता है। यह निश्चित ही समझ लेना चाहिए। और अगर वह प्रलय नही चाहता है तो हमको शीघ्र-से-शीघ्र मुक्त करना चाहता होगा—हिंसा से, यह भी स्पष्ट है। इसलिए मै कहता हू कि जरा हमको श्रद्धा रखनी चाहिए। वह नजदीक आ रहा है, सतयुग। बहुत नजदीक आ रहा है। पर सतयुग कब आता है, जबकि कलियुग का परिपूर्ण अतिरेक होता है, उसका घडा भर जाता है तो उसके बाद आता है, सतयुग। हमे समझना चाहिए कि जब इतनी अतिहिंसा समाज मे फैल गई और समाज भयभीत बन गया तो इसके आगे शीघ्र ही सतयुग आ रहा है।

आज यह हमको कल का दर्शन हो रहा है। चार साल मे हमको इतनी जमीन प्राप्त हुई तो आगे दो साल मे और कितनी जमीन प्राप्त होगी, इत्यादि गणित करके जो हम सोचते है तो वैसा नही सोचना चाहिए। सोचना यह चाहिए कि एक बडी भारी प्रेरणा सारी दुनिया मे काम कर रही है और उस प्रेरणा के लिए हम निमित्त हो गये है। वह प्रेरणा हमसे कुछ कराना चाहती है, यह समझ लेना चाहिए। इतिहास भर मे देखा गया है कि मानव का समूचा इतिहास दैवी प्रेरणाओ से प्रेरित है। आप देखेगे कि एक जमाना था, एक युग था, जिस युग मे इधर बुद्ध भगवान थे तो उधर कन्फ्यूशस थे और कुछ दिन के अन्तर से जरथुस्त थे। थोडे दिन बाद ईसा आ गये। पैगम्बर-ही-पैगम्बर एक साथ उन पाचसौ साल के अदर आपको दिखाई देगे। फिर समाज मे एक ऐसी अवधि आई, इतिहास मे एक ऐसा समय आया, जिसमे आप देखते है अनेक सतो को। जब इधर वैष्णव आये तो अन्यतर और साधु-सत हुए। इस प्रकार सब तरफ उस समय हम सतो को देखते है। फिर जिधर देखो उधर, हर देश मे आजादी की बात चली, मानव-समाज मे साम्ययोग की स्थापना होनी चाहिए, किसी-न-किसी स्वरूप की समता स्थापन करनी है। समता चाहिए, आजादी चाहिए, ऐसी प्रेरणा आज कुल देशो में हो रही है।

इसका मतलब यह है कि प्रेरणाए हुआ करती है और प्रेरणाओ से मानव-समाज प्रेरित होता है और प्रवृत्त होता है। तो अभी की जो यह प्रेरणा है, वह अभी तक जो प्रेरणाए हुई, उनके विकसित स्वरूप की प्रेरणा है, ऐसा समझकर हमको यह महसूस होना चाहिए कि ईश्वर हमको अपना हथियार, औजार बना

रहा है। हमको अगर यह भास हो जाय तो फिर हम कम ताकतवाले नही रहेगे, वल्कि एटम ने तो यह सावित कर दिया है कि वड़ी भारी श्रद्धा अव वढनी चाहिए। एटम ने यह सिद्ध कर दिया कि अणु मे ऐसी शक्ति है कि वह सहार कर सकती है। इतनी शक्ति अणु में होती है तो फिर हमको यह समझना है कि एक साधारण भौतिक परमाणु मे अगर इतनी शक्ति है तो चैतन्य मे, ज्ञान-परमाणु के कितनी शक्ति होगी ? इस वास्ते मै यह चाहता हू कि इस भूदान-यज्ञ की तरफ हम सीमित नजर से न देखे। अगर हम ऐसी नजर से देखेगे तो गोता खायगे । लेकिन व्यापक नजर से देखेगे तो ज्ञात होगा कि यह एक वडा भारी खेल सारी दुनिया मे हो रहा है और उस खेल का मध्यविंदु फिर से भारत वनने जा रहा है और इसी वास्ते यह प्रेरणा हमको मिली है। आप देखते है कि उधर पडित नेहरू कोशिश कर रहे है कि सारी दुनिया मे शाति स्थापित हो और शाति के विचारो को वढावा मिले। यह प्रेरणा उनको हो रही है और वह जिस पद्धति से काम कर रहे है, उस पद्धति मे वह अपनी पराकाष्ठा भी कर रहे है। वह प्रेरणा भी हिंदुस्तान मे से निकल रही है और आप देखते है कि भूदान-यज्ञ की प्रेरणा भी हिंदुस्तान मे प्रकट हुई है। आपने यह भी देखा कि आजादी का जो एक तरीका आया, वह भी हिन्दुस्तान मे आया। इस तरह से कुल वाते देखते हुए यह आभास होता है कि दुनिया मे एक प्रेरणा काम कर रही है और उसके वास्ते फिर से भारत को निमित्त वनना है । यह विशाल भावना अगर हम ध्यान मे रक्खेगे तो फिर अपना लश्कर कैसे वढायगे, उसका उपयोग है या निरुपयोग है, पाकिस्तान के खिलाफ टिकेंगे या न टिकेंगे और 'रायफल क्लव' का क्या होगा, इत्यादि-इत्यादि वाते विल्कुल क्षुद्र हो जाती है। इनका विचार करने की जरूरत ही नही मालूम होती।

इसलिए अव हम इस दृष्टि से इसपर सोचे कि आज जो एक प्रस्ताव हुआ है और जो मांग की गई है कि दो साल तक अपने वहुत सारे अच्छे-अच्छे कार्यों को भी छोड करके लोग इसमे जोर लगावे तो उसका क्या महत्त्व है ? शकरराव-जी ने कहा कि दो साल तक जोर करने का अर्थ यदि यह हो कि आज तारीख से उस तारीख तक ही जोर लगाया और फिर हम ढीले पड गये तो ऐसा नही होना चाहिए। यह सावधानी की सूचना उन्होने हमको दी। लेकिन दो साल की जो वात प्रस्ताव मे वताई गई है, वह जिन सव लोगो ने प्रस्ताव वनाया, उन्होने कुछ ज्यादा सोच-विचार करके वनाया हो, ऐसा नही है। उन्होंने वारीक विचार किया, ऐसा नही। एक स्थूल विचार ही उन्होने किया कि १९५७ तक हमने काम करने का सकल्प किया था, इसलिए उसके अव दो साल वाकी है तो उसके लिए उतना समय दिया जाय। इतना ही सोचा था। लेकिन हम यह समझे कि यह जो दो साल की अवधि दी हुई है कि हम सव लोग दो साल मे जोर लगावे, और हम आवाहन देते है सवको जोर लगाने के लिए, तो सिर्फ हिंदुस्तान के लोगो के लिए

यह आवाहन दे रहे हैं। हमारे सर्वोदय-प्रेमी लोगो तक ही सीमित होकर हम नही बोल रहे हैं। यद्यपि हमारा उनके लिए अधिकार है, इस वास्ते उनको ही विशेष आवाहन कर रहे है, लेकिन यह आवाहन हमारा सारी दुनिया को है कि अगले दो साल जोर लगाइये और १९५७ तक दण्ड-मुक्त समाज स्थापित करिये।

आज हम यहा से जायगे। वल्लभस्वामी ने कहा कि कुछ लोग पैदल आते हैं और वापस जाते है, ट्रेन मे। कुछ लोग ऐसे भी है, जो आये भी पैदल और जायगे भी पैदल। पर अगर कम-से-कम एक ही दफा पैदल जाने की योजना हो तो जाते समय वे पैदल जाय। यह बात उसने क्यो कही, मै भी सोच रहा था। क्या उसे सूझा ? इसलिए कि इस वक्त एक ऐसा सदेश हमको मिल रहा है कि उसका प्रचार फौरन करने की जरूरत है। अगर हम यहा से पैदल निकल पडते हैं तो जो सदेश हमको यहापर मिला है, वह सदेश हर जगह सुनाते जायगे कि भाइयो, देखो, दो साल के अदर मानव का उद्धार होनेवाला है। जहा भी इस तरह का उत्थान हुआ है, वहा मानव ने अति तीव्रता से मान लिया है कि मुक्ति मेरे नजदीक है। और यह मुक्ति नजदीक है, ऐसी तीव्रता जब मानव मे आई, तभी धर्म का उत्थान हुआ और बहुत भारी कार्य हुए, इसे हम सब जानते हैं। इसलिए हमको न सिर्फ ऐसा महसूस करना चाहिए कि दो साल के अदर यहा के मानव ऐसा प्रयत्न करेंगे और कुछ जमीन हासिल करेंगे बल्कि दो साल मे हमको ऐसी कोशिश करनी है कि दुनिया के सब शस्त्रो को निकम्मा समझ करके एक नया समाज बनाने के लिए दुनिया प्रेरित हो। यह कोई असभव बात मानने की जरूरत नही है—इस युग मे, जबकि एक-एक वर्ष की कीमत आज पुराने सौ-सौ, दो-दोसौ वर्ष के बराबर हो गई है। तब ऐसा समझने की ज़रूरत नही है और ऐसी आशा रख करके एक प्रेरणा से प्रेरित होकर हम यहा से चले जाय और जब भी भूमि मागने के लिए जायं तो उनको यह समझावे कि भाई, आप जो दान-पत्र देंगे, वह विश्व-शाति के लिए है। आप विश्व-शाति चाहते है या नही चाहते ? यदि चाहते हैं तो यहा की भूमि-समस्या हल करने के लिए भूमिदान और सपत्तिदान की जो योजना है, उसमे अपना हिस्सा दीजिये। आपका जो यह छठा हिस्सा दिया जायगा, वह विश्व-शाति के लिए वोट ही माना जायगा।

ऐसी ही भावना रखकर हम यह काम करे और देखे कि इसमे कौन-सी शक्ति पडी है ? कुछ हिसाबी भाइयो ने कहा कि जिस तरीके से हमने यह काम चलाया, उस तरीके से शायद यह मामला १९५७ तक निपटता नही दीखता, अतएव हम कोई दूसरे तरीके ढूढे। पर हम कहते हैं कि तरीको की यहा कोई कीमत नही है। तरीका कोई कीमत ही नही रखता। यहा कीमत इस बात की है कि हम कितनी श्रद्धा से भावित है ? यदि हममे श्रद्धा-भावना की न्यूनता है तो इससे बेहतर तरीके हम ढूढते भी चले जाय तो भी समझ लीजिये कि फिर भूमि-समस्या हल

होनेवाली नही है। वह समस्या हल होगी तो उसके साथ-साथ मानव का यह निश्चय हुआ होगा कि हमको शासन-मुक्त होना है, दड-मुक्त होना है। ऐसा निश्चय हुआ होगा तभी उस निश्चय के साथ यह समस्या भी अहिंसा से सुलझेगी।

हमसे लोग पूछते है कि क्या आपका, ऐसा विश्वास है? आज ही श्री पाटिल-साहव ने भी पूछा था कि क्या आपको इसपर विश्वास है कि हर कोई मनुष्य अपना छठा हिस्सा दे ही देगा। पर क्या यह सही सवाल माना जायगा? अव ऐसा जो सवाल उठता है, वह इसलिए कि हमारा दर्शन सीमित है। यदि हम व्यापक दर्शन से देखे और भावना से भावित होकर लोगो के पास पहुचे तो आप देखेगे कि यह महज हिंदुस्तान की भूमि-समस्या हल करने की छोटी-सी वात नही है। यह वात ऐसी नही है कि यहा के थोडे भूमिहीनो को थोडी-सी मदद मिल जाय, जिससे कि थोडी शाति यहा स्थापित हो तथा 'लैड हगर' जिसको कहते है जमीन की भूख, वह जरा शात हो जाय। यह इतनी छोटी वस्तु नही है। वात यह है कि हिंदुस्तान की नैतिक शक्ति ऐसी वने कि उसके परिणामस्वरूप सारी दुनिया मे शाति स्थापित हो। जव यह वात ध्यान मे आयगी तो हमारा यह जो तरीका है, वह अगर अभी तक कारगर नही हुआ है तो फिर हमे अपना सशोधन करना होगा। इसमे त्रुटिया होगी, तो कुछ दोष हमसे होते होगे, मन के दोष होगे, कृति के दोष होगे, इस वास्ते इसमे पूरी ताकत नही आई होगी, यह हमको समझना चाहिए।

जव हम सत्याग्रह के लिए सोचते है तो मै सत्याग्रह-शास्त्र आपके सामने रखता हू। सत्याग्रह के वारे मे हम लोग सोचते है तो करीब-करीब ऐसे ढग से सोचते है कि जैसे मानव ने छोटी हिसा से वडी हिंसा और वडी हिसा से अति-हिंसा मे जिस ढग से कदम रखा है, उसी ढग से सोचते है और कहते है कि पहले तो हम एक सौम्य-सा सत्याग्रह करेंगे। आज हमारी यह जो पद-यात्रा चल रही है, वह भी एक सत्याग्रह है, ऐसा हम कहते है। लोगो ने यह माना है और कहते है कि हा, यह भी एक सौम्य सत्याग्रह है। पर इससे अगर काम नही वना तो और तीव्र सत्याग्रह से काम करो। यदि उससे भी नही वना तो हमारे पास उससे और भी तीव्र सत्याग्रह होगा। इस तरह से हम इसकी तीव्रता वढाते जायगे। किंतु यथार्थ मे हमारा चितन इससे बिल्कुल उल्टा होना चाहिए। हमने जो सौम्य सत्याग्रह शुरू किया है, अगर उससे काम वनता नही दीखता तो उससे कोई सौम्यतर सत्याग्रह ढूढेगे, ताकि उसकी ताकत वढे। अगर उतने से भी काम नही निभा तो कोई और सौम्यतम सत्याग्रह निकालेगे, जिससे कि उसकी ताकत और वढे। आपको मालूम है कि होमियोपैथी मे यह विद्या सिखाई जाती है कि औषधि कम मात्रा मे हो और उसे घोटा जाय, वार-वार भावित किया जाय। भावना से जो भावित होता है वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होते हुए अधिकाधिक परिणामकारी होता

है। हिंसा-शास्त्र मे जैसा सोचा जाता है कि सौम्य शस्त्र से काम नही चला तो उससे तीव्र शस्त्र लेने से ताकत वढेगी और तब वह सफल होगा तो यह जो प्रक्रिया हिंसा मे चलती है, इससे बिल्कुल उलटी प्रक्रिया यहा होनी चाहिए और ध्यान मे आना चाहिए कि यह काम अगर इस तरह से कामयाव नही हो रहा है, इसमे यदि हमको सफलता नही मिल रही है तो इसका मतलव यह है कि हमारी सौम्यता मे कुछ न्यूनता है और इस वास्ते हमको सौम्यता और वढानी चाहिए।

भाइयो, यही सत्याग्रह का स्वरूप है। अभी तक आजादी के लिए जो सत्याग्रह हुए है उनमे दवाव लाकर अग्रेजी सत्ता को यहा से हटाना है, इतना ही एक निगेटिव कार्य था। उस वक्त और उस अवस्था मे, जवकि हिन्दुस्तान देश नि शस्त्र होकर निराश हो गया था, या तो भ्रात होकर इधर-उधर छोटे-वडे खून करने लगा था, स्वैर हिंसा मे वैठना चाहता था, उस हालत मे यह अहिंसा का विचार आया और लोगो ने उसको उतनी ही मात्रा मे ही ग्रहण किया, जितनी मात्रा मे वे ग्रहण कर सकते थे। इस वास्ते उन दिनो सत्याग्रह की जो एक प्रक्रिया हुई, वह परिपूर्ण हुई, ऐसा नही मानना चाहिए। वह विशिष्ट परिस्थिति मे, उपाधि से युक्त परिस्थिति मे एक प्रक्रिया हुई, ऐसा समझकर स्वराज्य-प्राप्ति के वाद, डेमोक्रेसी की आज की हालत देखते हुए सारी दुनिया मे जो शक्तिया काम कर रही है उनका सूक्ष्म दर्शन पा करके हमको समझना चाहिए कि सत्याग्रह की मात्रा हमको उत्तरोतर सौम्य करनी होगी। सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम, इस तरह से अगर सत्याग्रह वढता गया, तव तो वह अधिकाधिक कारगर और अधिकाधिक शक्तिशाली होगा। तुलसी-रामायण मे सुरसा राक्षसी की कथा है। "सुरसा नाम अहिन की माता।" वह हनुमान के सामने खडी हो गई और उसने जव अपना मुह फैलाया और एक योजन का किया तो हनुमान दो योजन के बन गए। जब उसने दो योजन का मुह बनाया तो हनुमान चार योजन के हो गये। जब हनुमान चार योजन के बन गये तो सुरसा आठ योजन की वन गई। आखिर जब वह आठ योजन की वनी हनुमान सोलह योजन के वन गये। तब सुरसा 'बत्तीस भयऊ।' अव हनुमान ने देखा कि इसके आगे गुणन क्रिया करते रहने मे सार नही, वत्तीस का चौंसठ होगा, चौसठ का एकसौअट्ठाईस, जिसका कोई अन्त नही है। यह न्युक्लीयर वैपन तक पहुच जायगा, जिसमे कोई सार नही है। तो फिर 'अति लघु रूप धरेऊ हनुमाना।'—फिर हनुमान ने अति लघु रूप धारण किया और उसके मुह के अन्दर चले गये तथा नासा-रध्र से वाहर निकल गये। खतम हो गया मामला।

हमको समझना चाहिए कि जो विशाल सुरसा इतना भयानक रूप धारण करके एटम और हाइड्रोजन वम का रूप लेकर मुह फैलाकर हमारे सामने खडी है, हम विल्कुल अति लघु रूप धारण करके उसके अन्दर चले जाय और नासिका-रध्र से पार हो जाय। हमको इसलिए प्रेरणा होती है। गुजरात के एक भाई

ने कहा कि अब वहा काम बहुत मद पड गया। मैंने कहा, अरे, क्या मदा पडा ? मंद नही पडा रे! तुम बाहर से देखते हो, पर जरा अन्दर से देखो कि अपनी छाती मे जो चीज है, वह मद पडी है क्या ? अपनी नाडी मद पडी है क्या ? अगर अपनी छाती पर हाथ रखते है तो अनुत्साह नही दीख पडता। विनोबा को तो उत्साह ही दीख पडता है। इधर विनोबा चल रहा था तो उधर पेट के अन्दर जरा जोर से दर्द शुरू हो गया। मैंने कहा, वाह रे वाह! उसकी ज्यादा लम्बी कहानी मै यहा नही सुनाऊगा, पर पेट सुबह से शाम तक दुखता था। सतत ही दुखता रहा। पहले तो रात को नीद आती थी, पर इन दिनो दर्द से रात मे वह अक्सर टूट जाती थी। पर मन ने कहा, पेट दुखता है तो इसमे पैरो का क्या अपराध है ? पाव चल सकते है, इसलिए यात्रा जारी रखी। आखिर लोगो ने बहुत आग्रह किया तो पालकी मे बैठा, तीन दिन। कुल मिलाकर सात-आठ मील पालकी मे बैठा, फिर भी रोज पाच-छ मील तो चलता ही था। आखिर वह पेट बेचारा शात हो गया। यह विचार का चमत्कार हुआ तो एक छोटी-सी परीक्षा हुई, लेकिन हमको यही लगा कि पाव तो परमेश्वर ने नही तोडे है, इसमे उसका सदेश स्पष्ट है कि 'चलते रहो' और जब फिर यात्रा बन्द करने का मुझे सूझेगा, तब तेरे पाव तोड डालूगा। उसका यह सदेश मै समझ गया और मेरा उत्साह बढा। मै पूछता हूं कि इधर आपको कितनी जमीन मिली है ? कोई कहते है कि गयेसाल से कोई तीन-चार लाख एकड कम जमीन मिली। पर यह कोई बात नही है। इसपर सोचो ही मत और यहा से अपने हृदय मे तीव्र भावना लेकर जाओ, यही आपसे मुझे कहना है।

आज सर्व-सेवा-सघ ने जो प्रस्ताव आपके सामने रखा है, क्या उसको सब कार्यकर्ताओ को आदेश देने का अधिकार है ? परन्तु सर्व-सेवा-सघ आदेश नही दे रहा है और इसलिए आप सबको आज्ञा करने की उसकी शक्ति नही है। सर्व-सेवा-सघ यह नही कर सकता। सर्व-सेवा-सघ अगर कुछ कर सकता है तो आदेश नही दे सकता, प्रार्थना कर सकता है। 'असर्व' के लिए प्रार्थना नही कर सकता, सर्व के लिए ही कर सकता है। इस वास्ते आज का प्रस्ताव अति नम्र है। वह उद्धत नही हे कि अपने चद लोगो को ही आदेश दे, जैसे कि कोई उद्धत मालिक अपने नौकरो को हुक्म देता है और उसके मुताबिक काम करवाता है। सर्व-सेवा-सघ ऐसा उद्धत नही बन सकता। तो उस प्रस्ताव में सारी दुनिया से प्रार्थना की गई है कि दो साल जोर लगाओ और इस अरसे मे अपना समाज शासन-मुक्त करने की कोशिश करो। जब हम समाज को शासन-मुक्त करेंगे, तभी अहिसा मे प्रवेश होगा, नही तो अगर हम यह कोशिश करेंगे कि हिंसा सीमित न बने और उसके जो अतिरिक्त शस्त्र है, उतने ही क्षीण हो जाय तो घटना-चक्र मे यह बात बैठनेवाली नही है। ऐसा समझकर के हम इस प्रस्ताव का यह अर्थ करते है कि

हम सब लोग सारी दुनिया के हित के लिए, विश्वहित के लिए यह बोल रहे हैं। जरा भी कम शब्द नही बोलना है।

हमको हमारे पूर्वजो ने क्या सिखलाया, यह महारोगी सेवा-मडल की एक पुस्तक की प्रस्तावना लिखते समय मैं सोच रहा था। मैने लिखा कि ह्यूमैनिटी का विकास क्रिस्ती धर्म मे हुआ है और उसके परिणामस्वरूप वहापर कुष्ठ रोगियो की सेवा-इत्यादि चलती है। तो, ह्यूमैनिटी शब्द का तर्जुमा करना मुझे मुश्किल मालूम हुआ, क्योकि अपनी भाषा मे ह्यूमैनिटी के लिए कोई शब्द ही नही है। अपनी भाषा मे जो शब्द है, वह है 'भूतदया' और यहा तो चाहिए 'मानवदया'। अब मानवदया जैसी एक सीमित वस्तु हमने बनाई ही नही है। तो 'भूतदया' नाम ले लिया है और कहा है 'सर्वभूतहिते रता।' इतना विशाल शब्द पूर्वजो ने हमारे सामने रखा है कि उससे अधिक विशाल दूसरा कोई शब्द ही नही। 'सर्व' कह दिया, 'भूत' कह दिया एव 'हित' कह दिया। तब और कहने को क्या बाकी रहा? याने पूरा-का-पूरा मनुष्य जितनी ऊची उडान उड सकता है, उतनी ऊची उडान इस शब्द मे पडी है। सर्वभूतहिते रता' और उसका अर्थ भगवान भास्कर लिख रहे हैं, "अहिंसक इत्यर्थ" अर्थात् जिसका अर्थ अहिंसा है, यह एक ही शब्द मे बता दिया। 'सर्व-भूत-हिते रता.' यह जो शब्द है, उसे लेकर ही हम सम्मेलन से जा रहे हैं। लोगो के पास हम जाय और कहे कि यह काम हम कर रहे है। यहा की भूमि-समस्या ही केवल हमे हल करने की नहीं है, दुनिया की कुल सल्तनते, जो कि हिसा को सीमित करने मे कारगर नही हो सकती, उनको मिटाने के लिए और परिणामस्वरूप दुनिया मे अहिंसा की स्थापना करने के लिए, विश्व-शाति के लिए हम आपसे दान माग रहे हैं। क्या आप विश्व-शाति के लिए जमीन का छठा हिस्सा नही दे सकते? अपनी सम्पत्ति का भी छठा हिस्सा विश्व-शाति के लिए क्या नही दे सकते? लोगो के पास जाकर हम यह समझावे।

भाइयो, मैं आपका अधिक समय नही लेना चाहता। कई प्रश्न पूछे गये हैं, लेकिन थोडे मे जो बात मेरे हृदय मे थी, वह आपके सामने प्रकट की। हमारे कई भाई अच्छे-अच्छे कामो मे लगे है। अब हम उनसे जरा प्यार की बात कहना चाहते है। हमारा एक दावा है। वह हम आपके सामने पेश करते है। दावा हमारा यह हैं कि जितनी निष्ठा से रचनात्मक कार्य हमने किया, उससे अधिक निष्ठा से हम कर नही सकते थे। उससे ज्यादा निष्ठा हमारे पास उपलब्ध ही नहीं। इतनी निष्ठा से हमने छोटे-छोटे असख्य रचनात्मक कार्य तीस-बत्तीस साल तक बडी निष्ठा से किए हैं। हमारी आत्मा कह रही है कि अगर इस समय गाधीजी होते तो वे ही छोटी-छोटी सेवाए चलती और उनमे जो तृप्ति थी उसमे हमे विशाल तृप्ति महसूस होती थी। हम इतने मस्त थे कि आज तो लोगो के सामने हम हाथ जोडते हैं, लेकिन उन दिनो ऐसे मस्त थे कि यदि कोई हमारे सामने भी आये

तो परवा नही करते थे । लोग कहते थे, यह कैसा उद्धत मनुष्य है कि देखता भी नही । लेकिन वही हम आज आपके सामने बैठकर प्रार्थना कर रहे हैं कि वे जो छोटे-छोटे काम हमने चलाये है, वे दो-एक साल के लिए जरा छोड दे । इससे इन कामो का नुकसान नही होगा, हमारा नुकसान नही होगा तथा देश और दुनिया का भी नुकसान नही होगा, क्योकि आगे हमे इतना काम उपलब्ध होगा कि वह करने के लिए हम पर्याप्त समर्थ भी साबित नही होगे, ऐसा सभव है ।

सातवा सर्वोदय-सम्मेलन,
जगन्नाथपुरी, २७ मार्च १९५५

७ : : सत्त्व और शक्ति

अब हममे से बहुत-से लोग एक वर्ष तक एक-दूसरे से मिलेगे नही । साल भर मे एक दफा हमको मिलने का प्रसग मिलता है । हम लोग अक्सर काम मे लगे होते है, इसलिए काम छोडकर यहा आने की इच्छा भी कुछ कम रहती है । लेकिन अभी अप्पासाहब ने जो कहा, वह आप लोगो ने सुना है । उन्होने कहा कि यहापर आने से और यहा की बाते सुनने से कुछ लाभ हुआ है । हमको बहुत खुशी है कि इस प्रकार का अनुभव हमको यहा होता है । मैने भी इस सम्मेलन का कुछ निरीक्षण किया । दो-चार सम्मेलनो मे लगातार हम देखते रहे है । मुझे ऐसा भास हुआ कि इस साल सम्मेलन मे जो चर्चाए हुई, उनमे कुछ सात्त्विकता का अश था । इस वर्ष यहा सत्त्व-गुण का अश अधिक देखा । हो सकता है कि यह मेरा भास ही हो, लेकिन अगर यह भास सही है तो यह लक्षण अच्छा है । इससे बल बढेगा । जितना सत्त्व-गुण बढेगा, उतना हमारा बल बढेगा ।

बहुत लोगो का खयाल है कि बल कुछ दूसरी वस्तु है । सत्त्व-गुण से बल बढता है, ऐसा वे निश्चित रूप से मानते नही । वे समझते है कि बल के लिए किसी दूसरे देवता की आराधना करनी होती है । सत्त्वगुण से शान्ति प्राप्त होती है, ऐसा लोग अक्सर मानते है । परन्तु सत्त्वगुण मे ताकत होती है, ऐसा विश्वास अभी बैठा नही है, इसलिए शक्ति का स्वतन्त्र देवता माना गया है और उसके हाथ मे सब प्रकार के शस्त्रास्त्र होते है । उसकी उपासना लोग अन्तिम श्रद्धा रखकर करते है । शान्ति की उपासना लोग करना चाहते है, परन्तु अन्तिम श्रद्धा शान्ति मे नही होती । वह शक्ति मे ही होती है, इसलिए सतत यह भास होता है कि अगर शक्ति हमारे मे न हो तो हमारा बचाव कैसे होगा ? आत्म-समाधान के लिए, सामाजिक समता के लिए, मानसिक शान्ति के लिए, सत्त्व-गुण का देवता मान्य है । यह भी मान्य है

कि अगर रचनात्मक काम करना है, देश का विकास करना है तो भी सत्त्व-गुण का उपयोग है,-शान्ति की जरूरत है। परन्तु अभी तक यह मान्य नही है कि रक्षण के लिए सत्त्वगुण समर्थ है। रक्षण के लिए दूसरे देवता की आराधना, दूसरा देवता की उपासना करनी होगी, ऐसा लोगो को लगता हे।

वह जो (शक्तिरूपी) हमारा परम देवता था, जिसपर हमने अपने वचाव का आधार रखा, उसीने अव तीव्र रूप धारण किया हे, इन दिनो। इसलिए एक प्रकार का डर पैदा हुआ है। आज भी माता-पिता वच्चे को प्रेम से समझाते हे। लेकिन अगर वह नही समझता है तो क्या करते हे ? उसको एक तमाचा मारते हैं, याने आखिर माता-पिता का विश्वास प्रेम के वजाय मारने पर है। जो माता-पिता प्रेम के समुद्र होते है, वच्चो के हित के सिवा कुछ भी नही चाहते, अर्थात् बच्चो के लिए उनके मन मे जरा भी द्वेप नही है—वे भी, अगर वच्चे समझाने से नही मानते हे तो उनको दडन करना, ताडन करना, यही अन्तिम सैक्शन, अन्तिम देवता समझते हे। हमारे मन का निश्चय अभी तक नही हुआ है कि वह शक्ति-देवता हम लोगो के लिए तारक नही होगा, क्योकि उसमे बुद्धि नही है। ऐसा अनुभव नही है कि जहा शक्ति होती है, वहा बुद्धि भी होती हो। शक्ति मूढ देवता है। जिस किसीके हाथ मे शस्त्रास्त्र आते हे, वह शक्तिमान् है, यह जरूरी नही है कि उसका सत्पक्ष हो। जो देवता मूढ है, उसको देवता मानना ही गलत है, उसपर विश्वास रखना भी गलत है, उसपर अन्तिम विश्वास रखना तो और भी गलत है।

यह वात सर्वमान्य है कि जहा परस्पर मे झगड़ा होता है, मतभेद होता है, वहा वातचीत से जितना हो सकता है, उतना करना चाहिए। सामपूर्वक ही कार्य करना चाहिए। परन्तु कार्य सामपूर्वक नही हुआ तो हम अपनी साम-बुद्धि का अधिक सशोधन करेंगे और अधिक उज्ज्वल साम उपस्थित करेंगे, ऐसा वे नही सोचते, वल्कि जव साम से काम नही होता तो दण्ड का प्रयोग करना पडता है। लेकिन दण्ड का भी उपयोग न हुआ तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना करते हे। और उससे भी काम न हुआ तो ? उससे भी अधिक दण्ड की योजना खडी करते हे। यो करते-करते अणु-अस्त्रो तक हम पहुच गये, परन्तु यह ध्यान मे नही आया कि यह दण्ड-शक्ति विश्वसनीय शक्ति नही है, वल्कि यह दगा देनेवाली शक्ति है। यह किसी पक्ष का समाधान करनेवाली शक्ति नही है इसका भान अभी तक हमको नही हुआ। दण्ड शक्ति ने अति उग्र रूप धारण किया, इस वास्ते कुछ डर है और उस वजह से मन कुछ डावाडोल है। परन्तु चित्त मे जो दण्ड मे पूरा विश्वास है, वह विश्वास उठा नही। अव कुछ थोडा-सा डिगा है। परन्तु अभी तक दण्ड त्याज्य नही हुआ।

कई दफा सोचा जाता है और मै भी बहुत दफा कहता हू कि पुरुषो ने समाज का काम वहुत बिगाड़ा। अगर उसमे स्त्रिया दाखिल होगी तो शायद मामला कुछ

सुधरेगा। अभी यह विचार इसलिए मन मे आया कि इस सम्मेलन मे स्त्रिया काफी आई है। मुझे लगता है कि यह अच्छा लक्षण है। कई दफा मैने कहा है कि स्त्री-शक्ति अगर सामने आयेगी तो तारण होगा। लेकिन आज स्त्रियो की हालत क्या है? और उनका विश्वास क्या है? वह अपनेको रक्ष्य समझती है और पुरुषो पर रक्षण की जिम्मेदारी है, ऐसा मानती है। अमरीका की स्त्रिया क्या कहती होगी? ये सारे अणुबम चलते है तो क्या उनको अच्छा लगता होगा? वे अपने पतियो से कहती होगी कि यह ठीक नही हुआ तो पतिदेवता उन्हे क्या समझाते होगे? समझाते यही होगे कि देख, अगर यह न किया जाय तो तेरे वाल-बच्चो की रक्षा नही होगी। तो स्त्रिया क्या कहती होगी? कहती होगी कि अगर ऐसा है तो वडा उपकार है कि यह सारे अस्त्र मिले, क्योकि स्त्रियो को पुरुषो ने भयभीत अवस्था मे रखा है और स्त्रियो का यह गुण माना गया है कि वे भयभीत है। अगर कोई स्त्री वहादुर दीखी तो कहते है कि इसमे पुरुष का गुण है। स्त्री का स्वाभाविक गुण, याने भीरुता। अब इस हालत मे स्त्रिया पुरुषो की मदद मे आकर भी क्या करेगी? वह बन्दूक उठायेगा तो वे उसमे बारूद भरेगी। दूसरे देशो मे स्त्रियो की पल्टने भी बनती है और युद्ध मे सब प्रकार की मदद करने के लिए स्त्रिया तैयार होती है। इसमे स्त्री-पुरुष-भेद भी तो मदद नही दे रहा है।

यह भी माना गया कि स्त्री मातृ-देवता होने के कारण अधिक दयालु, अधिक शान्तिमय, अधिक करुणामय, अधिक वात्सल्यमय होनी चाहिए—होती है। परन्तु जिस मनुष्य मे देह और आत्मा के पृथक्करण का भान नही है, उसमे करुणा हो ही नही सकती। कुछ दया का गुण दीख पडता है, लेकिन वह करुणा-सज्ञा की पात्र नही है। करुणा तो वडा बहादुर गुण हे। उसमे महान् सामर्थ्य है, उसमे डर नही है। वह परम निर्भय है। दया का जो भाव आता है, वह दुर्बलता के साथ आता है। गौतम बुद्ध को जो दर्शन हुआ, करुणा का, वह तीव्र तपस्या के अन्त मे निर्भयता प्राप्त होने पर हुआ। वृत्रासुर से दुनिया को वहुत पीडा होती थी। इन्द्र के सारे औजार नाकामयाब हो गये थे। इन्द्र ने कहा कि यह सत्त्व-गुण से ही मरेगा। सत्त्व-गुण की मूर्ति उस जमाने मे दधीचि मुनि थे। इन्द्र दधीचि मुनि के पास पहुच गये। वोले, "जब हम तुम्हारी अस्थियो का शस्त्र बनायगे तव इसे जीत सकेगे।" उस करुणामय ऋषि ने सोचा कि मेरे पास और है ही क्या? सिर्फ हड्डिया भर तो है तो उन्हे दे दिया जाय। उसने अपनी देह का विसर्जन किया। उसकी अस्थियो का वज्र बनाया गया और उस वज्र से वृत्रासुर का मर्दन हुआ। दुनिया को भय-मुक्त करने के लिए अपना देह-विसर्जन करने की तैयारी उस शख्स की हुई, क्योकि उसका हृदय करुणा से भरा हुआ था। जवतक देह और देह-सम्बन्ध मे हम पडे रहेगे तब-तक करुणा की शक्ति प्रकट नही होगी, चाहे जीवन मे दया थोडी-वहुत प्रकट हो जाय। यह वहुत सोचने की वात है।

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मसले की इन दिनो चर्चा चलती है। वह बेचारा इतना डावाडोल देश दीखता है कि हमको तो उसपर दया ही आती है। न कोई व्यवस्था-शक्ति वहा है, न कोई योजना वहा दीखती है, न परस्पर एकता है, न प्रजा के लिए समृद्धि की कोई तजवीज बनी है। बस, एक कश्मीर का झगडा है। उसे बार-बार खडा करके भारत के द्वेष के नाम पर प्रजा को काबू मे रखते है। इस प्रकार उस देश मे जो तरह-तरह के दु ख है, उन दु खो की तरफ से लोगो का ध्यान ही खीच लिया। बाकी जो कुछ दीखता है, शक्ति का आभास, वह केवल अमरीका की गुलामी है। इसके सिवा और कुछ नही है।

ऐसे देश से क्या डरना है? उस बेचारे की अत्यन्त दयनीय दशा है। वह शस्त्रास्त्र बढा रहा है, उससे उसकी ताकत बढेगी, ऐसा हम नही समझते। बल्कि हम ऐसा समझते है कि वह शस्त्रास्त्र बढा रहा है, इस वास्ते उसकी कमजोरी बढ रही है। वह क्षीण हो रहा है। वह भारत पर क्या आक्रमण कर सकेगा? वह भारत पर तब आक्रमण कर सकेगा, जब अमरीका उसको आक्रमण के लिए प्रेरित करेगा। अमरीका उसको आक्रमण के लिए तब प्रेरित करेगा, जब एशिया आदि सब राष्ट्रो से लडने की ठानेगा और विश्वयुद्ध शुरू करने का इरादा करेगा। इसलिए उस देश की कोई भीति रखने का कारण नही। हम तो यह समझते है कि उस राष्ट्र के साथ अगर हमको बलपूर्वक पेश आना है तो हमे दूसरी ही बात करनी होगी। हमे उसको भयभीतता से मुक्त करने के लिए उसमे कुछ विश्वास पैदा करना होगा। वहा के प्राइम मिनिस्टर क्या कहते है—"अमरीका की मदद हम इसलिए लेते है कि बातचीत मे कुछ ताकत आये। हमको आक्रमण नही करना है। बातचीत से ही मसला हल हो सकता है। लेकिन बातचीत मे ताकत चाहिए, इसलिए यह शस्त्रास्त्र हम हासिल करते है।" हम भी मानते है कि आमने-सामने बातचीत करने से मसला हल करना है तो उस बातचीत के पीछे कुछ ताकत चाहिए। इसीलिए हमको भास होता है कि हम शस्त्र बिल्कुल कम कर दे तो हमारी ताकत बढ जायगी। यह तब ध्यान मे आयगा, जब छाती मे धडकन नही होगी और सामनेवाले के लिए हमारे दिल मे प्रेम होगा। परन्तु उसके अभाव मे हमको डर मालूम होता है और फिर अपने देश के बचाव की जिम्मेदारी महसूस होती है। देश के बचाव की जिम्मेदारी है, इसीलिए हम कहते है कि शस्त्र-त्याग होना चाहिए। बाबा के बचाव के लिए बाबा नही कह रहा है कि शस्त्र कम किये जाय, परन्तु देश के बचाव के लिए कह रहा है। यह हिम्मत की बात है, इतना ही नही, हिकमत की भी बात है, याने इसमे बुद्धिमानी भी है।

यह समझना होगा कि आजकल भिन्न-भिन्न राष्ट्रो के बीच बैलेन्स (सतुलन) रखने की जो कोशिश की जाती है, वह आज की विद्या नही है, सौ-दोसौ साल मे यही चल रहा है। यह 'बैलेन्स ऑव पावर' (शक्ति के सतुलन) का विचार राज-

नीति मे और उसके दर्शन मे सौ-दोसौ साल से मान्य रहा है। इस 'बैलेन्स ऑव पावर' के लिए ही उस देश ने शस्त्रास्त्र बढाये तो हम भी बढाते है, जिससे कि बैलेन्स रहे याने तराजू की डडी बराबर रहे। तराजू के इस पल्ले मे पाच सेर डाला, बैलेन्स नही रहा, तो उस पल्ले मे पाच सेर डाल दिया। अब इस पल्लेवाले ने और दो सेर ज्यादा डाला तो डडी इधर झुक गई। उसने उधर दो सेर और डाला। ऐसे होते-होते दोनो पल्लो मे इतना वजन बढा कि तराजू टूटने की नौबत आई।

आज दुनिया मे जो डर छाया हुआ है, उसका कारण यही है कि मन मे भय है। एक पल्ले मे भारी वजन पडा हुआ है, इसलिए दूसरे पल्ले मे रखना ही पडता है। कुछ मिलाकर सारा जीवन दु खमय है। 'बैलेन्स' कायम रखने के लिए वजन दोनो तरफ समान रूप से बढाते चले गये। 'बैलेन्स ऑव पावर' पर से विश्वास अभी गया नही है। लेकिन बहुत ज्यादा भार हरएक पल्ले मे हुआ है, इसकी हानि मालूम हो रही है। दोनो एक-दूसरे से कह रहे है कि 'बैलेन्स' को कायम रखना चाहिए, *लेकिन दोनो तरफ वजन बढाकर बैलेन्स कायम रखने के बजाय दोनो बाजू* वजन कम करके बैलेन्स कायम रखेगे तो अच्छा होगा। इसलिए अब शस्त्र दोनो तरफ से परस्पर-सम्मति से कम हो जाय तो ठीक होगा, ऐसी बात हो रही है। इसका मतलब यह हुआ कि दो मनुष्यो के बीच बात हो रही है। एक बुद्धिमान है, दूसरा मूरख। बुद्धिमान मूरख से कह रहा है कि जबतक तू मूरख बना रहेगा, तबतक मुझे भी मूरख रहना होगा। अरे, तुझको मूरख रहना क्या पडेगा ? तू मूरख तो है ही। नाहक बुद्धिमत्ता का आरोप तुझपर हुआ था। वस्तुत तुम वही हो, जो तुम होना चाहते हो।

इस वक्त हमारा देश निश्चय के साथ, हिम्मत रखकर, परिस्थिति को समझकर, अपने शस्त्रास्त्र विश्वासपूर्वक कम कर दे तो हम समझते है कि इससे हमारी नैतिक ताकत बढेगी। लोग पूछते है कि क्या इस बात के लिए आम लोग तैयार होगे ? यह बहुत सोचने का विषय है। अमरीका की मदद पाकिस्तान को मिल रही है। यह कोई नई घटना नही है। दो-तीन साल से इसका आरभ हुआ है। जब उनको मदद मिलनी शुरू हुई, उसी वक्त पडित नेहरू ने अगर एक कॉल (आवाहन) दिया होता कि "हमे शस्त्रास्त्र जोरो से बढाने चाहिए, इसलिए मेरे प्यारे भाइयो, सेना मे दाखिल हो जाओ," तो सारे लोग उनके उस कॉल को मान्य करते या नही ? पार्लमेंट बहुत भारी मत से उनके पक्ष मे अपना मत देती या नही ? अहिंसा पर, शाति पर विश्वास रखनेवाले प० नेहरू जब शस्त्र बढाने की बात कह रहे है, तब हमे जरूर शस्त्र बढाने चाहिए, ऐसा लोग कहते कि नही ? परतु प० नेहरू ने देश को सयम मे रखा, इसलिए लोगो ने कुछ धीरज रखा। हम कबूल करते है कि इस मामले मे जनता की शक्ति का विचार करना पडता है। जनता

मे हिम्मत होती है तो राज्यकर्ताओ मे भी हिम्मत आती है। लेकिन इसकी दूसरी बाजू यह है कि सरकार और नेताओ मे ताकत हो तो जनता मे भी ताकत आ जाती है, याने दोनो बाजू से एक-दूसरे पर असर होता है। हम कहते है कि जनता को हम सब मिलकर अगर उसका हित समझा सके और शस्त्रास्त्र कम करने की हिम्मत, ताकत बढाने के लिए कर सके तो उसके लिए आज मौका है। यह हमारी अल्प मति है।

आज की सरकार जिस ढग से सोचती है, उसका हम विरोध नही कर रहे हैं। उनकी जिम्मेदारी है। इसलिए उनको हमारी अपेक्षा ज्यादा बाते मालूम है, ऐसा भी मानने को हम तैयार है और अपने माननीय नेताओ पर श्रद्धा रखना हम अपना कर्तव्य समझते है, विशेष करके जिस नेता के मन मे शान्ति की प्यास है, वह भी जब यह कहता है कि शस्त्र-शक्ति की जरूरत है, तब उस बात मे वजन है, यह मानने के लिए हम तैयार है। लेकिन यहा तो हम अपने उन भाइयो के साथ प्रकट चिन्तन कर रहे है, जो कि सर्वोदय-विचार को मानते है। यह प्रकट-चिन्तन हम इसलिए कर रहे हैं कि सर्वोदय-विचार को माननेवालो मे भी शस्त्रास्त्र बढाने की आवश्यकता है, ऐसा विचार रखनेवाले कुछ लोग आज हैं। उस दिन राजाजी ने बिल्कुल कठोरता से कह दिया कि अगर यहा कोई शख्स पाकिस्तान से डरता है तो उसका सर्वोदय-समाज मे स्थान नही है। हमने अपने मन मे सोचा कि यह तो सतहत्तर साल का बूढा शख्स है। कहा से उसकी वाणी मे यह शक्ति आई? यह शक्ति शरीर की नही है, आत्मा की है। उसी आत्मा के बल से हम निर्भय हो सकते हैं।

हम बार-बार कहते है कि रूस और अमरीका, दोनो एक दूसरे का खयाल न करे और एकपक्षीय नि शस्त्रता को स्वीकार करे, तब हमारी जिम्मेदारी स्पष्ट है। हम जानते हैं कि एकपक्षीय नि शस्त्रता का विचार हमारी सरकार ने नही पेश किया है। लेकिन यह विचार हम लोगो मे चलता है। 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे'—बहुत-से लोग परोपदेश मे कुशल होते हैं। अगर इस विचार का अमल हम स्वय करते है तो उसका एक नैतिक असर दुनिया पर होगा। आज भी भारत की आवाज दुनिया मे बुलन्द है। परतु यह नजदीक का मसला जबतक हल नहीं होता है और उसके लिए हम निर्भय नही बनते है, तबतक उस आवाज मे वह ताकत नही आयगी, जिससे कि दुनिया और हमारा अपना देश हमेशा के लिए बच सके। भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि "सतो की रक्षा के लिए मै अवतार लेता हू।" इसका अर्थ कुछ लोग यह करते हैं कि गीता कहती है कि सज्जनता की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, शस्त्र उठाना चाहिए। हम कहते हैं कि हमारे सामने दो ही विकल्प हैं, दो ही रास्ते हैं—या तो हम दुष्ट हो, या हम साधु हो। अवतार तो हम हो नही सकते। इनमे से हमारी कौन-सी कोटि है, उसका हम

निर्णय करे। अगर हम साधु है तो साधुत्व ही हमारा रक्षण करेगा। यह इस भगवत्-वचन का वास्तविक अर्थ है। उसी साधुत्व को ईश्वर की विभूति कहते है। हमने तो लिख रखा है— 'सत्यमेव जयते।' हमने यह कहा लिख रखा है कि 'शस्त्र-शक्ति' विजयते ?' हमने तो लिखा है, 'सत्यम् एव जयते' केवल सत्य की ही जय होती है। क्योकि सत्य के बचाव के लिए सत्य के सिवा और किसी चीज की जरूरत नही। परन्तु यह सारी चर्चा व्यर्थ हो जाती है, इसलिए कि सामनेवाला कहता है कि आपकी सारी बाते हमको मान्य है। जिसको हमारी बाते मान्य नही है, उसके साथ चर्चा हो सकती है। लेकिन यह तो कहता है कि 'सारी' बाते मजूर है। परन्तु आज की परिस्थिति मे देश की रक्षा के वास्ते कुछ तो करना पडेगा। चित्त की यह जो दशा है, वह जबतक नही मिटती, तबतक दुनिया का निस्तार नही।

सर्वोदय-समाज को इस बात का निश्चय करना पड़ेगा। हम बार-बार कहते है कि जो अहिंसा मे विश्वास रखते है, उनको लोक-नीति की स्थापना मे ताकत लगानी चाहिए। याने राजनीति की समाप्ति करने की कोशिश मे हमको लगना चाहिए। अभी तक तो बहुत प्रयत्न किये गए कि राजनीति को 'स्पिरिच्युलाइज़' किया जाय। गोखले ने इस शब्द का प्रयोग किया, गाधीजी ने उस शब्द को उठा लिया। लोग समझते है कि गाधीजी ने ही प्रथम बार राजनीति को, राजकारण को, पॉलिटिक्स को, 'स्पिरिच्युलाइज़' करने की, नीतिमय बनाने की कोशिश की। गाधीजी ने यह कोशिश जरूर की, लेकिन उन्होने इतिहास मे पहली दफा यह कोशिश की, ऐसा नही है। यही कोशिश मुहम्मद पैगम्बर ने की। लेकिन उन्हे सफलता नही मिली। 'राज' और 'नीति', ये दो शब्द एक-दूसरे को काटते है। 'नीति' को 'राज' शब्द काटता है और 'राज' को 'नीति' शब्द काटता है। नीति आती है, तो राज्य-व्यवस्था आप ही खडित हो जाती है। राज्य-व्यवस्था आती है तो नीति खतम होती है। इसके आगे राज्य नही चाहिए, इसके आगे प्राज्य चाहिए। हम नही जानते, कितने दिन मे यह हो सकेगा। परतु करने लायक कोई काम अगर हमारे लिए है, तो यही है। **"मेरे तो मुख राम नाम, दूसरा न कोई"**—मेरे मुह से राम-नाम के सिवा और कुछ नही निकलेगा, ऐसा निश्चय सर्वोदय-समाज को करना चाहिए। लेकिन गाधीजी के बहुत-से साथी मनोग्रस्त है। वे समझे हुए है कि हर हालत मे राज्य चलाने की जिम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कबूल करते है कि अगर हमने स्वराज्य हासिल किया और राज्य चलाने की जिम्मेदारी नही उठाते तो स्वराज्य हासिल किया ही क्यो ? हमने जरूर वह हासिल किया, लेकिन इसलिए कि वह सत्ता हम अपने हाथ मे ले और उस सत्ता का विलयन करने का आरभ, हाथ मे लेने के दूसरे क्षण से ही कर दे। वह चीज हम चाहे साधे पचास साल मे, लेकिन उसका आरभ आज से ही करना चाहिए।

भाइयो, इस विचार की छान-बीन हम जितनी करे, थोडी ही है। कम्युनिस्ट लोग भी मानते है कि राज्य क्षीण होना चाहिए। पर वे मानते है कि आज की स्थिति मे राज्य अधिक से-अधिक मजबूत होना चाहिए। उसके आधार पर उसके प्रतिकूल जो शक्तिया है, उनके क्षीण होने पर राज्य के क्षय का आरभ होगा। इसलिए कम्युनिज्म मे राज्य-शक्ति मजबूत करना, यह है 'नकद' और राज्य-शक्ति का विलयन होना, यह है 'उधार'। वह उधार कब हासिल होगा, इसका कोई हिसाब नही। आज की हालत मे मजबूत-से-मजबूत ताकत चाहिए, यही इसका निष्कर्ष है।

कौन जाने, कल क्या होगा ? गाधीवाले क्या कहते है ?—गाधीजी के नाम पर वे कहते है, इसलिए उन्हे गाधीवाले नाम मे सबोधित किया—वे कहते है कि राज्यसत्ता हर हालत मे किसी-न-किसी अश मे जरूर रहेगी—कम रहेगी, विभाजित रहेगी, पुण्यकारक रहेगी—लेकिन रहेगी जरूर, यह उनकी श्रद्धा है। बहुतो की यह श्रद्धा है, बहुत-मे सज्जनो को श्रद्धा है कि आखिर मे यह राज्य-सत्ता किसी-न-किसी रूप मे कायम रहेगी। हमको लगता है कि यह गाधी-विचार नही है। परन्तु हम इस तरह बार-बार नही बोलते, यानें गाधीजी के नाम से नही बोलते, क्योकि गाधीजी के नाम से बोलना शुरू करेंगे तो उनकी जो पोथिया और वचन है, वे सारे हमको देखने पडेंगे और वाद-विवाद शुरू होगा। फिर भगवान् बुद्ध के शिष्यो का जो हाल हुआ, उससे बदतर हाल हमारा होगा। एक शिष्य ने कहा कि बुद्ध भगवान् ने यह बताया, दूसरे ने कहा वह बताया। चार ही दिशाए थी, इसलिए उनके चार ही पक्ष हुए और उनकी भी आपस मे लडाई चली! हम समझते है कि हम अगर गाधीजी के नाम पर यह वाद-विवाद करेंगे तो हमारे चार नही, चालीस पक्ष बनेंगे।

यह भी कहा जाता है कि कश्मीर पर जब सेना भेजी गई तो गाधीजी के आशीर्वाद से भेजी गई थी। हम कहते है कि गाधीजी का ही नाम क्यो लेते हो ? गाधीजी ने जिसको सिर पर रखा, उस गीता का ही नाम लीजिये न ! गीता आज भी उपस्थित है। गीता का आधार दीजिये। बस, हो गया। लोग कहते है न, कि गीता मे युद्ध के लिए सपूर्ण बचाव है। हम कितना भी क्यो न कहे, यह वाद अभी तक मिटा नही है। तो हम कबूल करते है कि गीता का आधार भी आपके पास है। फिर वही आधार क्यो नही लेते हो ? तब वे कहते है कि यह आधार हम इसलिए नही लेते कि गीता 'आउट ऑव डेट' (बीते हुए जमाने की) है। तो हम कहना चाहते है कि गाधीजी ने जो सम्मति दी थी, वह भी 'आउट ऑव डेट' है। उसको अब आठ साल हो गये। गाधीजी ने १९१८ मे 'रिक्रूट भरती' के लिए कितनी कोशिश की, यह हमने अपनी आखो से देखा। घूम-घूम करके आखिर बीमार पड गये, परन्तु गुजरात मे रिक्रूट नही मिले। तब फिर उन्होने जैन-धर्म

को, वल्लभ-सम्प्रदाय को दोष देना शुरू किया। कहने लगे कि इन लोगो ने बिल्कुल निर्वीर्य अहिंसा सिखाई है। यह सन् १६१८ की कहानी है।

१६३६ की दूसरी लडाई मे उन्होने क्या रुख अख्तियार किया? "हम सरकार के साथ सहयोग नही कर सकते, युद्ध मे हमे सहयोग नही देना चाहिए।" उनके अनुयायियो ने नही माना तो अनुयायी और गुरु महाराज अलग हो गये। अनुयायी तैयार हो गये थे, सरकार के साथ कुछ शर्तो पर सहयोग करने के लिए। जब सामनेवाली सरकार ने उन शर्तो को नही माना तो गुरु महाराज और शिष्य फिर एक हो गये। यह तो हमने अपनी आखो के सामने देखा है। उस हालत मे गाधीजी का नाम लेकर क्या करेगे? (विनोद की भाषा मे तो यही कहना होगा कि) वह शख्स बिल्कुल दगाबाज था? एक शब्द पर कभी वह कायम नही रखता था। किसीको कोई भरोसा नही था कि आज गाधीजी ने ऐसा रुख लिया है तो कल क्या लेगे! क्योकि वह विकासशील मनुष्य थे, उन्हे खयाल हमेशा सत्य की खोज का होता था, न कि अपनी बात पर अडे रहने का। उन्हे सत्य का नित्य नया दर्शन होता था, इसलिए वह पुरानी बात का आग्रह नही रखते थे। उन्होने लिख रखा है कि उनके ग्रथो को अध्ययन किस तरह करना चाहिए। उन्होने लिखा - "हमारे पुराने और नये, सब वचन एक ही अनुभूति मे से निकले है और उनमे वस्तुत. सुसगति है। परन्तु अगर किसीको विसगति दीख पडी तो पहले के वाक्य गलत समझो और बाद के सही समझो।" इस तरह से जो मनुष्य प्रतिक्षण जागरूक था और जिसमे परिस्थिति से लाभ उठाकर ऊचे-ऊचे चढने की शक्ति थी, उस नित्य विकासशील साधक के शब्दों का आधार हम खोजते है।

हमारी जो कठिनाई वास्तव मे है, उसको हम आपके सामने पेश कर रहे है। शस्त्र-त्याग के रास्ते मे हमारी जो वास्तविक कठिनाई है, उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाना है। मुश्किल यह है कि हमारे देश के अन्तर्गत व्यवहार मे, हमारे आन्दोलनो मे, प्रजा मे, जो काम करते है, उनमे हम सौमनस्य स्थापित नही कर सके, अहिंसा स्थापित नही कर सके। यह हमारी बहुत बडी और असली कमजोरी है। हमने बार-बार कहा कि हमको पाकिस्तान का जरा भी डर नही है। लेकिन हम कबूल करना चाहते है कि हमारे दाहिने हाथ को बाए हाथ का डर मालूम हो रहा है और बाए को दाहिने का।

एक भाई ने कहा कि बाबा सबसे शस्त्र-त्याग की बात तो कहता है, लेकिन फिर भी सरकारी पक्ष के लिए थोडी-बहुत गुजाइश रखता है। वह इसलिए गुजाइश रखता है कि बाबा को अन्तर्गत बात मालूम है और हमने उसका थोडा इशारा अपने व्याख्यानो मे किया है। हम लोगो मे से, हिन्दुस्तान की प्रजा मे से, हिंसा का विश्वास मिटा नही है। इसलिए हम कमजोर है। इसीलिए पूरी तरह से शस्त्र त्याग करना हमारे लिए सम्भव नही है। अगर बाबा को यह विश्वास होता, आप

लोगो को यह विश्वास होता और ऐसी परिस्थिति स्पष्ट दिखाई देती कि हिन्दुस्तान मे सौमनस्य है और जब कोई भी सार्वजनिक कार्य किया जाता है, चाहे कोई आन्दोलन भी क्यो न किया जाता हो तो भी उसमे किसी प्रकार का क्षोभ नही निर्माण होता, तब बाबा नि सदेह होकर कहता कि शस्त्र-त्याग करो। इसलिए हमको बार-बार इस बात का मथन करना चाहिए कि हम देश मे नई शक्ति कैसे उपस्थित करे, जो कल्याणकारी हो, जो समस्याए हल करने मे समर्थ हो और किसी तरह का क्षोभ न होने दे। समस्याओ को हल करनेवाली समस्या-मोचिनी क्षोभ-रहित शक्ति की आवश्यकता है और भूदान-यज्ञ मे यह हमारी खोज हो रही है।

आप सब लोगो को इस खोज मे लगना है। इसलिए हम एक बात बार-बार कहा करते है कि अपनी बुद्धि को किसी भी प्रकार की उपाधि से मत बाधो। मै ब्राह्मण हू, यह उपाधि गलत है, मै फलानी भाषावाला हू, फलाने धर्म का हू, मेरा फलाना सम्प्रदाय है, मेरा फलाना राजनैतिक पक्ष है, यह उपाधि गलत है। ये सारी उपाधिया तोडे बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम नही देगी। जैसे सूर्यनारायण आता है तो किसी प्रकार के भेद उसके सामने टिकते नही, सबकी समान रूप से वह सेवा करता है। सूर्यवत् उदासीन हुए बिना हम अहिंसा की खोज नही कर सकते। सबसे समान भाव से निर्लिप्त होना चाहिए। सबके अभिमुख हम हो। सबके सम्मुख हम हो। सबसे प्यार करे, लेकिन सब उपाधियो से अलग रहे। स्नेह-सम्बन्ध करना चाहिए, ऐसा लोग कहते है। मै इसका यह उत्तर देता हू कि स्नेह बढना चाहिए, सम्बन्ध की जरूरत नही।

मुझे बडी खुशी हुई कि यही विचार आज हमने बिल्कुल ऐसी ही भाषा मे 'कुरल' मे देखा। उसमे कहा है कि अगर मैत्री-भाव का विकास करना चाहते हो तो करो। मैत्री का विकास करना चाहते हैं तो 'पुनर्चि' की जरूरत नही है, 'उनर्चि' की जरूरत है। प्रेम-भावना होनी चाहिए। एक भाई ने हमसे पूछा कि प्रेम-भावना बढाने के लिए क्या करना चाहिए ? तो मैने कहा कि अनासक्त होना चाहिए। चन्द लोगो के साथ, चन्द सस्थाओ के साथ, चन्द सम्प्रदायो के साथ, अगर हमारी आसक्ति जुडी होगी तो हम सबके साथ समान भावसे बरत नही सकेंगे। मान लीजिये, वर्तुल का घेरा है, जिसे परिधि कहते है। परिधि मे अनेक बिन्दु हैं। उन बिन्दुओ मे से मै एक बिन्दु बनू तो परिधि मे जितने बिन्दु हैं, उन सबसे समान दूरी पर मै नही रह सकता। एक बिन्दु मेरे नजदीक है और दूसरा दूर है। अगर मै चाहता हू कि सब बिन्दुओ से समान फासले पर रहू तो मुझे मध्य-बिन्दु बनना चाहिए, न कि परिधि का बिन्दु। इसीका नाम है निष्पक्ष-वृत्ति। हम पक्ष मे पड करके, मत मे पड करके, सम्प्रदाय मे पड करके, उपाधि उठाकर किसी के नजदीक रहेगे और किसीसे दूर रहेगे। हम अहिंसा-शक्ति विकसित करना

चाहते हो तो हमे उपाधिरहित होना ही पडेगा।

कुछ लोग कहते है कि तुम ये सारी वाते कहते तो हो, लेकिन अगर तुमको उठा करके उस कुर्सी पर विठा दिया जाय, राज्य चलाने के लिए तो तुम भी वैसा ही वोलोगे, जैसा वे वोलते है। मै कहता हू कि मै अपनी अक्ल के साथ उस कुर्सी पर वैठूगा ही क्यो ? जिस तरह मेरी बुद्धि आज काम करती है, उस तरह जवतक वह काम करेगी, उस कुर्सी पर बैठने का मेरे लिए सवाल ही नही है। जब मेरी आज की बुद्धि वदल गई होगी, तब जैसा वे बोलते है, वैसा ही मै भी वोलूगा।

असली सवाल यह है कि जनता को किस दिशा मे हम ले जाय। लोगो की तरफ से कुछ दगा होता है तो हमारा दिल व्याकुल हो उठता है। हमको बहुत तीव्र वेदना होती है। दूसरे लोग डरते है 'वर्ल्ड वार' से, जागतिक युद्ध से। हम तो 'जागतिक युद्ध' को कहते है कि "तू आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा।" मै तो उसको बुलाता हू, उसे 'डिवाइन', 'दैवी' कहता हू। जागतिक युद्ध मनुष्य नही लाता है। उसे परमेश्वर लाता है। परमेश्वर जब सहार चाहता है, तव वह जागतिक युद्ध लाता है। भगवान् कृष्ण का अवतार किसलिए हुआ था ? भू-भार अवतरण के लिए। भूमि को जो भार हुआ था, उसके अवतरण के लिए उसने कौरवो का सहार कराया, पाडवो का सहार कराया। उसके वाद भगवान गाधारी से मिलने के लिए गये तो गाधारी ने कहा, "तूने ही यह सारा सहार कराया है।" यो तो स्वभाव से वह साध्वी शान्त थी, लेकिन उस वक्त बहुत क्षुब्ध हो गई, क्योकि उसके पुत्रो का सहार हो चुका था। वोली, "तू क्या समझता है, तूने कौरवो का सहार कराया, पाडवो का सहार कराया तो क्या तेरे यादव वचे रहेगे ? उनका भी सहार जरूर होगा।" भगवान् हँसे। इतना ही उसमे लिखा है, और कह दिया कि "तुम जो सोचती हो, वह जरूर होगा।" इसलिए जव भगवान् सहार चाहता है, तव वह जागतिक युद्ध पैदा करता है। उसकी हमे जरा भी चिन्ता नही है। लेकिन बम्बई के दगे, उत्कल की घटनाए, हृदय को वहुत दु:खी बनाती है। ये सारी चीजे आज हिन्दुस्तान मे नही होती तो वावा बिल्कुल छप्पर पर खडा होकर जाहिर करता कि हिन्दुस्तान का प्रथम कर्तव्य है कि वह शस्त्रो का परित्याग आज ही करे। हमारे शस्त्र-त्याग के मार्ग मे पाकिस्तान बाधक नही है। यह जो '४२ के आन्दोलन मे हमने एक मूर्खता सीख ली है और जिसका अभ्यास अव भी हम कर रहे है, वह हमारा मुख्य डर है।

अपने समाज का, सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि हम हिन्दुस्तान मे सार्वभौम प्रेम पैदा करे और सव प्रकार से निरुपाधिक वृत्ति लोगो मे निर्माण करे। आज महादेवी ने मुझसे कहा कि यहा वहुत-से व्याख्यान हुए, लेकिन स्त्रियो के लिए कुछ नही कहा गया। यहा इतनी स्त्रिया आई है, इसलिए उनके लिए भी कुछ

कहिये। बार-बार यह विश्वास भी बतलाया जाता है कि पुरुषो से ज्यादा अहिंसा स्त्रियो के दिल मे होती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि अहिंसा का विकास न तो वे करेंगे, जो पुरुष है और न वे करेगी, जो स्त्रिया है। लेकिन वे करेंगे, जो पुरुष और स्त्री, दोनो से भिन्न आत्मस्वरूप हैं।

जबतक हम शरीर का यह आवरण लिये हुए है और इसमे फसे हुए हैं तबतक अहिंसा का विकास नही हो सकता। आप कहेगे कि आपने बहुत कठिन बात बताई। हम कहना चाहते है कि हमने कोई कठिन बात नही बताई, जो सत्य वस्तु है, वही कही है। हमारा विश्वास है कि एक बच्चे को भी देह-भिन्न आत्मा का भान कराया जा सकता है।

कुछ लोग हमसे पूछते है कि नई तालीम की व्याख्या करो। कई प्रकार की व्याख्याए की जाती है। कहा जाता है कि उद्योग के जरिए जो तालीम दी जाती है, उसे नई तालीम कहते है। जिस तालीम के द्वारा शरीर और आत्मा के पृथक्करण की भावना बच्चो मे पैदा होगी और 'मै देह नही हू, बल्कि देह से भिन्न आत्मा हू', इस तरह का प्रत्यय बच्चो मे पैदा होगा, वह सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तालीम है। उसे चाहे नई तालीम कहिये, चाहे पुरानी।

इस साल हमने जो काम किये और उनसे हमारा जो उत्साह बढा, उसके विषय मे एक निवेदन करना है और वह यह है कि इस साल सूताजलि कुछ ठीक हासिल हुई है। कोई छ लाख से ज्यादा गुण्डिया इकट्ठी हुई है। पाच साल से इसके लिए काम हो रहा है। इस साल नाम लेने लायक काम हुआ, लेकिन यह बहुत कम है। कम-से-कम सौ मनुष्यो के पीछे एक मनुष्य की एक गुण्डी के हिसाब से काम होता तो छत्तीस लाख गुण्डिया होती। यह बिल्कुल ही छोटी चीज है, लेकिन जितनी छोटी है, उतनी ही शक्तिशाली है। हरेक मनुष्य को इसमे शरीर-परिश्रम की, अहिंसा की, प्रेम की और त्याग की दीक्षा मिलती है। इतनी सारी विविध दीक्षाए एक छोटी-सी गुण्डी से सिद्ध होती है। सर्वोदय के लिए कितने वोट है, इसका अन्दाजा हमको उससे लगता है। हम कहते हैं कि इस चीज को खूब बढावा देना चाहिए।

एक दफा हमारे पास अपनी सरकार द्वारा प्रकाशित गाधीजी के चित्रो का बहुत बडा एलबम आया था। बडे-बडे सुन्दर चित्र उसमे थे। परन्तु जब हम सूत की गुण्डी देखते है तो उसमे गाधीजी का जितना अनूठा रूप दीख पडता है, उतना हमने और कही नही देखा है। इसलिए मेरा कहना है कि आप सब लोग यह काम करिये और केवल श्रम-दान पर यह आन्दोलन चल सकता है, यह सिद्ध करिये। श्रम-दान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ प्रकार यह सूत्राजलि है।

आठवा सर्वोदय सम्मेलन
कांचीपुरम, २६ मई १९५६

चाहते हो तो हमे उपाधिरहित होना ही पडेगा।

कुछ लोग कहते है कि तुम ये सारी बाते कहते तो हो, लेकिन अगर तुमको उठा करके उस कुर्सी पर बिठा दिया जाय, राज्य चलाने के लिए तो तुम भी वैसा ही बोलोगे, जैसा वे बोलते है। मै कहता हू कि मै अपनी अक्ल के साथ उस कुर्सी पर बैठूगा ही क्यो ? जिस तरह मेरी बुद्धि आज काम करती है, उस तरह जबतक वह काम करेगी, उस कुर्सी पर बैठने का मेरे लिए सवाल ही नही है। जब मेरी आज की बुद्धि बदल गई होगी, तब जैसा वे बोलते है, वैसा ही मै भी बोलूगा।

असली सवाल यह है कि जनता को किस दिशा मे हम ले जाय। लोगो की तरफ से कुछ दगा होता है तो हमारा दिल व्याकुल हो उठता है। हमको बहुत तीव्र वेदना होती है। दूसरे लोग डरते है 'वर्ल्ड वार' से, जागतिक युद्ध से। हम तो 'जागतिक युद्ध' को कहते है कि "तू आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा।" मै तो उसको बुलाता हू, उसे 'डिवाइन', 'दैवी' कहता हू। जागतिक युद्ध मनुष्य नही लाता हे। उसे परमेश्वर लाता है। परमेश्वर जब सहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध लाता है। भगवान् कृष्ण का अवतार किसलिए हुआ था ? भू-भार अवतरण के लिए। भूमि को जो भार हुआ था, उसके अवतरण के लिए उसने कौरवो का सहार कराया, पाडवो का सहार कराया। उसके बाद भगवान् गाधारी से मिलने के लिए गये तो गाधारी ने कहा, "तूने ही यह सारा सहार कराया है।" यो तो स्वभाव से वह साध्वी शान्त थी, लेकिन उस वक्त बहुत क्षुब्ध हो गई, क्योकि उसके पुत्रो का सहार हो चुका था। बोली, "तू क्या समझता है, तूने कौरवो का सहार कराया, पाडवो का सहार कराया तो क्या तेरे यादव बचे रहेगे ? उनका भी सहार जरूर होगा।" भगवान् हँसे। इतना ही उसमे लिखा है, और कह दिया कि "तुम जो सोचती हो, वह जरूर होगा।" इसलिए जब भगवान् सहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध पैदा करता है। उसकी हमे ज़रा भी चिन्ता नही है। लेकिन बम्बई के दगे, उत्कल की घटनाए, हृदय को बहुत दु खी बनाती है। ये सारी चीजे आज हिन्दुस्तान मे नही होती तो बाबा बिल्कुल छप्पर पर खडा होकर जाहिर करता कि हिन्दुस्तान का प्रथम कर्तव्य है कि वह शस्त्रो का परित्याग आज ही करे। हमारे शस्त्र-त्याग के मार्ग मे पाकिस्तान बाधक नही है। यह जो '४२ के आन्दोलन मे हमने एक मूर्खता सीख ली है और जिसका अभ्यास अब भी हम कर रहे है, वह हमारा मुख्य डर है।

अपने समाज का, सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि हम हिन्दुस्तान मे सार्वभौम प्रेम पैदा करे और सब प्रकार से निरुपाधिक वृत्ति लोगो मे निर्माण करे। आज़ महादेवी ने मुझसे कहा कि यहा बहुत-से व्याख्यान हुए, लेकिन स्त्रियो के लिए कुछ नही कहा गया। यहा इतनी स्त्रिया आई है, इसलिए उनके लिए भी कुछ

कहिये। बार-बार यह विश्वास भी बतलाया जाता है कि पुरुषो से ज्यादा अहिंसा स्त्रियो के दिल मे होती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि अहिंसा का विकास न तो वे करेगे, जो पुरुष है और न वे करेगी, जो स्त्रिया है। लेकिन वे करेगे, जो पुरुष और स्त्री, दोनो से भिन्न आत्मस्वरूप है।

जबतक हम शरीर का यह आवरण लिये हुए है और इसमे फसे हुए है तबतक अहिंसा का विकास नही हो सकता। आप कहेगे कि आपने बहुत कठिन बात बताई। हम कहना चाहते है कि हमने कोई कठिन बात नही बताई, जो सत्य वस्तु है, वही कही है। हमारा विश्वास है कि एक बच्चे को भी देह-भिन्न आत्मा का भान कराया जा सकता है।

कुछ लोग हमसे पूछते है कि नई तालीम की व्याख्या करो। कई प्रकार की व्याख्याए की जाती है। कहा जाता है कि उद्योग के जरिए जो तालीम दी जाती है, उसे नई तालीम कहते है। जिस तालीम के द्वारा शरीर और आत्मा के पृथक्करण की भावना बच्चो मे पैदा होगी और 'मै देह नही हू, बल्कि देह से भिन्न आत्मा हू', इस तरह का प्रत्यय बच्चो मे पैदा होगा, वह सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तालीम है। उसे चाहे नई तालीम कहिये, चाहे पुरानी।

इस साल हमने जो काम किये और उनसे हमारा जो उत्साह बढा, उसके विषय मे एक निवेदन करना है और वह यह है कि इस साल सूताजलि कुछ ठीक हासिल हुई है। कोई छ लाख से ज्यादा गुण्डिया इकट्ठी हुई है। पाच साल से इसके लिए काम हो रहा है। इस साल नाम लेने लायक काम हुआ, लेकिन यह बहुत कम है। कम-से-कम सौ मनुष्यो के पीछे एक मनुष्य की एक गुण्डी के हिसाब से काम होता तो छत्तीस लाख गुण्डिया होती। यह बिल्कुल ही छोटी चीज है, लेकिन जितनी छोटी है, उतनी ही शक्तिशाली है। हरेक मनुष्य को इसमे शरीर-परिश्रम की, अहिसा की, प्रेम की और त्याग की दीक्षा मिलती है। इतनी सारी विविध दीक्षाए एक छोटी-सी गुण्डी से सिद्ध होती है। सर्वोदय के लिए कितने वोट है, इसका अन्दाजा हमको उससे लगता है। हम कहते है कि इस चीज को खूब बढावा देना चाहिए।

एक दफा हमारे पास अपनी सरकार द्वारा प्रकाशित गाधीजी के चित्रो का बहुत बडा एलबम आया था। बडे-बडे सुन्दर चित्र उसमे थे। परन्तु जब हम सूत की गुण्डी देखते है तो उसमे गाधीजी का जितना अनूठा रूप दीख पडता है, उतना हमने और कही नही देखा है। इसलिए मेरा कहना है कि आप सब लोग यह काम करिये और केवल श्रम-दान पर यह आन्दोलन चल सकता है, यह सिद्ध करिये। श्रम-दान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ प्रकार यह सूत्राजलि है।

आठवा सर्वोदय-सम्मेलन
काचीपुरम, २९ मई १९५६

८ : : विज्ञान और आत्मज्ञान

किसी भी प्रकार का सम्मेलन करना हो तो उसमे दूसरे सारे प्रवन्धो के साथ-साथ खाने का भी प्रवन्ध करना पडता है, क्योकि सर्वोदयवालो को भी अन्न की भूख लगती है। यही सब समाजवादी-सम्मेलन मे भी करना पडता है और कम्युनिस्ट-सम्मेलन मे भी। कोई भी सम्मेलन क्यो न हो, उसमे यह करना ही पडता है, क्योकि ये सारे लोग भिन्न-भिन्न 'वादी' भले हो हो, फिर भी उनको अन्न की भूख समान रूप से लगती है। जैसे खाने की भूख सबको लगती है, वैसे ही इन दिनो विश्व-शान्ति की भूख सबको लगी है। यह एक विशेष शुभ-लक्षण है। विश्व-शान्ति की भूख जव लगती है तो उसके लिए साधन भी जुटाने पडेगे। वे साधन भी लोग ढूढ रहे है। आज आपने यहा हमारे कम्युनिस्ट भाई का व्याख्यान सुना। उन्होने कहा कि "ग्रामदान के जरिये अगर यह भूमि का मसला प्रेम से हल किया गया तो सर्वोदय, साम्यवाद और समाजवाद मे वहुत भेद न रहेगा।" इन दिनो इस प्रकार की अनुभूति बहुत लोगो को हो रही है। कुछ विश्व-शान्तिवाले भाई भी यहा सम्मेलन मे आये है। आप लोग जानते है कि इन दिनो 'न्यूक्लियर-वैपन्स' (आणविक अस्त्रो) के परीक्षण हो रहे है। दुनिया को युद्ध होने पर जो हानि होगी, उसके अलावा इन परीक्षणो से भी बहुत हानि होनेवाली है। यह सारा अनर्थ है। यह हानिकारक काम नही करना चाहिए, ऐसी भावना इन विश्व-शान्तिवालो की है। आप जानते है कि ऐसी ही आवाज हमारे देश मे श्री जवाहर-लाल नेहरू ने उठाई है। हमारे वृद्ध पुरुष श्री-राजाजी ने भी उसके वारे मे बहुत दफा कहा है। इसमे कोई शक नही कि यह बहुत ही अनर्थकारी कार्य हो रहा है। रूस का काम उधर पर्वतो मे चलता ही है। अमरीका भी अपना कार्य करता ही है। अब इनके पीछे-पीछे जाने की कोशिश, थोडा आरम्भ, इग्लेड कर रहा है। इस तरह यह अनर्थ-परम्परा वढ रही है। हम भी यहा जाहिर करना चाहते है, यद्यपि हमारे लिए शब्दो मे जाहिर करने की कोई जरूरत नहीं, क्योकि हमारा विचार स्पष्ट ही है, फिर भी इसका हम अत्यन्त तीव्र निषेध करते है।

सब लोग जानते है कि हम तो इस कार्य मे मग्न है, जो विश्व-शान्ति के लिए सर्वोत्तम, सरल और सुविधाजनक कार्य है। वहुत दफा हमने जाहिर किया है कि भूदान के लिए दिया जानेवाला एक-एक दान-पत्र विश्व-शान्ति के लिए एक-एक वोट है। विश्व-शान्ति की चाह उनको भी है, जो लोग इन अस्त्रो के परीक्षण मे लगे हुए है। फिर भी यह काम चल रहा है, एक-दूसरे का भय दोनो को इस काम के लिए प्रेरित कर रहा है। सब जानते है कि इससे कोई लाभ नही, सब प्रकार की हानि है। फिर भी यह इसीलिए चल रहा है कि उन्हे विश्व की कई प्रकार की समस्याओ का हल निकालने का मार्ग सूझ नही रहा है। वे समझते है और अपने

बच्चो को भी समझाते है कि हम ये अणु-शस्त्र आदि केवल सरक्षण के लिए बना रहे है, ताकि दुनिया मे हिसा न हो सके। वह इसे 'डिटरण्ट' (प्रतिबन्धक) समझते है। कहते है कि यह चीज पडी है, इसी वास्ते लोग विश्वयुद्ध शुरू करने का साहस न करेगे। इसलिए 'बाइबिल' पर उतना विश्वास नही रख सकते, जितना इन साधनो पर उन्होने रख लिया है। इस तरह बुद्धि काम नही कर रही है तो हाथ काम कर रहे है। हमारा कहना है कि इसे रोकने की सामर्थ्य वैज्ञानिको मे है। इसकी शोध करने की जिम्मेदारी उन्हीकी है। वे केवल गुलाम बन जाते है, सरकारो की आज्ञा मानते है और जैसी आज्ञा की जाती है, वैसे ही अस्त्र ढूढने मे अपनी बुद्धि लगाते है। हम इसे बुद्धि का अत्यन्त दुरुपयोग समझते है। बुद्धिमानो को इतनी बुद्धि होनी चाहिए कि वे समझे कि इस प्रकार के काम करना अनुचित है। उनमे अगर यह बुद्धि पैदा हो जाय, और यह कहने की हिम्मत तथा साहस आ जाय कि "आपकी आज्ञा के अनुसार हम शस्त्रास्त्रो की खोज न करेगे" तो सारा मामला ही सुलझ जाय। परन्तु जब ज्ञानी की ज्ञान-बुद्धि ही ठिकाने पर न रहे, तब दुनिया को कौन बचायेगा ?

विज्ञान के पीछे भी आत्म-ज्ञान की शक्ति चाहिए। यह हम इसीलिए कहते है कि केवल विज्ञान की शक्ति विज्ञान पर अकुश रखने की अक्ल नही दे रही है। अगर इतना थोडा-सा आत्म-ज्ञान वैज्ञानिको को उपलब्ध हो जाय तो यह सारा मामला वही खतम हो जाय। महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइन मरते समय कह गये कि "ये सारे आयुध खतरनाक है और इनका सग्रह नही होना चाहिए।" पर इन आयुधो का शायद एक प्रतिबन्धक उपाय के तौर पर उपयोग हो सकता है और उससे दुनिया को कुछ लाभ हो सकता है। यह प्रेरणा उसी महावैज्ञानिक को प्रारम्भ मे हुई थी और उसके अनुकूल उसने काम किया था। बहुत ही दु खदायक घटना है यह ! विज्ञान-शक्ति कितनी अपूर्ण है, इसका इससे निदर्शन मिलता है। इसीलिए हमारे अनुभवी पुरुषो ने कहा था कि बिना आत्मज्ञान के पाप मे से निस्तार हो ही नही सकता। हरेक को आत्मज्ञान हासिल नही हो सकता, लेकिन इतनी बुद्धि रहे कि देश का नेतृत्व किसी आत्मज्ञानी के हाथ मे ही होना चाहिए। परन्तु इन दिनो देश का नेतृत्व इस ढग से बनता है कि आत्मज्ञान का कोई पता नही चलता। कल काकासाहब से बात हो रही थी। वह कहते थे कि जैसे जुआ होता है, आजकल वैसे ही चुनाव चलते है। इसका मतलब यह होता है कि देश का नेतृत्व आज जिस ढग से बनता है, उस ढग मे फर्क करना होगा। इन सब समस्याओ के बारे मे जितना हम सोचते है उतना ही सर्वोदय-विचार पर आकर ठहर जाते है।

अभी अलबर्टस्वीटजर ने इन प्रयोगो के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। उसका उत्तर एक दूसरे वैज्ञानिक ने दिया, "यह तो ठीक है कि आपका हृदय

सहानुभूतिपूर्ण है। नुकसान जरूर होता है इन प्रयोगो से, लेकिन इतना ज्यादा नही होता कि उससे हम डरे।" थोडा होता है कि ज्यादा होता है, इसके बारे मे 'वाद' है। लेकिन नुकसान होता है, यह वाद का विषय नही है। आखिर नुकसान होता क्या है ? होता यह है कि जनन-शास्त्र ही खडित होता है। याने आगे जो प्रजा उत्पन्न होगी, उसकी शक्ति क्षीण होगी। अब इसे वे कम भयानक चीज माने तो सोचने की बात है कि इससे अधिक भयानक चीज क्या हो सकती है ? लेकिन खैर, थोडा ही भय है, ऐसा ही समझ लीजिये, फिर भी अगर ये सारे प्रयोग इकट्ठे होगे तो भय का भी समूह बनेगा। ये प्रयोग तो चलते ही जायगे, क्योकि सामनेवाला जितने प्रयोग करेगा, उससे ज्यादा हमे करने पडेगे। इस तरह यह मामला बढता ही जायगा। इसलिए इसका निषेध करना सब लोगो का कर्तव्य हो जाता है। हमारा भी कर्तव्य है। इसलिए हमने चन्द शब्दो मे वह प्रकट किया।

पर जैसा कि मैने कहा, मामला शब्दो से नही निपटता। विश्व-शान्ति के लिए और विश्व-समाधान के लिए हमे मार्ग ही स्थापित करना होगा। हमे बहुत खुशी होती है कि हिन्दुस्तान मे जबसे ग्रामदान का विचार निकला है, तबसे राजनैतिक विचार करनेवालो को विचार मे कुछ राहत मिल गई है। हम इसे बहुत ही बडी घटना समझते है। ग्रामदान जितनी बडी घटना है, वह विचार जितना बडा है, उससे भी बडी घटना यह है कि सबको वह विचार जच रहा है। सद्विचार अपने मे जितने महत्त्व का होता है, शायद उससे कही ज्यादा महत्त्व उसका बढ जाता है, जब वह सर्वसम्मत होता है। तो यह ग्रामदान का विचार सद्विचार होते हुए भी सर्वसम्मत विचार हो गया है। इस हालत मे अगर हम सब लोग अपने अनेक मतभेदो को जरा बाजू मे रखकर ईसीके चिन्तन मे लग जाये तो विश्व-शान्ति की राह खुल जायगी, इसमे हमे कोई शक नही।

हम जब केरल मे प्रवेश करनेवाले थे, उसके पहले तामिलनाड मे कार्यकर्ताओ मे भी कभी-कभी चर्चा चलती थी। कुछ लोग शका उपस्थित करते थे कि "बाबा वहा जायगा तो उसे वहा की सरकार की तरफ से सहयोग तो क्या मिलेगा, बल्कि कुछ विरोध ही होगा।" कुछ लोग यह भी कहते थे कि "सम्भव है कि बाबा को वहा समूचे केरल का ही दान मिल जाय।" मैने कहा, "मै दूसरा ही सम्भव मानता हू। केरल मे 'केरल-दान' ही मिलना चाहिए। उसके बिना, कम्युनिस्टो को जो मौका मिला है, वह उन्होने खोया, ऐसा होगा।"

कुछ लोगो का खयाल है कि कम्युनिस्ट ध्वसवादी है। उनके और हमारे विचारो मे कई जगह मतभेद है और उस खयाल से उनपर हमने कई जगह टीका की है। पर कम्युनिज्म स्वय विध्वसवादी है, ऐसा हम तो समझे नही है। स्वय अपने-आपमे कम्युनिज्म एक चिन्तनीय वस्तु है। एक बहुत बडी बात कम्युनिज्म

मे है, जो उसके पहले विचारको मे नही थी। मै उसका यहा विश्लेषण या विवेचन नही करूगा। कम्युनिज्म पर टीका करनेवाली एक छोटी-सी वृत्ति मैने लिखी है। उसमे मार्क्स का उल्लेख करते हुए मैने 'महामुनि मार्क्स' लिखा है। खूबी यह है कि 'महामुनि मार्क्स' के ग्रथ पढकर असख्य लोगो का हृदय-परिवर्तन हुआ और वे कम्युनिस्ट लोग हृदय-परिवर्तन मे विश्वास नही करते। बस, यही हमारा और उनका मतभेद शुरू होता है। हम कहते है कि भाई, आप स्वय ही हृदय-परिवर्तन की मिसाल है और फिर कहते है कि हृदय-परिवर्तन होता नही है। हम कहते है कि कम्युनिज्म स्वय एक बहुत अच्छी चीज है।

अब उसके साधन। इसमे किसी भी कम्यूनिस्ट को शका नही है कि मानव का हृदय शुद्ध है। यानी बुद्धिपूर्वक कोई कम्यूनिस्ट इस सिद्धान्त का विरोध नही कर सकता। मोहपूर्वक इसका विरोध कर सकता है और करता भी है, लेकिन कम्युनिस्ट-विचार के अनुसार विरोध नही कर सकता, क्योकि वह मानता है कि एक विशिष्ट घटना होने के बाद स्टेट खतम हो जायगी। जो शख्स, स्टेट कही-न-कही जाकर खतम होगी, यह मानता है, उसका मानव-हृदय पर नि सशय ही विश्वास है, यह मानना ही पडेगा। लेकिन वह तो मानता है कि एक अवस्था के बाद समाज ऐसा बनेगा कि उसके आगे स्टेट की जरूरत न रहेगी। यह उनका सोचने का ढग है। जो कम्युनिस्ट नही है, ऐसे कुछ लोग कहते है कि पहले सत्य-युग था, जबकि शासन की जरूरत नही थी और शासन था नही, लेकिन आगे आयेगा, उस वक्त शासन की जरूरत नही रहेगी। भूतकाल मे सत्ययुग था, ऐसा माननेवाले 'पुराणमतवादी' लोग है और भविष्य मे सत्ययुग आयेगा, ऐसा कहनेवाले कम्युनिस्ट लोग है। वे पुराणमतवादी और ये कम्यूनिस्ट दोनो सत्ययुग-वादी है। ये जो सत्ययुग बीत गया, उसकी कल्पना किया करते है और ये जो सत्ययुग आगे होगा, उसकी कल्पना किया करते है। हम क्या कहते है? भूत और भविष्य दोनो हमारे हाथ मे नही है। वर्तमान हमारे हाथ मे है। हम वर्तमान मे ही सत्ययुग की कोशिश करेगे। बस, इतना ही मतभेद है। पुराणकार भूत-सत्य-युगवादी, कम्युनिस्ट भविष्य-सत्ययुगवादी और सर्वोदय वर्तमान सत्ययुगकारी। यह 'वादी' नही, 'कारी' है और यह भूत-भविष्यवाला नही, वर्तमानवाला है।

अब हमारे लिए दोनो का विरोध हो सकता है और दोनो की सहानुभूति भी। और होती भी है। कभी कोई सनातनवादी हमे मिलते है। उनका पुराण पर विश्वास होता है। वे कहते है कि "तू क्या अहिंसा की बात बोलता है? अरे, यह कलियुग है, कलियुग मे तेरी अहिंसा चलेगी? अहिंसा तो सत्ययुग की बात है, पुरानी बात है। आज यह तुम्हारी बात नहीं चलेगी, बेकार है।" इस तरह वह विरोध करता है। कम्युनिस्ट भी हमारा कभी-कभी विरोध करता है। कहता है,

"कैसे 'कल्पनावादी' वन गये हो ! आज अहिंसा से कोई काम होगा ? आज जरूरत पडे तो हिंसा करने के लिए तैयार रहना पडेगा। आखिर मे अहिंसा जरूर आयेगी। उस आखिर की अहिंसा के लिए आज हिंसा करने की हिम्मत रखनी चाहिए। अगर आज अहिंसा की वात करोगे तो आज तो अहिंसा आयेगी ही नही, और वह जो आखिर मे आनेवाली अहिंसा है, वह भी टल जायगी। परन्तु आज अगर आवश्यक हिंसा के लिए मन मे तैयारी और भविष्य मे अहिंसा की आशा रखते, हो तो सम्भव है, उस अन्तिम अहिंसा को हम ला सके।" ऐसा कुछ विचार-भेद है।

परन्तु सत्ययुग क्या है, उसकी व्याख्या मे मतभेद नही है। आदर्श समाज क्या होगा, इसमे कोई खास मतभेद हमने कभी देखा नही है। वारीक-वारीक भेदो की वात मैं नही करता। सर्वसाधारण भेद की वात करता हू। पुराणकारो का जो चित्र है, वही चित्र इन कम्युनिस्टो का होता है। जिस प्रकार उनके स्वर्ग का वर्णन होता है, उसी प्रकार का इनके आदर्श समाज का। हम पुराणकारो से पूछते है कि "तुम्हारा स्वर्ग तो वडा आकर्षक है, वडा लोभ होता है हमे, परन्तु वहा जाने के लिए सीढी तो वताओ।" तो वोलते है, "सीढी है।" "कौन-सी सीढी है, रे भाई ?" वोलते है, "मरना पडेगा। मरने के वाद स्वर्ग मिलेगा। अत्यन्त आकर्पक होते हुए भी मरने के वाद आयेगा।" इसमे हमारा विश्वास नही वैठता। अव इससे पूछते है कि "तुम्हारा स्वर्ग हमे वडा अच्छा लगता है, लेकिन कौन-सी सीढी हे वहा पहुचने की ?" तो कहता है कि "आज हमे परिपूर्ण हिंसा की तैयारी रखनी चाहिए। मारने के लिए तैयार रहना पडेगा।" वह मरने के वाद स्वर्ग वतलाता है और यह मारने के वाद, इस तरह हमारे लिए दोनो ओर से मुश्किल मामला हो जाता है।

अव हमारे वारे मे उन्हे क्या मुश्किल होती है ? वे कहते है कि "तुम तो वहुत ही अच्छा उपदेश करते हो। लेकिन यह वताओ कि क्या तुम्ही अच्छा उपदेश करने के लिए दुनिया मे आज पहले-पहल पैदा हुए ? सैकडो सन्त-पुरुष हो गये, उनके ग्रथ पढ-पढकर रटते हो और वही लोगो को समझाते हो। जहा बुद्ध, क्राइस्ट और दूसरे सारे वेकार सावित हुए, वहा अव तुम कारगर सावित होनेवाले हो ? वाइविल मे अहिंसा की तालीम क्या कम है ? हमने पढा कि दुनिया की एक हजार भाषाओ मे वाइविल का तर्जुमा हो गया है और नई कोई छियालीस भाषाओ मे तर्जुमा हो रहा है। अव इतनी भाषाओ मे तो बाइविल पहुच गई। और खिस्ती सिपाही जव मरते है तो सम्भव है उनके सामने वाइविल रहती होगी। इतना वाइबिल का प्रचार है। इसपर भी ईसाई लोग हिंसा कर ही रहे है। भगवान् का नाम लेते है, इतवार के रोज बाइबिल पढते है और वाकी छ. रोज दोनो को भूल जाते है। अव इस हालत मे तुम्हारा उपदेश क्या पराक्रम करेगा ? इसलिए हमे उपदेश की जरूरत नही। क्या तुम अपने उपदेश से कोई परिवर्तन ला सकते

हो ? अगर ला सकते हो तो लाकर दिखाओ । हमारा विश्वास नही है कि तुम परिवर्तन ला सकोगे।" साराश, उनकी हमारे साथ मुश्किल यह है कि उनकी राय मे हमारा विचार बहुत अच्छा है, लेकिन आज उसका अमल होने की स्थिति नही है। हमारे बारे मे यही उनकी दृष्टि है। अब इस हालत मे हमे क्या करना होगा ? उनके साथ वाद-विवाद कर क्या लाभ मिलेगा ? हम सबको यह निश्चय करना होगा कि अगर इन विचारो मे दुनिया का काम बनाने की कोई ताकत है तो वह कोई ताकत प्रकट करे।

पोचमपल्ली मे बिना किसी अपेक्षा के जब भूदान की घटना बन गई तब रात को लेटे-लेटे हमारा खूब चिन्तन चला कि यह क्या घटना हुई ? क्या इसमे कोई ईश्वर का इशारा है ? ऐसा हम सोचने लगे। हमने कई बार कहा है कि ईश्वर के साथ-साथ दूसरा हमारी श्रद्धा का विषय गणित है। तो हमने मन मे जरा गणित भी किया—कम-से-कम पाच करोड एकड जमीन हासिल करनी होगी, तब भूदान से कुछ काम बनेगा। हमारी देह के अन्दर से शका और भय पैदा होने लगा। यह मानना असम्भव हो गया कि आज एकसौ एकड जमीन प्राप्त हो गई, इस वास्ते यह कोई तरीका हे-और इसी तरीके से पाच करोड एकड जमीन हासिल हो सकेगी। जब हमारा यह तर्क कुठित होने लगा तो हमारे सामने कम्यु-निस्टो का दर्शन हुआ। उनका कुछ काम यहा चलता था। मैं सोचने लगा कि अगर इस बात पर विश्वास नही बैठता कि "प्रेम और दान के तरीके से करोडो एकड जमीन हासिल होगी और मसला हल होगा" तो मुझे कम्युनिज्म पर विश्वास रखना चाहिए। तीसरी कोई बात हमारे मन मे कभी आई ही नही। अगर यह अहिंसा का, सर्वोदय का विचार बेकार हे, तो मानना ही पडेगा कि कम्यु-निज्म के सिवा छुटकारा नही। इतने हम एक-दूसरे के अत्यन्त नजदीक होते हैं। तो, कम्युनिज्म हिंसा को मान्य करता हे, पर वह करुणाप्रेरित है, यह समझना चाहिए । एक बडी विचित्र वस्तु दीख पडती है—प्रेरणा करुणा की, और हिंसा पर श्रद्धा। परन्तु यह कोई आज की विसगति नही, यह विसगति तो बिल्कुल अनादिकाल से ही चली आई है। हमने 'गीता-प्रवचन' मे लिख रखा है कि एक जमाने का सहार-कर्त्ता कारुण्य-मूर्ति परशुराम ! स्पष्ट ही विरोध है। हाथ मे परशु है और कारुण्य-मूर्ति है ! तो उसके जमाने से आजतक यह विसगति चली आई है। हमें यह विसगति तोडनी है और शाति की शक्ति तथा प्रेम की शक्ति को सिद्ध करना है।

आज होता क्या है ? 'शान्ति-शान्ति-शान्ति' हम तीन दफा बोलते हैं। लेकिन इस तरह जप करनेवाले 'स्टेटस् को' (स्थितिवादी) होते हैं। याने ये शान्ति चाहनेवाले समाज मे परिवर्तन होने मे डरते हैं। इससे उलटे समुदाय मे बिल-कुल क्रान्ति चाहनेवाले उद्विग्न लोग अहिंसा की कैद मानना नही चाहते। वे न तो

'हिंसावादी' होते है और न 'अहिसावादी', वरन् वे होते है कारुण्यवादी। ये कारुण्यवादी ही हिसा के लिए प्रवृत्त हो सकते है। अवश्य ही यह विसगति है, लेकिन वह कहते है, "जीवन कोई लाजिक (तर्कशास्त्र) है ? वह तो विसगति से भरा है। किसका जीवन विल्कुल सुसगत चल सकता है ? इसलिए एक दफा यह विसगति कवूल कर ऐसी समाज-रचना कर डालो, वाद मे शासन-वासन कुछ न रहेगा। तव जो अहिसा शुरू होगी, वह अनन्तकाल तक चलेगी। हिंसा अनादि है, अतिप्राचीन काल से चल रही है। लेकिन हमे उसका अन्त करना है और हम करेंगे!" इस तरह वह हिंसा को 'अनादि-सान्त' मानते है। 'सान्त' याने 'अन्त-वान्'। इसी तरह वह यह भी मानते है कि एक अच्छा समाज वनाने के वाद जव एक वार हम अहिंसा शुरू कर देंगे तो वह अनन्तकाल तक चलेगी। यानी अहिसा को यह 'सादि-अनन्त' मानते है। एक अनादि-सात और दूसरी सादि-अनन्त! अव हम इस वीच के काल मे है। वे कहते है कि "अरे, जरा जोर लगाओ। मन मे अहिंसा का विश्वास तो रखो, लेकिन हाथ से थोडे हथियार भी उठाओ। तुम्हे करुणा नही आती ? वेचारे दरिद्र पीसे जा रहे है। इस हालत मे उनकी तरफ से कुछ हिंसा करनी पडी तो तैयार हो जाओ न! अगर तैयार नही होते तो निष्क्रिय वन जाते हो।" यह उनका आक्षेप चिंतन करने योग्य है।

साराश, शातिवादी स्थिति-स्थापक वन गये और क्रान्तिवादी हिसा के लिए तैयार हो गये। अव हम क्या करना चाहते है ? हम क्रान्तिवादी रहते हुए शान्ति से काम करनेवाले वनना चाहते है। हमपर जिम्मेदारी है कि हम दिखा दे कि शान्ति से इस दुनिया का महत्त्व का मसला हल हो सकता है। यहा जो जमात इकट्ठी हुई है, उसकी जिम्मेदारी क्या है, यह मै समझा रहा हू। हमे छ साल मे यह दर्शन हुआ है कि हमारा जो कुछ अल्प-सा प्रयत्न हुआ, उसपर से उनको भी शका आने लगी है कि शायद शान्ति से क्रान्ति हो सकेगी। जिनके मन मे यह निश्चय था कि शान्ति से क्रान्ति हो ही नही सकेगी, उनको भी शका आने लगी है कि शायद शान्ति से क्रान्ति हो जाय। हम समझते है कि छ साल के प्रयत्न से यदि इतना यश मिला तो हमारी अपेक्षा से वह यश वहुत ज्यादा है।

आज जयप्रकाशजी ने भी कहा कि "इस आन्दोलन मे हम कहा-से-कहा चले गये, यह जव सोचते है तो आश्चर्य होता है कि इतनी छोटी अवधि मे हम इतना परिवर्तन कैसे ला सके ?" उन्होने एक असन्तोष भी प्रकट करते हुए कहा कि "हम आशा करते थे कि इस सम्मेलन मे सर्व-सेवा-सघ का जो प्रस्ताव रखा गया, उसकी वजाय राष्ट्रीय सकल्प, यानी सर्व-देश का राष्ट्रीय सकल्प हम यहा उपस्थित करते।" उनकी अपेक्षा थी कि यहा एक राष्ट्रीय सकल्प घोषित होता। वह न हो सका और सर्व-सेवा-सघ का ही प्रस्ताव रखना पडा। अव इसमे जरा सोचने की वात है। राष्ट्रीय सकल्प किसे करना है ? थोडा सूक्ष्म विचार करे। सम्पूर्ण समाज

के जीवन मे परिवर्तन करनेवाले जो विचार होते है, उनका उद्गम-स्थान किसी एक व्यक्ति का दिमाग होता है। क्राइस्ट ने क्रिश्चियनिटी का विचार दुनिया के सामने रखा। मुहम्मद के दिमाग मे इस्लाम का विचार अवतरित हुआ। जिस प्रकार ऊचे शिखर बादल से पानी पहले खीच लेते है, फिर वह भूमि पर गिरता है, उसी प्रकार कोई व्यक्ति ऐसे होते है, जो नये विचार को खीच लेते है। उनका वह विचार उनके ध्यान से दृढ होता है। परिणामस्वरूप वह विश्व-सकल्प बनता है। तब वह राष्ट्रीय सकल्प नही रह जाता। हम कहना चाहते है कि आज जो प्रस्ताव आपके सामने रखा गया, वह 'सर्व-सेवा-सघ' ने जरूर रखा, परन्तु वास्तव मे वह विश्व-सकल्प है, क्योकि उसमे लोगो के सामने एक परिशुद्ध विचार रखा गया है। वह परिशुद्ध, निरुपाधिक विचार है। ऐसी अवस्था मे जब परिशुद्ध विचार लोगो के सामने रखा तो वह विश्व-सकल्प का रूप ले लेता है। इसलिए यह समझने की जरूरत है कि अगर राष्ट्रीय सकल्प नही हो सका तो भी यह विश्व-सकल्प हो गया है। जो जमात किसी प्रकार के राजनैतिक चिन्तन के लिए बधी नही है, परिशुद्ध और निरुपाधिक चिंतन करने के लिए जो मुक्त है, ऐसी मुक्त सस्था समाज के सामने जो परिशुद्ध विचार रखती है, वह विश्व-सकल्प हो जाता है। इसलिए यह समझने की जरूरत है कि इस सभा मे राष्ट्रीय सकल्प नही हो सका तो भी कुछ कम प्राप्ति नही हुई। जिस विचार की परिशुद्ध और निरुपाधिक चिन्तन करनेवालो को स्फूर्ति हुई और जिसका विरोध करने की जरूरत राजनैतिक पक्षो को नही हुई, वह विश्व-सकल्प ही है। उस सकल्प को आकार देने के लिए चन्द लोगो को सकल्प करना होगा। फिर एक समाज को सकल्प करना पडेगा। तब राष्ट्र को सकल्प करना पडेगा। उसके बाद अन्तर्राष्ट्र का सकल्प होगा। इस तरह स्थूल सकल्प की व्याप्ति बढती जाती है। परन्तु मुख्य समझने की बात यह है कि हरेक परिशुद्ध सकल्प वास्तव मे विश्व-सकल्प ही होता है।

परन्तु दूसरी जो बात उन्होने कही, वह बहुत महत्त्व की है। इस अवधि मे कुछ काम हम पूरा करना चाहते थे, वह नही कर पाये—यह हमारी शक्ति की न्यूनता है। मै बहुत दिनो से अपने साथियो से कहता आया हू कि विचार हमारा परिशुद्ध है, यही हमारा बल है। इसलिए जिनकी उस विचार मे श्रद्धा है, उन लोगो को अपना तन-मन प्राण इसमे लगाना चाहिए। आज रिवाज है, 'तन-मन-धन' कहने का। लेकिन यह जो 'धन' है, वह बिल्कुल 'निधन' है। इसलिए मैने 'तन-मन-प्राण' कहा। होता क्या है कि हम लोगो मे से कुछ रचनात्मक काम मे पडे है, उन्हे उस काम की आसक्ति है। कुछ ऐसे भी है, जिन्हे गृहासक्ति है। ऐसी आसक्तिया पडी है, जिनके कारण हम अपना चिंतन सर्वस्व उसमे नही लगा सके।

हमने अपने अनुभव से देखा है कि कोई भी देवता एकाग्र उपासना के बिना प्रसन्न नही होता। छोटी-सी बात है। हमे आरोग्य बढाने की जरूरत हुई। उन

दिनो मेरा वजन केवल ९० पौंड था। वजन बढाने का निश्चय हुआ। मन मे यह हुआ कि सब काम छोड आरोग्य की उपासना करनी चाहिए। उन दिनो आरोग्य के लिए मैने कम-से-कम बारह महीने दिये। इतने महीनो मे मैने अपने अन्तर में भी कोई विचार नही आने दिया। बिल्कुल शून्य मन जिसे कहते है, वैसा बन गया। बहुत रोचक और रोमाचकारी अनुभव हुआ वह! ४० पौंड वजन बढा। बीच मे एक महीना आया, जबकि हम चिन्तन न कर सके। उसमे मुझे नई तालीम के लिए काम करना था। उस एक महीने मे मेरा वजन नहीं बढा। आहार आदि वही था। परन्तु दिमाग मे तालीम का चिन्तन चलता था। नायकम्जी से पहले बात हो चुकी थी। इसलिए मैने वह काम किया। तो, दो देवताओ की उपासना शुरू हुई—तालीम-देवता और आरोग्य-देवता। एकाग्रता सध न सकी। यानी कुल ११ महीनो तक ठीक वजन बढता गया और एक महीने मे कुछ नही बढा। मै जानता था कि इससे वजन घटेगा। आरोग्य के समान एक सामान्य देवता भी मत्सर-युक्त है। जब वह दूसरे देवता की उपासना सहन नही करता तो भू-दान-यज्ञ जैसा बडा देवता क्या अपने उपासक मे एकाग्रता का अभाव सहन करेगा? परन्तु ग्राम-दान-विचार के रहते हुए वह भी सतुष्ट हो रहा है, यह जो प्राप्ति है, वह बहुत बडी प्राप्ति है। इतना हो जाने के बाद हमारा और आपका काम आसान भी होता है और कठिन भी। आसान इसलिए होता है कि हमारा इसमे उपयोग होता है और नारायण की शक्ति लगेगी। कठिन इसलिए होता है कि इसमे हमारी गुण-परीक्षा होती है।

आज मै बम्बईवालो के सामने बात कर रहा था। कोई ऐसा शब्द हमारे मुह से निकल गया, जो एक भाई को चुभा। उसने हमे दु ख के साथ एक लम्बा पत्र लिखा। उसको भास हुआ कि हमने गलती की। खैर, मै तो उनके साथ बात करके उनका समाधान कर दूगा। फिर भी यहा हम उनसे इसकी क्षमा माग लेना चाहते है। यद्यपि क्षमा मागने जैसी कोई हमारी गलती हुई हो, ऐसा हमे नही लगता। वे भाई हमे समझा देगे। फिर भी हम क्षमा इसलिए माग लेते है कि हमारे मुह से कोई ऐसा शब्द निकल गया, जिससे उन्हे दु ख हुआ। इसमे हमारी गुण-परीक्षा हुई। हमारी वाणी से कोई ऐसा शब्द नही निकलना चाहिए, जिससे प्राप्त सहानुभूति मे कोई कमी हो। आपके लिए सहानुभूति का पात्र भरा हुआ है और वह भरा हुआ पात्र लेकर आपको चलना है। अगर चलने मे आप चचलता रखेगे तो वह नीचे गिरेगा और वह पूरा भरा हुआ पात्र खाली हो जायगा। जब वह खाली था, पानी ऊपर तक भरा हुआ नही था, तबतक आप मजे मे चाहे जहा आ-जा सकते थे। उससे क्या नुकसान होता? वह खाली ही था। भीतर थोडा-सा पानी था, जो अन्दर ही रह जाता। पर जब भरा हुआ पात्र हम लेकर चलते है तो बडी सावधानी से चलना पडता है। आप विश्वास रखकर यहा से जाइये कि अगर हम

सावधानी से चलेगे तो यह जिम्मेदारी उठा सकेगे। अब उस पात्र मे और अधिक सहानुभूति भरने की गुजाइश नही है। वह पूरा भरा हुआ है। हो सके तो अब कम ही हो सकेगा। कम न हो, इसकी सावधानी हमे रखनी होगी और वडी कुशलता से इसे ले चलना होगा। अगर वैसा हम करते है तो ईश्वर के नजदीक पहुचते है। आखिर यह सब काम क्या हम करनेवाले है ? समूह की इच्छाशक्ति प्रकट करने का काम हमारा है। गणपति की कृपा हासिल हो गई तो आगे का काम गणपति कर लेगा। कार्यारम्भ हो गया है। काम की शुरुआत मे पहले गणपति की कृपा प्राप्त करनी पडती है। 'कार्यारम्भे गजानन'।' छ साल तक हमने कितनी जमीन हासिल की, आदि वाते छोड दीजिये। जो कुछ काम किया, उस सबको यही समझ लीजिये कि हमने गणपति की कृपा हासिल की। अब हमारा कार्य निर्विघ्न हो गया। अब इसमे अगर विघ्न होगा तो उसे हम ही करनेवाले है। अब दूसरो की तरफ से विघ्न उपस्थित न होगा। यही हमने केरल में देखा। यहा हमे सबसे सहानुभूति मिली। उसका हम पर बहुत असर हुआ। जमीन की मालकियत मिटाने की वात इतनी आसान नही कि धर्म-सस्था उसे मान ले। लेकिन यहा की जो क्रिस्ती सस्था है, उसने भी इस विचार को मान्य किया वह धर्मसस्था और कम्युनिस्ट, ये दो सिरे है। दोनो की सहानुभूति हासिल हुई। अब वाकी के सारे तो इस चिमटे मे आ गये, यह अनुभव हमे केरल मे हुआ। आप लोगो से प्रार्थना है कि आप लोग इस विश्वास से यहा मे जाइये कि हम बिल्कुल शिखर के करीव पहुचे है। मजिल काफी तय हो चुकी है। लेकिन आखिरवाला शिखर कुछ लवा होता है। चढाई भी सीधी होती है, इसलिए चलना हमे मुश्किल हो जाता है। अत ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि हम सब तरह से सावधान होकर चले।

ये लोग हमे गणित सिखाते है। हमे वडा आश्चर्य होता है और आनन्द भी। आश्चर्य यह होता है कि हम रोजमर्रा गणित करते है, फिर भी ये हमे गणित सीखते है। गणित तो उसे सिखाना पडता है, जो गणित जानता नही। पर ये हमे सिखाते है, जो कि निरन्तर गणित करता रहता है। आनद इसलिए होता है कि जिस गणित पर हमारी वहुत श्रद्धा है, उसपर इनकी श्रद्धा भी वैठ रही है। ये गणित यह सिखाते है कि-छ साल मे ४० लाख एकड जमीन मिली तो पाच करोड के लिए कितने साल लोगे ? अब गणित मे श्रद्धा रखते हुए भी हमे कबूल करना होगा कि हमारी अक्ल इसमे नही चलती। क्रान्ति का काम सिर्फ हिसाब से नहीं, बेहिसाब काम भी होता है। काम जब होगा, तब दो दिनो मे नहीं, एक ही दिन मे होगा। वह एक दिन पार करने का दिन है। वेद ने कहा है कि वह पार करने का दिन है। उसे काटना है। उसके लिए हमे कोशिश करनी चाहिए।

इसके लिए हमे दो-चार वाते करनी होंगी। हम लोगो मे आपस मे पूर्ण स्नेहभाव होना चाहिए, यह हम वार-बार कहते है। इसलिए नही कि हम

लोगो को स्नेह-शून्य पा रहे है। यह कार्य इतना पवित्र है कि इससे स्नेह तो बढेगा ही, परन्तु हम सारे कार्यकर्ता परिपूर्ण नही है। अनन्त गुण-दोषो से भरे है। उस हालत मे हम एक-दूसरे के गुण-दोष पर ध्यान देगे तो शक्ति न बढेगी। परन्तु वैभव और सपत्ति के लिए वैराग्य के साथ यह हमे बहुत ध्यान मे रखना चाहिए कि आपस मे अनुराग होना चाहिए। दूसरे भी कई समाज हमने देखे है, जहा अनुराग की कमी पाई। परिणामस्वरूप अनुराग का महत्त्व हमारे मन मे और भी दृढ हो गया। इसलिए आप जिसे 'स्नेह' कहते है,'भक्ति' कह सकते है, वह परस्पर के लिए होनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि हमारे काम मे सातत्य रहना चाहिए। सातत्य के अभाव मे समुदाय की शक्ति निर्माण नही होती। मान लीजिये कि बाबा पैदल-यात्रा का जो हठ लेकर बैठा है, वह न बैठता तो क्या होता। महत्व के काम के लिए उसे कई बार बुलावा आता है। कई मर्यादाए जीवन मे होती है। हमने पचवार्षिक योजना पर कही टीका की थी। पडितजी का तार आया कि जल्दी-से-जल्दी आइये, इतमीनान से बाते करेगे। मैने उन्हे लिखा कि आपकी आज्ञा से शीघ्र ही निकल रहा हू, लेकिन पैदल निकल रहा हू। आज तार आया और परसो मै निकला। कुछ इन्तजाम करना था, क्योकि मै पैदल यात्रा करनेवाला था। मेरे मन मे दो प्रकार का समाधान था एक तो यह कि मै एक महापुरुष की आज्ञा का पालन करता हू। शीघ्र बुलाया तो शीघ्र निकला। और दूसरा यह कि पैदल चलना शुरू किया। मान लीजिये कि पैदल चलने का आग्रह न होता तो कभी इधर और कभी उधर जाना पडता। काम तो बाबा के पीछे थे ही। इस वास्ते एकाग्रता के टुकडे हो जाते। लोग कहते, जब बाबा फुरसत से काम कर रहा है तो हम भी फुरसत से काम करेगे। फिर आज जो एकाग्रता से शक्ति बनी है, वह न बनती। इसलिए जैसे अभिषेक-धारा अखड चलती है वैसे ही काम भी अखड होना चाहिए। उसमे सातत्य होना चाहिए।

तीसरी बात बीच-बीच मे मिल-जुलकर थोडी ज्ञान-चर्चा करनी चाहिए, नही तो क्या होता है? आप गाव मे आते है तो लोग कहते है कि "अरे, भूदानी आया है। उसकी बात एक बार सुन ली है, अब बार-बार क्या सुनना है! उसका नाम ही 'भू-दानी' पडा। इससे अलग उसकी कोई पहचान होनी चाहिए। लोगो को लगना चाहिए 'हमारा सेवक' आया है, अनेकविधि सेवा करनेवाला सेवक आया है। उसके लिए आपको अध्ययन करना होगा, ज्ञान-चर्चा करनी होगी। बीच-बीच मे ज्ञान-चर्चा के लिए रुकना चाहिए और परस्पर विचार करना चाहिए। ये तीन बाते हम करते है तो हमे विश्वास है कि हमारा कार्य सम्पन्न होगा।

नवा सर्वोदय-सम्मेलन
कालड़ी, १० मई १९५७

९ : : विचार-निष्ठा

ॐ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येषआत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्त शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो, य पश्यन्ति यतय क्षीणदोषा ॥
सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पथा विततो देवयान ।
येनाक्रमति ऋषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

सात साल से एक विचार-यज्ञ चल रहा है। भारत एक वहुत पुराना देश हे और उसमे अनेक प्रकार के आध्यात्मिक और सामाजिक प्रयोग किये गए हे। उन प्रयोगो की पृष्ठभूमि इस देश के सारे इतिहास को उपलब्ध हुई है और परमेश्वर की योजना के अनुसार इस देश का सम्बन्ध दुनिया के वहुत-से देशो के साथ वहुत पुराने जमाने से आजतक चला आया है। इसलिए विचारो का लेन-देन इस देश और दुनिया के दूसरे देशो के वीच सतत चला आया है। कभी-कभी उस लेन-देन और विचार-विनिमय को आक्रमण का स्वरूप आया तो कभी सघर्ष का स्वरूप आया और कभी परस्पर प्रेम-परामर्श का रूप आया। इस देश पर वहुत वार आक्रमण हुए। फिर भी सारे इतिहास मे इस देश की ओर से उस किस्म का आक्रमण दूसरे किसी देश पर हुआ हो, ऐसा स्मरण नही है। यह कोई छोटी चीज नही है कि इतने वडे देश के लिए यह कहा जाता है कि इसने वाहर के किसी देश पर आक्रमण नही किया है। मेरे खयाल से यह एक बहुत वडी चीज है।

इस देश की श्रद्धा निरन्तर विचारो पर रही है और विचारो के समन्वय पर रही हे। यहापर जितने भी वाहर से लोग आये, चाहे वे व्यापार-व्यवहार के लिए आये हो, चाहे आश्रय के लिए आये हो, चाहे भूमि-प्राप्ति के लिए आये हो, चाहे राज्य-सत्ता की, वैभव की लालसा से आये हो, चाहे विचार-दान के लिए या विचार-चर्चा के लिए आये हो, या धर्म-प्रचार के लिए आये हो, ऐसे अनेक निमित्तो से जितने भी लोगो का यहा प्रवेश हुआ, उन सवको इस देश ने एक ही ढग से स्वीकार किया और वह ढग था कि जो विचार मिले, उसे अपने मे पचा लेना, उसका समन्वय करना।

सात साल से हमारा यह जो आरोहण चला है, उसमे भारत की इस दृष्टि का निरन्तर खयाल रहा है। अपने चिन्तन का थोडा-सा अश मै आपके सामने रखना चाहता हू। मेरे अन्दर समन्वय का जो द्वद्व चल रहा है, उसका भी आपको दर्शन होगा। मैने 'द्वद्व' शब्द इसलिए कहा कि जवतक परिपूर्ण समन्वय सधता नही तवतक उसके अन्दर कुछ द्वद्व भी रहता है। मै अपना परीक्षण करता रहता हू। दुनिया मे जो भिन्न-भिन्न तत्त्वज्ञानी पुरुष, विचारक और चिन्तक हुए, उन्होने जिस ढग से काम किया, उसका दर्शन भी मै कराऊगा।

उन लोगो मे कुछ ऐसे होते थे, जिन्होने पहले से अत तक केवल विचार पर

ही निष्ठा रखी। आदि मे विचार, मध्य मे विचार और अत मे विचार, इस तरह से जिनकी आदि-मध्यात केवल विचार पर ही निष्ठा रही और विचार-समझकर जिन्होने सन्तोष माना ऐसे लोगो की जमात दुनिया मे दीख पडती है। कुछ नाम लेना अपरिहार्य हो जाता है, उसके बिना चर्चा अव्यक्त दीख पडती है, इसलिए मै कुछ नाम लूगा। जैसे, 'महावीर'। वह जिस किसीसे मिलते थे, उसकी भूमिका पर जाकर उसे विचार समझाते थे। अपने निज के किसी विचार का आक्रमण सामनेवाले पर नही करते थे, वल्कि पूछ लेते थे कि वह शख्स किस प्रकार की विचार-पद्धति को मानता है। अगर वह वेदो को मानता था तो उसे वेदो के अनुसार समझाते थे। अगर वह दूसरी प्रणाली मानता था तो उसे उस प्रणाली के अनुसार समझाते थे। ऐसी कई प्रणालिया भारत मे उन दिनो चलती थी, जिनका दिग्दर्शन सस्कृत, पाली, अर्धमागधी आदि भाषाओ मे होता है। इस तरह उसकी परपरा और विचार-पद्धति के अनुसार ही एक-एक को वह समझाते थे और यही कहते थे कि विचार कभी एकागी नही होता है। जो एकागी होता है, वह विचार नही, वल्कि अविचार होता है। इसलिए जो तुम सोचते हो, वह भी सही है, लेकिन उससे भिन्न बाते भी सही हो सकती है, इसका खयाल मन मे रखो और अपने विचार की पूर्ति के लिए उस विचार से बाहर जाकर कुछ विचार पाने की, विचार के विकास की पुष्टि की आशा रखो। उसके लिए हृदय खुला रखो। जो शख्स किसी प्रकार की विचार-प्रणाली पहले से नही मानते थे, उनके पास पहुचने पर वह उन्हे अपने ढग से विचार समझाते थे। इस तरह अत्यत अनाग्रह से वह विचार समझाते थे। उन्होने दुनिया को एक वडी भारी देन दी है कि कोई भी विचार परिपूर्ण सर्वागीण ही हो सकता है। जो सर्वागीण नही होता, वह विचार ही नही है। उन्होने कोई भी स्थूल कार्य अपने हाथ मे नही लिया था और जिसे उन्होने 'मध्यस्थ दृष्टि' कहा, उस मध्यस्थ दृष्टि से जनता को सिर्फ विचार ही समझाते गये।

महावीर के चालीस साल के बाद उनसे एक भिन्न अवतार हुआ, गौतम बुद्ध का। बुद्ध ने उनसे भिन्न विचार-प्रक्रिया चलाई। उन्हे समाज के सामने एक विचार रखना था, इसलिए उसके लिए आधार-रूप एक कार्य भी उन्होने ढूढ लिया था। वह कार्य उनके लिए सर्वस्व नही था, परन्तु वह विचार उनके लिए विचार का वाहन था और विचार-प्रचार के लिए एक साधन के तौर पर उन्होने उस जमाने मे यज्ञ मे जो विकार आया था, उसकी शुद्धि का कार्य हाथ मे लिया। वह प्रचार तो विशुद्ध करुणा का ही करते थे, परन्तु साथ-साथ यज्ञ मे किया जानेवाला बलिदान बद करने का कार्यक्रम भी उन्होने हाथ मे लिया। विचार-प्रचार की यह दूसरी पद्धति है, जिसमे विचार पर श्रद्धा तो है ही, परन्तु उसके प्रचार के लिए कोई स्थूल आलबन चाहिए, ऐसा समझकर एक कार्य हाथ मे ले लिया।

इसके आगे जाकर जिनकी विचार मे श्रद्धा थी, उन्होने विचार-प्रचार के लिए

कुछ सप्रदाय, शिष्य-परपरा आदि बनाना शुरू किया। इस प्रकार से गुरु-पथ, सप्रदाय आदि बने, जिसके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न धर्म, जो एक-दूसरे के विरोधी नही थे, यद्यपि विरोधी दीख पडते थे, निर्माण हुए और उनके लाखो अनुयायी बने। इतिहास को दर्शन हुआ कि जब धर्म-विचार का आरभ हुआ, तब खालिस विचार की दृष्टि से समझाया जाता था और लोग धीरे-धीरे समझते थे, परन्तु कुछ बरसो के बाद उसमे कुछ शक्तिया दाखिल होती थी। जैसे ईसाई-धर्म मे कास्टैण्टाइन के बाद एक परिवर्तन आया, बौद्ध धर्म मे अशोक के बाद एक परिवर्तन आया। जैसे हिन्दूधर्म मे और वैष्णव सप्रदाय मे गुप्त-साम्राज्य के बाद एक परिवर्तन आया, जैसे लाओत्से और कनफ्यूशिअस के विचार के साथ चीनी सत्ता जुडने से दूसरी शक्ति से प्रचार हुआ, ऐसी कई मिसाले मिलती है। इस तरह खालिस विचार समझाना और केवल विचार ही समझाते रहना, उसके साथ कोई कार्य हाथ मे न लेते हुए विचार समझाते रहना, यह एक पद्धति हुई और विचार-प्रचार के लिए कुछ कार्य हाथ मे लेकर उसके जरिए विचार समझाना, यह दूसरी पद्धति हुई।

तीसरी पद्धति मे विचारो का शासन आया, यानी शासन के या सत्ता के जरिये लोगो मे विचार-प्रचार किया गया। विचार के ग्रहण के लिए भौतिक अनुकूलताए पैदा करना और उसके अग्रहण के लिए भौतिक प्रतिकूलताए पैदा करना, यह सारा किया गया। जो उस विचार को माने, उनके लिए अनुकूलताए पैदा की गई और जो नही माने उनके लिए प्रतिकूलताए पैदा की गई। इस तरह का आयोजन हुआ। अब धर्म-विचार के साथ सत्ता जुड गई और सत्ता ने धर्म-विचार का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझा। जिस सत्ता ने ऐसा अपना कर्तव्य समझा, वह सत्ता उस जमाने मे लोकमान्य हुई और उस-उस धर्म के अनुयायियो की सख्या बहुत बढी। उसका परिणाम क्या हुआ, हम सब जानते है। आज दुनिया मे एक-एक धर्म को माननेवाले की करोडो की तादाद है, लेकिन धर्म-विचार की असलियत छिप गई है या विकृत हो गई है, वह प्रकट नही हो रही है।

इससे आगे जाकर जिस विचार को हम अत्यत पवित्र समझते है और जिसके ग्रहण से मनुष्य-जाति का कल्याण होगा, ऐसा मानते है, उसके विरोध मे कोई शक्ति खडी हो तो उस शक्ति को तोडना भी आवश्यक माना गया और विचार-प्रचार मे या विचार-प्रचार के नाम पर सैनिक शक्ति की भी मदद ली गई। आरभ मे तो सुरक्षा के नाम पर सैनिक शक्ति आई। मुहम्मद पैगम्बर ने शुरुआत मे अत्यन्त तितिक्षा और सहनशीलता बरती और सबको यही समझाया कि हमारे विचार परमेश्वर की हमारे लिए देन है। उनके वास्ते लोग हमे तकलीफ देते है तो उन्हे सहन करना चाहिए। लेकिन बीच मे ऐसा हुआ कि शिष्यो की सहन-शक्ति टूट गई और वे भागने लगे तो पैगम्बर को यह कहने का मौका आया कि डरपोक बनकर भागना ठीक नही है, इससे बेहतर है कि तुम तलवार लेकर

मुकाबला करो। लेकिन जितनी मात्रा मे उसकी जरूरत है, उतनी ही मात्रा मे उसका उपभोग करो। इस तरह जब उनके शिष्य क्षमा, तितिक्षा और अहिसा के नाम से डरपोक बनकर पलायन करने लगे, तब उन्हे प्रतिकार की आज्ञा देनी पडी। इस तरह विचार प्रचार के लिए नही, बल्कि विचार के बचाव के लिए आरभ मे हिसा को सम्मति दी गई। यह पैगम्बर की एक ही मिसाल नही है, महाभारत मे भी यही दिखाई देता कि विचार-प्रचार के साथ एक नई शक्ति आई और शुद्ध विचार के साथ उसे जोडा गया। उसके बाद किसी प्रकार का विचार समझना ही नही रहा और ऐसे काम किये गए, जिसमे जो विचार न समझता हो, उसे दड ही देना चाहिए। इस तरह विचार-प्रचार के मोह मे ऐसी शक्तिया प्रकट हुईं, जिनसे विचार अविचार मे परिणत हुआ।

यह सारा इतिहास मेरे सामने है। मै सोचता हू कि मेरी श्रद्धा इनमे से किस पर है और मै कर क्या रहा हू। समन्वय का द्वद्व मुझमे चल रहा है। उसका दर्शन मै आपको कराना चाहता हू। मेरी श्रद्धा विचार के सिवा और किसी चीज पर लेशमात्र भी नही है, बल्कि अपने अनुभव से मैने देखा है कि विचार जब ध्यान मे आता है, तब ध्यान मे आने पर, समझने पर, पचने पर वह ठीक मालूम होता है, और उसका साक्षात दर्शन होने पर अमल मे लाने के लिए बीच मे कुछ करना पडता है यह मेरी समझ मे ही नही आता है। इसका मतलब यह नही कि जो विचार समझ मे आया, उसपर मैने फौरन अमल किया हो। इसके अमल मे बहुत समय गया, परन्तु वह समय क्यो गया, इसका विश्लेषण करते हुए ध्यान मे आया कि विचार को मैने पूरी तरह से समझा ही नही था, इसलिए इसके अमल मे कुछ समय गया। लेकिन जो विचार मै पूरी तरह से समझा था, उसके आचरण के लिए और कोई कृति करनी पडती हो, कोई तप या साधना करनी पडती हो, यह मेरी समझ मे नही आता। जब विचार समझने पर उसके अमल करने मे मुसीबते आती है, तब मै अपने मन मे यही समझता हू कि उस विचार को मैने परिपूर्ण समझा नही है। विचार के अमल के लिए विचार को परिपूर्ण समझना ही परिपूर्ण और पर्याप्त है, यह मेरी श्रद्धा है। फिर भी मै कर क्या रहा हू!

निरंतर घूमने का व्रत मैने लिया है। यह भी ठीक है। घूमना और विचार समझाना चलता हो तो उसमे भी कोई विशेप विसगति नही है। परतु मैने विचार देने के लिए एक कार्य भी उठा लिया है और उससे भी आगे जाकर अब शातिसेना की बात निकली है। शातिसेना के लिए कुछ योजना भी करनी पडती है। लोगो ने मुझसे पूछा कि "शातिसेना के लिए आयोजन क्यो करते हो? उसके लिए शर्तें, योग्यता, पाबदी यह सब क्यो रखते हो?" मै कहना चाहता हू कि इन सवालों का कोई जवाब मेरे मन मे नही है, क्योकि ये लाजवाब सवाल है। मेरी श्रद्धा वच रो पर होने के कारण मेरी तरफ से उन प्रश्नो का कोई उत्तर नही दिया जा

सकता है। अगर मेरी चले तो मै शातिसेना का प्रयोग नही करता, उसकी योजना और प्रबध नही करता, उसके लिए पाबदिया नही रखता। अगर मेरी चले तो मै किसी कार्य-विशेष को हाथ मे नही लेता। अगर मेरी चले तो विचार-प्रचार के लिए घूमने की ही मुझे अन्दर से जरूरत नही महसूस होती, बल्कि विचार को परिसिद्ध करना, यही विचार-प्रचार का साधन है, ऐसा मै मानता हू। उसके लिए शब्द भी कमजोर साधन है।

प्राय यह माना जाता है कि शब्द से कृति बलवान साधन है, परतु मै वैसा नही मानता हू। कभी-कभी मै वैसा बोलता हूं, परतु मै समझता यह हू कि कृति से शब्द श्रेष्ठ साधन है और शब्द से नि शब्द, 'मौन' श्रेष्ठ साधन है। वाणी से जो प्रचार होता है, उससे अधिक प्रचार चिंतन से होता है। जब चिंतन मे शुद्ध विचार आता है तो उसका तीव्र वेग से प्रचार होता है, ऐसा मेरा मानस मुझसे कहता है। यद्यपि इन दिनो बाहर के कार्य मे तीव्र वेग से कर रहा हू और शातिसेना आदि का आयोजन भी कर रहा हू, तथापि विचार पर मेरी जो श्रद्धा है, वह उत्तरोत्तर दृढ ही होती जा रही है।

दसवा सर्वोदय-सम्मेलन
पढरपुर, १ जून १९५८

१० : : वेदान्त, विज्ञान और विश्वास

गगोत्री मे गगा बहुत ही निर्मल और परिशुद्ध होती है, परन्तु उसकी धारा छोटी होती है। आगे-आगे गगा का प्रवाह जोरदार बनता है, उसका विस्तार होता जाता है और सागर-सगम के स्थान पर तो वह बहुत ही बढता जाता है। फिर भी जैसे-जैसे विस्तार बढता है, वैसे-वैसे उसकी स्वच्छता और निर्मलता कम होती जाती है। दुनिया मे बहुत दफा ऐसे ही अनुभव आते है, जहा सख्या-वृद्धि हुई, वहा गुण का कुछ ह्रास ही हुआ, और जहा गुण पर जोर दिया गया, गुण बढा, वहा सख्या कम हुई। मै इस घटना पर बहुत चिन्तन करता हू कि क्या सचमुच गुण-वर्धन और सख्या-वृद्धि मे विरोध है? सभी चिन्तनो का मूल आधार, परम आदर्श, परमेश्वर है। जब उसकी तरफ देखता हू तो मुझे यही दीख पडता है कि वह परम शुद्ध है और परम व्यापक भी। वहा तो शुद्धि और व्यापकता का विरोध नही दीखता, दोनो एक साथ ही दीखते है। हम आसमान की तरफ देखते है, वहा भी यही दीख पड़ता है कि उसकी व्यापकता के साथ उसकी निर्मलता मे कोई कमी नही हुई। वह परम निर्मल और परम व्यापक ही है। किन्तु गगा की हालत कुछ

दूसरी ही दीखती है। तब यही अनुभव आता है कि हमारी हालत गगा के समान है, आसमान के समान नही। हम परमेश्वर की प्रतिमा नही बन सकते। उसके साथ हमारे जीवन और अनुभव का मेल नही बैठ पाता।

आखिर इसकी क्या वजह है, इसपर जब मै बहुत सोचता हू तो मालूम होता है कि जो एकदेशीय रहकर शुद्धि की कोशिश करते है, उनकी शुद्धि सकोच मे टिकती है। इसीलिए व्यापकता याने सख्या, और शुद्धि यानी गुणो, के बीच विरोध पैदा होता है। व्यापक चिन्तन मे यह विरोध लाजमी नही है। अभी हमे सोचना पडेगा कि हमारा चिन्तन कहातक ठीक चलता है ? हम एक बात निकालते है तो दूसरी बात ढीली पडती है, दूसरी निकालते है तो पहली ढीली पड़ जाती है और तीसरी निकालते है तो दोनो ढीली पड जाती है। इस तरह एकाग्रता मे और समग्रता मे बाधा पहुचती है। जहा ऐसा होता है, कहना पडेगा कि वहा एकाग्रता मे, उस कल्पना मे भी कोई दोष ही है। अत हमे ऐसी कोई युक्ति साधनी चाहिए, जिसमे एकाग्रता और समग्रता एकत्र हो सके। जब कि साधक अक्सर सब लोगो को टालकर ध्यान के लिए एकान्त मे जाते है और वहा परमेश्वर के साथ एकरूप होने की कोशिश करते है, वहा मीरा दुनिया के सारे बन्धन तोड लोगो के सामने नाचती और कहती है, "मै तो गिरिधर आगे नाचूगी।" अत कहना पडेगा कि उसे कोई ऐसी युक्ति सध गई है, जिससे समग्रता और उसकी एकाग्रता बाधक नही होती। इसका अर्थ यह हुआ कि हमे ऐसी युक्ति साधनी चाहिए कि सारी सृष्टि परमेश्वर के विविध रूप से बनी हुई है, ऐसा अनुभव हो। अतएव जब हम एक चीज पर जोर देते है और दूसरी चीज ढीली पड जाती है तो यही समझना चाहिए कि हमारा विचार ही कुण्ठित है। बाबा ने सर्वोदय-पात्र की बात शुरू की ता कुछ लोग समझने लगे कि ग्रामदान-विचार पीछे ही रह गया। यही चिन्तन का दोष है। मै सूचित करना चाहता हू कि हमे अपना यह चितन-दोष देखना और उसे सशोधित करना चाहिए।

अभी देखिये, 'पक्षमुक्त' और 'पक्षातीत'—एक नई परिभाषा है। कल मुझे उसपर प्रकाश मिला और मै बोल गया। अभी उसका पूरा अर्थ ध्यान मे नही आया, धीरे-धीरे आ जायगा, लेकिन उसका परिणाम क्या हुआ, यह आपने देख ही लिया। इससे गोकुलभाई के दिल को ठण्डक पहुंची और उन्हे हिम्मत हुई। मै सोचता रहा कि गोकुलभाई जैसे मनुष्य को जिस विचार मे सकोच मालूम हो, निश्चय ही उसमे कुछ एकागिता होनी चाहिए। मेरा मन तत्त्व-ज्ञान से बना होने के कारण कोई दरवाजा खोलने मे क्या-क्या खतरे है, यह मै सोच सकता हू। उन्हे अपनी आखो से ओझल नही कर सकता। फिर भी मैने यही सोचकर दरवाजा खोल दिया कि अगर वास्तव मे हममे गुण है तो सख्या-वृद्धि भी हो जायगी। व्यापक दृष्टि करने से दोनो मे विरोध नही आयेगा। फलस्वरूप आपने देख ही लिया कि

गोकुलभाई ने अत्यन्त भावनायुक्त चित्त से यहा जाहिर कर दिया कि राजस्थान से शान्ति-सैनिको की जो अपेक्षा की गई है, वह पूर्ण होने की आशा की जा सकती है।

यह कोई छोटी बात नही है। हमने शाति-सैनिको की जो माग की है, उसमे एक ओर प्राणार्पण करने की प्रतिज्ञा है तो दूसरी ओर नित्य सेवा की प्रतिज्ञा है। रविशकर महाराज कह रहे थे, "आपकी पहली प्राणार्पण की प्रतिज्ञा तो बहुत आसान है, लेकिन दूसरी नित्य सेवा की प्रतिज्ञा नित्य मरण ही है। यह बडा कठिन काम है। इसलिए अगर आप यह दूसरी कैद न रखे तो सभव है कि प्राणार्पण की तैयारी करनेवाले लोग मिल जायगे।" महाराज के कहने मे वजन है, क्योकि वह जो कुछ कहते हे, अनुभव से कहते है, कोरी विद्वत्ता से नही। तात्पर्य यह कि यह भी कठिन है और वह भी कठिन है। ऐसी द्विविध कठिन प्रतिज्ञाए करनेवाले बहुत तादाद मे मिलेंगे, ऐसी आशा नही। इस तरह जब हम व्यापक दृष्टि से सोचेंगे तभी काम होगा।

मै समझता हू कि गुण और सख्या का विरोध वही होता हे, जहा-जहा प्रयत्न एकागी रहता हे। ईसामसीह ने यूरोप और एशिया मे नव-विचार फैलाने का प्रयत्न किया। उनके शिष्य भी अच्छे थे और उनके विचार भी बहुत ही सुन्दर थे। दुश्मन पर प्यार करना, अपनी सब चीजे सबके साथ बाटकर खाना, एक ही परमेश्वर मानना—ये कोई ऐसी बाते नही, जिनपर आक्षेप किये जा सके। वह ऐसी सर्वांग-सुन्दर जीवन-दृष्टि लेकर निकले। लेकिन बाद मे उनके शिष्यो द्वारा उसमे एक ऐसी चीज दाखिल की गई, जिससे वह विचार अच्छा होने पर भी एकदेशीय बन गया। इसीलिए जब उनकी सख्या बढी तो गुण घटने लगा। जहा सख्या बढने लगी, वहा गुण नही बढा और जहा गुण बढने लगा, वहा सख्या घट गई। वह एकागी विचार यही था कि कि "एकमात्र ईसामसीह परमेश्वर के पुत्र है और उन्हीके द्वारा हम परमेश्वर के पास पहुच सकते है।" इसके बजाय अगर वे यो कहते कि "हम सब परमेश्वर के पुत्र है और उनमे ईसामसीह एक उज्ज्वल पुत्र-रत्न है" तो कोई उज्र न होता।

मै जरा आहिस्ता-आहिस्ता चिंतन कर रहा हू। पहले सर्वोदय-सम्मेलन की बात है, जो गाधीजी के प्रयाण के बाद सेवाग्राम मे हुआ था। उस समय इसके नामकरण की बात चली। कुछ लोगो ने कहा कि "इसे गाधीजी का नाम दिया जाय।" मैने कहा, "ऐसा क्यो कहते हे? 'सर्वोदय' यह शब्द बडा ही सुन्दर है और गाधीजी ने ही हमे दिया है। इससे भी अधिक प्राचीन आधार उसे प्राप्त है। इसलिए यही बेहतर होगा कि उसीको हम चलायें और गाधीजी का नाम न रखे।" खुशी की बात है कि लोगो को यह समझ मे आ गया और उन्होने मेरी बात मान ली। जिस तरह 'ला इलाही इल् इल् लाह' (ईश्वर के सिवा कोई महान् नही, कोई पूजनीय नही) इसके साथ 'मुहम्मदुर्रसूल उल्लाह' (मुहम्मद हमारा रसूल

है) यह जोड दिया गया, उसी तरह अगर हम भी यह कहते कि 'सत्यनिष्ठा और अहिसा हमारे उपास्य देवता है और गाधीजी हमारे गुरु है' तो नि सदेह हम अपने सद्विचार मे एकदेशीयता दाखिल करते। परिणामस्वरूप यह आपत्ति आती कि सख्या बढती, पर गुण घटता जाता। लेकिन वह आपत्ति टल गई, क्योकि हमने उस नाम को अपने हृदय मे ही रखा, वाणी मे नही आने दिया।

तुकाराम की एक बहुत ही अद्भुत उक्ति है। सहज स्फूर्ति से उसने कहा हे

"आहे ऐसा देव वदवावी वाणी। नाहीं ऐसा मनीं। अनुभवावा।"

याली परमेश्वर है, ऐसी वाणी से बोलना चाहिए और वह नही है,' ऐसा मन' मे अनुभव करना चाहिए। तुकाराम भी उसी कोटि के मनुष्य थे, जिस कोटि के हमारे रविशकर महाराज हे। वह ज्यादा पढे नही थे, पर जो भी थोडा पढा, उसे उन्होने पचाया। उनकी यह युक्ति हमे बडी कारगर मालूम हुई। यदि आप ऐसा कही कहते तो आप एकदेशीय और सकुचित हो जायगे। अगर आप 'है,' तो 'है' मे' 'नही' भी है। आपका पूर्ण क्रियापद 'नही' है। वह इतना व्यापक है कि वह अन्तर्गत भी है। इसलिए आप 'नही' कहते हे तो आपके अन्तर मे वह है नही। और अगर आप 'हे' कहते हे तो उसके अन्तर मे 'नही' है, ऐसा अनुभव आपको करना होगा। परमेश्वर है, यह बोलने की बात है और नही है, यह अन्तर मे अनुभव करने की बात है। इस तरह स्पष्ट है कि जहा हमारे चिन्तन मे एकदेशीपन आ जाता है, वहा गुण और सख्या के बीच विरोध खडा हो जाता है। किन्तु जहा एकदेशीपन नही है, वहा इस प्रकार का भय नही है। इन दिनो इस चीज पर मेरा चिन्तन चल रहा है।

सत्याग्रह की ही वात लीजिये। पूछा जाता है कि क्या लोकतत्र मे सत्याग्रह को स्थान है ? एक कहता है—'नही,' तो दूसरा कहता है—'है'। किन्तु दोनो सत्याग्रह की असत् कल्पना कर बैठे है। अगर हम सत्याग्रह की परिशुद्ध कल्पना करें तो कहना पडेगा कि लोकतत्र मे उसे एक विशेष स्थान हो सकता है। यहा हमे 'सत्याग्रह' को व्यापक अर्थ मे लेना होगा। अगर यह नही हो पाता तो सत्याग्रह मे भी वही आपत्ति आयेगी—जहा सख्या वढाने की वात आयेगी, वही गुण घटेगा और जहा गुण वढाने की कोशिश होगी, वहा सख्या घटेगी। संकुचित कल्पना मे यह आपत्ति आती ही है।

मैंने कहा था कि वेदात, विज्ञान और विश्वास—ये तीन शक्तिया इस जमाने को चाहिए। वेदान्त का अर्थ है, वेदो का अन्त याने खात्मा। अर्थात्, सभी कृत्रिम धर्मों का अन्त। वेद को उनका प्रतिनिधि मान ले तो वेदान्त का अर्थ हुआ—बाइबिलान्त, पुराणान्त, कुराणान्त या जितनी पुस्तकें, उन सबका अन्त। इस तरह वेदान्त अत्यन्त व्यापक वस्तु हो जाती है। इसीलिए मै मानता हू कि वेदान्त ही दुनिया को बचा सकता है। अगर मै 'वेदान्त' का अर्थ उपनिषद् वगैरह कहू,

तो फौरन एकदेशीपन आ जायगा। इसलिए ऐसा सकुचित विचार मै नही मानता। मनुष्य को मनुष्य से अलग करनेवाली सभी कल्पनाओ का अन्त ही वेदान्त है। जब हम उसका ऐसा विशाल, व्यापक अर्थ करते है तो नि सन्देह वेदान्त से दुनिया का भला होगा।

विवेकानन्द ने अमरीका की धर्म-परिषद् मे यही गर्जना की थी। वेदान्त मे हम किसी एक पुरुष के साथ बधे नही है, जैसे कि ईसाइयत ईसा के व्यक्तित्व के साथ बधी है या जैसे कुछ कम मात्रा मे सही, मुहम्मद के साथ इस्लाम की विचार-सरणी किंवा गौतम के साथ बौद्ध-धर्म की विचार-सरणी जुडी दीख पडती है। 'दीख पडती है' यह मै जान-बूझकर कह रहा हू। वास्तव मे वह नही है, दीख ही पडती है।

बुद्ध ने यह कही नही कहा है कि आप मेरे वचनो के अनुसार ही चलें या उसी तरह विचार करे। मुहम्मद ने भी ऐसा कभी नही कहा। उसने तो बार-बार यही दोहराया है कि "मै परमेश्वर नही हू, मै परमेश्वर की जगह नही बैठ सकता। मै मर्त्य हू, मनुष्य हू।" लेकिन उसके कई ऐसे साथी निकले, जिन्होने उसे 'परमेश्वर' कहा। जहा गुणो का प्रकाशन ज्यादा होता है, वहा मनुष्य की आखे चौंधिया जाती है। इसलिए उसके बार-बार परमेश्वर होने से इन्कार करने के बावजूद उसे लोग परमेश्वर ही मानते थे। वह मर गये तो वह बात फैली, लेकिन लोगो ने उसे माना नही। यही समझ लिया कि वह मर नही सकते, यह बिल्कुल अफवाह है, गलतफहमी है। आखिर अबूबकर, जो उनका शिष्य था और सर्वथा सत्यवादी के तौर पर प्रसिद्ध था, एक मसजिद पर चढा और वहा से उसने जाहिर किया कि "मुहम्मद एक आदमी था और वह मर गया।" तब कही एकत्र लोगो ने इस बात को सही माना।

हा, तो मुहम्मद ने यह कभी नही कहा कि मै अल्लाह की जगह ले सकता हू और मेरे साथ परिपूर्ण सत्य जुड गया है, बल्कि उसने यही कहा कि "पहले के रसूलो ने जो कहा है, वही मै आपके सामने कह रहा हू।" किंतु 'मुहम्मदुर्रसूल उल्लाह' यह लोगो ने बाद मे जोड दिया। अल्ला का रसूल है, ऐसा अर्थ मुसलमानो ने माना। लेकिन मुहम्मद ने जो कहा है, उसका अर्थ यही है कि मुहम्मद उसका रसूल मात्र है, सेवक मात्र है। अल्लाह नही है, उसका पैगाम पहुचानेवाला रसूल है। लेकिन आज उसका अर्थ मुहम्मद ही रसूल है, ऐसा किया जाता है, जो गलत है, बल्कि कुरान मे इससे उलटा अर्थ लिख रखा है। अल्लामिया पैगम्बर से बोल रहे है कि "उसे तो मैने पैगाम दिया है, अरबो के लिए अरबी जबान मे बोलने के लिए। तू बोलेगा, यो समझकर मैने तुझे पैगाम दिया है। मैने हरएक कौम के लिए रसूल भेजे है।" उन्होने कुछ रसूलो के नाम भी दिये है और कहा है कि "कुछ रसूलो के नाम तो तू जानता है और कुछ नही जानता।" फिर मुसलमानो के लिए

इकरार करना पडता है। यह बोलना पडता है 'ला नु फररिकु बैन अहदिम् भिर् रसुलिहू' याने हम कोई रसूलो मे फर्क नही करते। आज ही सुवह दरगाह-शरीफ मे मै यह बोल आया हू। इसका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। फिर भी मुहम्मद के साथ यह चीज जुड जाने से इसमे एकागिता आ जाती है।

परिणाम क्या हुआ ? परमेश्वर एक है, यह तो ठीक है। लेकिन विभिन्न रूपो मे उसकी उपासना नही हो सकती, यह बात उसके साथ जुड गई। वेद ने कहा 'एकं सत्' सत्य एक है, ठीक वही वात, जो पैगम्वर ने कही है। लेकिन वह आगे कहता है 'विप्रा' बहुधा वदन्ति' विप्र, ज्ञानी, उपासक, भिन्न-भिन्न उसकी उपासनाए करते है। मतलव यह कि उस एक उपासना मे अनेकविध उपासनाए समाई हुई है। लेकिन इस्लाम ने यह नही माना। वे यही कहेगे 'एक सत् मूर्खा. बहुधा वदन्ति' सत्य एक है और मूर्ख उसे बहुविध कहते है। किन्तु यह एकागी विचार हो जायगा। इसका अर्थ यही होगा कि वह एकता वहुविधता को समा नही सकती, सहन नही कर सकती। ऐसी एकता एकागी हो जाती है। किन्तु यदि आप यह कहे कि 'सत्य एक ही है, पर ज्ञानी लोग भिन्न-भिन्न रूपो मे उसकी पूजा करते है' तो तत्काल आप व्यापक विचार करने लगते है। फिर गुण और सख्या का विरोध ही आयेगा।

हमारे सामने एक समस्या है "ग्रामदानी गाव की सख्या वढाते चले जाते है तो कुछ ग्रामदानी गाव वोगस हो जाते है।" मुझसे किसीने पूछा था कि "क्या ऐसा नही होता ?" मुझे जो उपमा सूझी, वह मैने कह दी "शिवाजी ने पचास किले जीते जिनमे से बीस गवाये और तीस हाथ मे रह गये।" यह निरुत्तर करनेवाला उत्तर है, वह चुप भी हो जाता है, फिर भी मै जानता हू कि इससे समाधान नही होता। अत आवश्यक है कि हम चिन्तन करे। हमारे ग्रामदानी गाव ढीले पडते है, इसका कारण कुछ भी हो, फिर भी आपने ही उसे बनाया है और आप ही कह रहे है कि वे कच्चे है तो जाइये और पक्के वनाइये। खूटा जरा ढीला हो गया तो उसे पक्का वनाइये। परिस्थिति ने उसे ढीला वना दिया तो क्या आप उसे उठाकर फेक देगे ? फिर आपकी चक्की ही कैसे चलेगी ? इसलिए आप ही खूटे को पक्का वनाइये। अगर वह पक्का नही वनता, पक्का वनाने मे ही टूट जाता है तो अलग वात है। फिर भी उसे पक्का बनाने की कोशिश तो करनी ही चाहिए।

इस तरह स्पष्ट है कि हम लोगो मे जो यह विचार चलता है कि "हम थोडे-थोडे ग्रामदान हासिल करे और वही मजवूत काम करे", उससे परिणाम तो अच्छा होगा, पर व्यापकता नही आयेगी, जिसका आना वहुत जरूरी है।

दूसरा विचार यह चलता है कि 'चन्द ग्रामदान हासिल करोगे तो तुमपर जिम्मेदारी आयेगी।' मै कहता हू कि जितने ज्यादा ग्रामदान हासिल होगे उतनी समाज पर जिम्मेदारी आयेगी, तुम्हारी जिम्मेदारी नही रहेगी। उस हालत मे

विचार व्यापक बनेगा और लोगो को विविध प्रयोग करने होगे। जब हम इसकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी उठाते है, कदाचित् हम नालायक साबित हो या नाकामयाब हो तो क्या ग्रामदान का विचार भी नालायक हो जायगा ? मान लो कि विनोवा किसी एक जगह बैठा और उसने कुछ काम किया तथा वह सफल भी हुआ, तो लोग यही कहेगे कि "विनोवा जैसा व्यक्ति बैठा, इसीलिए काम हुआ, नही तो न होता।" याने अगर हम सफल हुए तो हार गये और हार गये तो मर गये, जैसा कि आधुनिक लडाई मे होता है। इसलिए उसमे कोई आश्चर्य नही माना जायगा।

एक भाई ने मुझसे कहा है कि आप काफी घूम चुके, अब एक जगह बैठ जाय और काम करे। इसपर मैने उसे वेद का एक मन्त्र सुनाकर समझाया कि सबकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर बैठा ही है। वह जिम्मेदारी मेरी नही है। कार्ल मार्क्स को किसीने नही कहा कि तुम करके बताओ। इसलिए ये जो दो विचार चलते है, वे एक-दूसरे को काटनेवाले है। इनसे सारा विचार ही सकुचित, कुठित हो जायगा। दोनो मिलकर एक ही विचार है—कुछ ग्रामदान मजबूत बनाये जाय और नये-नये ग्रामदान हासिल किये जाय। ग्रामदान के लिए हवा भी खूब बनाई जाय, प्रचार भी खूब किया जाय। सख्या की वृद्धि से हमे डर नही, पर उसके साथ ही गुणवृद्धि होना भी लाजिमी है। जब हम ऐसी व्यापकता के साथ काम करेगे, तभी हमारी ताकत बढेगी। मै इस विचार को बहुत महत्त्व दे रहा हू। हमारे कार्यकर्ताओ के मन मे छिपाव नही, दुविधा, त्रिविधा ही नही, चौविधा भी प्रकट हो सकती है—हम यह करे या वह करे, ऐसा वे सोच सकते है। लेकिन पहले हमे यही समझना चाहिए कि हम ही करनेवाले कौन है ? सर्वोदय-पात्र कहेगा कि हम यानी कुल हिंदुस्तान। फिर हरेक से जितना बन सके, उतना वह करे, वह हमारा ही काम माना जायगा।

आज सुशीलाबहन नैयर से बाते हो रही थी। वह गाधीजी के पास रही है, इसका हमपर बहुत असर है। वह कह रही थी कि "ग्वालियर के नजदीक डाकुओ का मुल्क है। जी चाहता है कि वहा शान्ति-सेना का काम करू। लेकिन अगर आपके शाति-सेना के नियमो मे वह बैठता हो, तभी कर सकूगी। आप आशीर्वाद दीजिये।" मैने उससे कहा—"यह मै जाहिर कर देना चाहता हू कि शान्ति-सेना का काम करने के लिए शान्ति-सेना के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने की बिल्कुल जरूरत नही। फिर भी प्रतिज्ञा-पत्र हासिल करने का मेरा यह नाटक जारी ही रहेगा। शान्ति-सेना का काम जिसे सधे, वह करे। जिसके दिल मे उसके लिए तीव्रता हो, वह यह काम करेगा ही। मै जानता हू कि मनुष्य की कुछ मर्यादा होती है। ऐसे मनुष्य के लिए वे नियम लागू नही होते। हमारे शास्त्र मे कहा है कि 'जो तेजस्वी हो, उसे दोष लागू नही होते।' तुलसीदास ने भी यही लिखा है—'समरथ को नहि दोष गुसाई।' अगर सुशीला यह दिखा दे कि वह वहा जाती,

काम करेगी और कामयाब होती है तो अच्छा ही है। वह वहा जायगी तो दो चीजे होगी : (१) उसके कार्य से उसका जीवन सफल होगा या (२) उसमे वह कतल हो जायगी। इसलिए नियमो मे न बैठ सके तो भी लोग समय पर यह काम कर ही सकते हैं। मै व्यापक बनना चाहता हू और मै व्यापक ही हू।

मुझसे कुछ लोग अजीब सवाल पूछते हैं। अभी राजस्थान मे ही एक भाई ने पूछा कि "क्या हम बीडी पीते हैं तो शान्ति-सैनिक हो सकते हैं ?" मैने पूछा— "क्या प्रतिज्ञा-पत्र मे ऐसा लिखा है कि बीडी नही पीनी चाहिए ?" उसने कहा— "नही लिखा है।" इसपर मैने कहा कि "ऐसा नही है, यही समझ लो।" प्रतिज्ञा मे मै ऐसी कैद नही रखता। अगर रखता तो खतम ही हो जाता। उसमे न बीडी पीने का निषेध किया गया है और न खादी पहनने या सूत कातने का विधान। ऐसा कुछ है ही नही। मै सकुचित बनने का साहस नही कर सकता। मै तो समझता हू कि वह 'सेफ्टी वाल्व' है, उससे बचाव हो सकता है।

मैने यह कहा है कि सत्याग्रह का अर्थ यही है कि सत्य को ही आग्रह करने दीजिये, आप सत्य का आग्रह मत कीजिये। आप तो सत्य का पालन ही कीजिये। आप अगर समझते हैं कि हमारा आग्रह ठीक है तो सामनेवाला भी आग्रह रखेगा। इस तरह एक आग्रही मन के खिलाफ दूसरा आग्रही मन खडा हो जायगा और दो मनो की टक्करो को टालना होगा। सज्जनो के मनो की विरोधी टक्करे नही होने देनी चाहिए। अगर कोई भी सज्जन आकर मुझसे कहे कि तुम्हारा विचार सकुचित मालूम होता है तो मै उसे यही कहूगा कि तुम्हारे लिए मैने वह खोल दिया है, क्योकि सज्जन के विरोध मे मै खडा नही हो सकता। मै जानता हू कि सामनेवाला सज्जन है और वह भी जानता है कि मै सज्जन हू। इस तरह जब दोनो एक-दूसरे को जानते हैं तो सकुचितता नही होनी चाहिए। मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है। इसलिए सकुचितता छोडकर परिणाम देखना चाहिए। सही विचार मालूम करना चाहिए और मन मे किसी तरह का आग्रह नही रखना चाहिए।

इसपर कल से ही लोग मुझसे पूछने लगे कि "क्या चुनाव मे खडा होनेवाला भी शान्ति-सैनिक बन सकता है ?" मैने गोकुलभाई से कहा कि आप ही इस बारे मे बताइये। उन्होने फैसला दिया—"चुनाव मे खडा होनेवाला शान्ति-सैनिक नही बन सकता।" वह अगर दूसरा ही फैसला देते तो भी मै सोचता। कोई अगर यह कहता कि "चुनाव मे भी यदि कोई राग-द्वेष-रहित, परिपूर्ण शात और तटस्थ मन से खडा होना चाहे तो क्या हर्ज है ?" तो मै यही कहता कि "हा भाई, कोई हर्ज नही।" इसलिए मेरा भरोसा ही मत कीजिये, मै कुछ भी कह सकता हू। बडी मजेदार बात है। गुजरात मे मैने 'शान्ति-सेना' और 'शान्ति-सहायक' के लिए कभी कुछ कहा तो कभी कुछ। मै एक भाई के सवाल का जवाब

दे रहा था तो नारायण ने कहा कि "परसो तो आप इससे भिन्न वात कहते थे।" वात यह है कि मै जो वाते रखता या कहता हू, वे मुझे बाद मे याद भी नही रहती। आग्रह के लिए याद तो रखनी चाहिए न ? लेकिन याद नही रहती। इसी-लिए अतत मैने नारायण से पूछने का रिवाज रखा कि "क्यो नारायण, मैने क्या कहा था ?" तात्पर्य यह कि हम जितने व्यापक वन सकते है, उतने व्यापक वने। हम यही चाहते है कि हम व्यापक वने और हम सवको एक करे। हम सव सज्जनो को एक करना चाहते है। यही हमारी दृष्टि है।

किन्तु ऐसी दृष्टि रखते हुए भी हमने अकुश तो रखा ही है। इसका कारण यही है कि हम जानते है कि विना अकुश के और काम तो हो सकते है, पर शाति-सेना का काम नही हो सकता। सिर फूटेगे, पर सफलता नही मिलेगी। फिर सिर फुडवाना ही हमारा लक्ष्य हो तो वह अलग वात है। अत हम सफलता का प्रवन्ध करके ही सिर फुडवाये। अगर ऐसा नही करते तो वह हमारी मूर्खता ही सावित होगी।

रविशकर महाराज की ही वात देखिये। वह हमारे साथ चार-पाच महीने रहे है। वह कहते थे कि उनके विचारो के जो दोष थे, वे दूर हो गये है। मैने भी उनके साथ रहकर अपने विचारो मे जो दोप थे, उन्हे दुरुस्त कर लिया है। यह वात मैने उनके सामने तो नही कही, अव कह रहा हू। उनके अनुभव की वात है। आप जानते ही है कि अहमदावाद मे महागुजरात के प्रश्न पर दगा हुआ और कुछ गोलिया भी चली। उस समय महाराज ने कहा कि "जिनके हाथ मे दण्ड-शक्ति है, उन्हे गोली चलानी पडी, इसमे इतना हर्ज नही। किन्तु जव काग्रेस-आफिस से गोली चली तो मेरे मन मे यह विचार आया कि काग्रेस आफिस गोली चलाने की जगह नही है। वह तो मरने की जगह है, मारने की नही। इसलिए मेरा दिल वगावत करता है।" उनमे मिलने के लिए काग्रेस के कुछ भाई गये थे। महाराज अहमदावाद से चालीस-पचास मील दूर भूदान के प्रचार के काम मे घूम रहे थे। उन्होने महाराज से कहा कि "अगर आप अहमदावाद आये तो शान्ति का प्रचार कर सकते है, लोग भी आप की वात मान लेगे।" महाराज ने कहा, "मै आने को राजी हू, जरा प्रयत्न करना होगा। किन्तु वह कहातक सफल होगा, कह नही सकता। लेकिन मै उनके साथ यह भी कहूगा कि काग्रेस-आफिस से गोली नही चलनी चाहिए।" उसके वाद उन्हे वहा वुलाने का आग्रह नही हुआ।

यह सोचने की वात है। मै यह कह रहा था कि हम खूव व्यापक वनना चाहते है और सवके साथ सम्वन्ध रखना चाहते है। फिर भी अगर महाराज गोलीवाली वात पर लोगो से पूछने पर खामोश रहते तो वह वहुत महान होने पर भी शान्ति-स्थापना मे नाकामयाव ही रहते। सिर फुडवाना हो तो अलग वात है, किन्तु सत्य बोलकर ही वह शान्ति की स्थापना कर सकते थे। निष्पक्ष होकर ही सत्य

बोला जाता है। इसपर कोई पूछे कि "पक्ष के अन्दर रहकर सत्य नही बोला जा सकता ?" तो मै यही कहूगा कि बोलकर दिखाइये, मुझसे मत पूछिये। मै तो मानने को राजी हू। पक्षपाती कोई नही हो सकता, ऐसा मै नही कह सकता, फिर भी इन दिनो वह बडा मुश्किल है, क्योकि पक्ष के साथ लड़ाई-झगडे जुड ही जाते है। चाहे कोई पक्षमूलक झगडे न हो तो भी पक्ष उनके बीच आ ही जाता है और किसी-न-किसी तरह मे वे मामले पक्ष के बन ही जाते है। उस हालत मे जहा जो भी कुछ जिस किसी पक्ष से हुआ हो वहा जाकर जो यह बोलने की हिम्मत करे कि 'फलाना काम गलत हुआ है' तो वह पक्ष मे रहकर भी पक्षातीत बन जाता है, यह मै जाहिर करना चाहता हू। महाराज तो किसी पक्ष मे नही है, इसलिए वह तो पक्षमुक्त ही है।

इस तरह स्पष्ट है कि हमने जो कुछ मर्यादाए रखी है, वे सकुचित बनने के लिए नही, बल्कि कारगर बनने के लिए ही है। हमे ऐसा लगा कि शान्ति-सेना के काम मे सफल होने के लिए ये मर्यादाए आवश्यक है, इसीलिए हमने उन्हे रखा है। किन्तु मान लीजिये, उनसे कुछ सज्जनो को, जो इसमे आने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, कुछ बाधा पड रही हो तो हम उसे हटाने के लिए भी राजी है, ऐसा हमने कल ही कह दिया, यह मानकर कि यहा थोडी सकुचितता आ सकती है। जहा सकोच आये, वहा उसे छोड दे तो गुण और सख्या के बीच विरोध नही आ सकता।

हम अपने कार्यकर्ताओ से यह निवेदन करना चाहते है कि जिस किसी कार्य के जिस किसी भी अग मे वे लगे रहे, जिस अग मे उन्हे श्रद्धा और विश्वास हो। मान लीजिये, सर्वोदय-पात्र का काम किया जाय, ऐसा बाबा ने कहा तो कोई जरूरी नही कि आप वही काम करे। अगर आप जमीन के बटवारे की जिम्मेदारी महसूस करते हो, तो उसीमे लगे रहे। इस व्यासपीठ (प्लैटफार्म) से किसीको सकुचित बनानेवाला कोई भी आदेश नही मिलेगा। मुझसे तो और भी नही मिलेगा, क्योकि मेरे विचार मे तो वह चीज है ही नही। इसीलिए जब कोई मुझसे पूछता है कि "ऐसी हालत मे शान्ति-सेना कैसे बनेगी ?" तो मै यही कहता हू कि "देखिये, कैसे बनेगी। यह प्रयोग करके देखने की बात है।" मै चाहता हू कि किसी भी विचार को बाधा न पहुचाते हुए काम व्यापक बने। मेरी श्रद्धा है कि इस तरह किसी भी विषय को बाधा नही पहुचायेंगे, तभी काम व्यापक बनेगा। फिर गुण और व्यापकता मे कोई विरोध आयेगा, ऐसा मै नही मानता।

ग्यारहवा सर्वोदय-सम्मेलन,
अजमेर, २९ फरवरी १९५९।